मध्ययुगीन काव्य-साधना

लेखक
रामचन्द्र तिवारी, एम० ए०, पी-एच० डी०
हिन्दी-विभाग, गोरखपुर विश्वविद्यालय

विश्वविद्यालय प्रकाशन
गोरखपुर • वाराणसी

मध्य-युगकी उन महान् विभूतियोंको जिन्होंने
काव्यको जीवनकी साधनाके रूपमें
स्वीकार किया था ।

—लेखक

दो शब्द

प्रस्तुत कृतिमे हिन्दी साहित्यके पूर्व मध्यकालकी सीमाओमे आनेवाले प्रतिनिधि कवियो—कबीर, जायसी, सूरदास, नन्ददास, तुल्सीदास और केशवदास—का अध्ययन एव मूल्याङ्कन किया गया है। प्रारभमे पृष्ठभूमिके अन्तर्गत मध्ययुगके समूचे साहित्यको दृष्टिमे रखते हुए पूरे युग जीवनकी सास्कृतिक चेतनाकी समीक्षा की गई है। हिन्दीके इतिहास लेखको और समीक्षकोने पूर्व मध्यकालको काव्य-प्रवृत्तियोकी दृष्टिसे क्रमश: भक्ति काल और रीति काल्की सज्ञा प्रदानकी है। विचार करनेपर विद्वानोका यह विभाजन अधिक उपयुक्त नही प्रतीत होता। भक्ति-कालमे रीति-काव्य कम नही लिखा गया है। इसी प्रकार रीति-कालमे भी भक्ति प्रधान-काव्यकी रचना परिमाणमे बहुत कम नही हुई है। प्रस्तुत कृतिमे लेखकने मध्ययुगीन हिन्दी काव्यको 'राज्याश्रयी', 'धर्माश्रयी' और 'लोकाश्रयी' शीर्षकोके अन्तर्गत विभक्त किया है। उसका यह विभाजन मध्ययुगीन हिन्दी-काव्यकी प्रेरणा-भूमियोके आधारपर देखने और परखनेकी प्रेरणा देता है। लेखकने काव्य-कृतियोके अनुशीलनके आधारपर उन जीवन-मूल्योको प्रत्यक्ष करनेकी चेष्टा की है जिनसे चिपकी रहकर मध्य-युगीन जनता अपना अस्तित्व सुरक्षित रख सकी है। कवियोका व्यक्तिगत मूल्याङ्कन करते समय लेखकने आधुनिक समीक्षा-सिद्धान्तोके साथ ही उन आदर्शोंको भी दृष्टिमे रखा है जो तज्जुगीन हिन्दी कवियोको निजी तौरपर मान्य थे। लेखक 'कला' एव 'दर्शन'को समाज-निरपेक्ष नही मानता। उसकी दृष्टिमे युग विशेषके कलागत आदर्श तथा दार्शनिक विचार तज्जुगीन जीवन चेतनाके आधारपर ही प्रतिष्ठित होते है। सब मिलाकर वे युगकी आकाक्षाके ही प्रतीक होते है। प्रस्तुत कृतिमे कवियोका

मूल्याङ्कन करते समय लेखकने उपर्युक्त दृष्टिकोणको बराबर ध्यानमे रखा है। उसने यथासाध्य अपने मूल्याङ्कनको सन्तुलित, निष्पक्ष, निर्विवाद और विवेक-सम्मत बनानेकी चेष्टाकी है। उसने आलोक्य कृतियोका धैर्यपूर्वक अनुशीलन किया है और अपने विचारोको उन्हीपर आधृत रखनेकी चेष्टाकी है। लेखक उन सभी विद्वानोका ऋणी है जिनके विचारो, निष्कर्षो एव आदर्शोको उसने जाने-अनजाने आधार रूपमे स्वीकार किया है।

लेखक सब कुछ कह सकनेकी महत्वाकाक्षाकी मरीचिकाके पीछे भटकते रहकर कुछ भी न कहनेको बुद्धि-सगत नही मानता। इसी न्यायके बलपर उसने मध्ययुगकी उपर्युक्त महान् विभूतियोके सम्बन्धमे कुछ कहनेका साहस किया है।

कृति आजसे लगभग दो वर्ष पूर्व ही प्रस्तुतकी जा चुकी थी। प्रकाशित अब हो रही है। अनुभवी मित्रोकी सम्मतिमे यह दीर्घ कालक्षेप अधिक नही है।

—रामचन्द्र तिवारी

विषय-सूची

मध्ययुगीन काव्य-साधना

पृष्ठभूमि

हिन्दी-साहित्यका मध्ययुग अपनी गरिमामे जितना महान् है, विभिन्न दृष्टियोसे उसका अध्ययन और मूल्याकन अभी उतना ही कम हुआ है। सामान्यत. १४०० वि० सवत्से १७०० वि० तकके समयको पण्डितोने पूर्व-मध्यकाल ओर १७०० वि०से १९०० वि० तककी अवधिको उत्तर मध्यकाल कहा है। भारतीय इतिहासके मध्यकालकी अवधि इसमे थोडी भिन्न है। भारतीय इतिहासमे ६०० ई० (६५७ वि०) से १९०० ई० (१९५७ वि०) तक मध्यकाल-की स्थिति मानी जाती है। आज जब हम मध्ययुगीन विशेषणका प्रयोग करते है तो हमारा तात्पर्य आधुनिक युगकी वैज्ञानिक एव बौद्धिक चेतनाके प्रतिकूल एक विशेष प्रकारकी जीवन-चेतनासे होता है जो विश्वास-प्रधान, रूढिग्रस्त, आदर्शवादी, सकीर्ण, धर्मभीरु, प्रेरणा-रहित और स्थूल नैतिकताके आग्रहसे पूर्ण रही है। सत्य तो यह है कि भारतवर्षका जनताके जीवनमे क्रातिकारी परिवर्तन आधुनिक युगके पूर्व प्राय. नही हुआ है। यद्यपि यह तो नही कहा जा सकता कि मध्यकालीन जन-जीवनमे परिवर्तन हुए ही नही या जैसा कि स्मिथ महोदयने कहा है कि 'उसका कोई वर्णन करने योग्य इतिहास ही नही है'[१], किन्तु यह सत्य है कि भारतवर्षकी सामान्य जनताके जीवनगत मूल्योमे मैगस्थनीज-के जमानेसे लेकर मध्ययुगके अतिम चरणतक क्रान्तिकारी कहा जा सकनेवाला परिवर्तन नही हुआ है। प्रसिद्ध इतिहासकार श्री लेन पूल (Lane-Poole)

---

१ "The Indian Commonality has no history that can be told"
—*Akbar the Great Mogal,* Vincent, A Smith
p 279, 1958

महोदयने बहुत ठीक लक्ष्य किया है कि पूर्वी-देशोंकी जनताका जीवन चाहे जितना भी करुणापूर्ण क्यों न रहा हो उसमे उबा देनेवाली एकरूपता रही है[१]। जो परिवर्तन हुए है, या जनताका जीवन जैसा, जो कुछ भी रहा है, उसे जाननेके महत्त्वपूर्ण साधन मध्ययुगीन काव्यग्रथ है, किन्तु इस दृष्टिसे उन्हे आजतक देखा ही नही गया है। पूरे मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्यके अध्ययनके आधारपर हम तज्जुगीन मानव-मूल्योकी उपलब्धि कर सकते है। चेतनाके विविध स्तरोका सम्यक् बोध प्राप्त कर सकते है और अन्तत· भारतीय सस्कृतिकी मूलभूत विशेषताओसे अवगत हो सकते है। हिन्दीके आचार्योंने इस पूरे युगको साहित्यके स्तरपर 'भक्ति-काव्य' और 'रीतिकाव्य'की सज्ञा दी है। ये सज्ञाएँ काव्य-गत प्रवृत्तियोको ध्यानमे रखकर दी गई है। इन प्रवृत्तियोके मूलमे किस प्रकारकी सामाजिक चेतना कार्य कर रही थी या किन मूल्योमे विश्वास करता हुआ भक्ति और रीति-युगका कवि जी रहा था इसे लक्ष्य करनेकी बहुत थोडी चेष्टा हुई है। इसके लिए आवश्यक है कि सबसे पहले हम मध्ययुगीन काव्यकी प्रेरणा भूमियों-को ठीकसे पहचाने।

प्रेरणा-भूमियॉ

पूरे मध्य-युगमे हिन्दी-काव्यका विकास जीवनकी तीन समानान्तर प्रेरणा-भूमियो—राज्य, धर्म और लोक—से अनुप्राणित होकर आगे बढता रहा है। जिसे हम भक्ति-काल (पूर्व-मध्यकाल) कहते है, उसमे राज्याश्रयी साहित्य भी लिखा गया है और जिसे रीति-काल (उत्तर-मध्यकाल) कहा गया है, उसमे धर्माश्रयी काव्य-रचनाऍ कम नही हुई है। लोकाश्रयी काव्यका निजी स्वरूप

---

१ In the East the people does not change and there, far more than among more progressive races the simple annals of the poor, however moving and pathetic, are indescribably trite and monotonous, compared with the lives of those more fortunate, to whom much has been given in opportunity, wealth, power and knowledge

—*Mediaeval India Under Mohammadan Rule,* Preface

इस पूरे युगमे बहुत स्पष्ट नही है किन्तु उसने धर्माश्रयी साहित्यको बहुत-कुछ प्रभावित किया है और यदा-कदा राज-दरबारमे भी उसकी पहुँच हो ही गई है। इसलिए प्रेरणा-भूमियोको दृष्टिमे रखकर मध्ययुगीन हिन्दी-काव्यको 'राज्याश्रयी', 'धर्माश्रयी' और 'लोकाश्रयी' काव्यके रूपमे देखा जा सकता है।

राज्याश्रयी काव्यकी प्रवृत्तियाँ

राज्याश्रयमे शृगार, हास्य, उत्साह, नीति, सूक्ति, व्यग्य, अध्यात्मज्ञान (कभी-कभी) काव्य-शास्त्र, इतिहास एव अन्य उपयोगी साहित्य सम्बन्धी रचनाएँ सुविधापूर्वक प्रस्तुत की जा सकती है। राज्य सत्ता जब शक्ति-सम्पन्न होती है तब प्रधानत. वीर-काव्य (उत्साह-प्रधान काव्य) लिखे जाते है और उनके साथ स्वस्थ-शृगार, हास्य, नीति, अध्यात्म, सूक्ति आदि विविध प्रकारके काव्य भी अवकाश, अवसर और आवश्यकताके अनुसार रचे जाते है। किन्तु राज्यसत्ता जब श्री, शक्ति और स्वत्वहीन होकर लडखडाने लगती है तब उसे आत्मविस्मृतिकी स्थिति मे बनाये रखनेके लिए वासनापूर्ण शृगारके मोहक चित्रोकी सज्जा की जाती है। मध्यकालीन हिन्दी-काव्यकी राज्याश्रयी धाराके क्रमश. परिवर्तित रूपको परखनेके लिए इस पूरे युगको राजसत्ताके इतिहासकी जानकारी उपयोगी सिद्ध होगी।

मध्ययुगीन राज्याश्रय

मध्ययुगीन हिन्दी-काव्यके उद्भवके पूर्व ही उत्तरी भारतके राजपूत राजवंश प्राय. नष्ट हो चुके थे। कन्नौजके गहडवाल (१०८५-१२२५ ई०), अजमेर और दिल्लीके चौहान (११९४ ई०), बुन्देलखण्डके चन्देल (९५०-१२०३ ई०), मालवाके परमार (दसवी शतीके प्रारम्भसे १३०५ ई०), बगालके पाल (७२५-११७५ ई०) और सेन (१०९५-११९९ ई०) तथा गुजरातके सालकी (९५१-१२९७ ई०) आक्रमणकारी मुसलमानोके साथ सघर्ष करते हुए अस्त हो चुके थे। इनके स्थानपर दिल्ली, जौनपुर और बगालमे मुसलमानी राज्य स्थापित हो गये थे। दिल्लीमे राज्य-सत्ता चचल रही। सन् १२०६ ई० से १५२६ ई० तक क्रमशः गुलामवश (१२०६-१२९०), खिलजी वंश (१२९०-१३२०), तुगलक वश (१३२०-१४१४), सैयद वश (१४१४-१४५१), और लोदीवश (१४५१-१५२६ ई०) के शासकोने राज्य किया। यह ३०० वर्षोका समय घोर सघर्षमे

व्यतीत हुआ। ऐसी स्थितिमे राज्याश्रयी साहित्यको विकासका अवसर नही मिला। गुलामवशके प्रसिद्ध बादशाह बल्बनके आश्रयमे अमीर खुसरो (१२५४-१३२५ ई०)का साहित्य रचा गया। अमीर खुसरो (अबुल हसन) प्रतिभा-सम्पन्न कवि था। उसने अरबी और फारसीके साथ हिन्दी खडी-बोलीको भी काव्य-भाषाके रूपमे स्वीकार किया। बल्बनके पुत्र मुहम्मदके विनोदके लिए लिखी गई उसकी पहेलियो और मुकरियोमे हास्य तथा चमत्कारकी अच्छी सामग्री है। सब मिलाकर खुसरोका साहित्य दरबारी मनोवृत्तिका ही प्रतिनिधित्व करता है। दिल्लीपर शासन करनेवाले इन राजवशोके आश्रयमे अन्य भाषा-कवि भी रहे होगे। इन सत्ताधीशोके लिए कवि नामधारी जीव उसी प्रकार आवश्यक थे जिस प्रकार वैद्य, सगीतज्ञ, कुछ सहभोजी सुहृद, मृगया-यात्रामे साथ चलनेवाले बाज (पक्षी) पालक, कुछ इॅकवा करनेवाले साथी और गप-शप करनेके लिए कुछ कानूनदॉ मित्र। शाहजादा मुहम्मद तुगलक (१३२५-५१) के आश्रयमे अरबी, फारसी और भारतीय भाषाओके १,००० कवि रहते थे[१]। इतिहास विधाता ऐसे कवियोकी ओर बिना देखे आगे बढते रहे है। इसीलिए उपरोल्लिखित पॉच राजवशोके शासन-कालमे केवल खुसरोका ही उल्लेख मिलता है।

जौनपुर और बगालमे स्थापित मुसल्मानी राज्योने मुख्यत. अरबी-फारसीके कवियोको प्रोत्साहन दिया। बगालके हुसैनी शासकोने अवश्य ही बगला कवियो-को भी प्रेरणा दी। उत्तरी भारतमे बचे-खुचे छोटे-मोटे हिन्दू-रजवाडोके आश्रयमे कुछ कविगण अवश्य रहे होगे किन्तु उनमे भाषा-कवियोकी सख्या बहुत कम रही होगी। मिथिलाके राजा शिवसिहके आश्रयमे महाकवि विद्यापति (१३६८-१४७५ ई०) की काव्य-कला विकसित हुई। विद्यापति एक साथ सस्कृत, अप-भ्रश और भाषा तीनोमे कविता करते थे। तूफानकी गतिसे बढते हुए क्रूर मुसल्मान शासकोकी दाढमे अटके हुए इन राजाओके दरबारमे रहकर चेतनाके क्षणोमे इष्टदेवकी प्रार्थना और विस्मृतिके क्षणोमे शृगार-सरितामे जी खोलकर स्नान करनेके अतिरिक्त और किया ही क्या जा सकता था? इसीलिए विद्यापतिने या तो 'शिव' 'दुर्गा' और 'गगा'के चरणोमे अपनी भावनाके पुष्प अर्पित किये

१ *Life and Conditions of the People of Hindustan*, Dr K M Ashraf, 1959, p 37

या 'लखिमा देइ'मे रमण करनेवाले 'राजा सिव सिंघ रूपनरायन'की रस-तुष्टिके लिए श्रृगार रसकी देवी राधाको सामान्य-कामिनीके रूपमे सज्जित करके विविध स्थितियो, क्षणो और मुद्राओमे उपस्थित किया।

मुगल और राजपूत राज्याश्रय तथा हिन्दी-काव्य

सन् १५२६ ई० मे दिल्लीका शासन मुगलोके हाथमे आया। १५२६ से ५६ तक बाबर और उसके बाद हुमायूँ अपनी स्थिति सुदृढ करनेमे लगे रहे। यद्यपि ये दोनो साहित्यिक रुचि-सम्पन्न बादशाह थे किन्तु आजीवन संघर्षरत रहनेके कारण अपने आस-पास साहित्यिक वातावरणका निर्माण न कर सके। अकबरके राज्यारोहण (१५५६ ई०) के पश्चात् धीरे-धीरे परिस्थितियोमे परिवर्तन हुआ। मुगल शासनमे दृढता आई और अकबरके दरबारमे फारसीके साथ हिन्दी कवियोको भी सम्मान मिला। रहीम (१५५३-१६२७ ई०), गग (१५३८-१६२१ ई०), बीरबल (१५८५ ई० मृत्यु), टोडरमल (१५२३-१५८९ ई०), नरहरि (१५०५-१६१० ई०), प्रिथीराज, 'करनेस', मनोहर, होलराय, आदि कवियोको अकबरका आश्रय प्राप्त हुआ। अकबरके शासनमे दृढता थी। उसे 'महाबली' कहा जाता था। उसकी नीतिमे उदारता और हृदयमें हिन्दुओके प्रति सम्मान था। वह एक वीर और कुशल शासक था। इसीलिए उसके आश्रित कवियोने वीर, श्रृगार, काव्यशास्त्र और नीति विषयक रचनाएँ प्रस्तुत की। बीरबल (ब्रह्म) ने वीरता और नीति-सम्बन्धी पद्य लिखे। मनोहर कविने श्रृगारके दोहे और नीतिकी फुटकल उक्तियाँ प्रस्तुत की। रहीमने नायिका-भेद (श्रृगार) और अनुभूतिपरक नीति-काव्यकी रचना की। 'करनेस' (नरहरि कविके साथी) ने 'कर्णाभरण', 'श्रुतिभूषण' और 'भूप-भूषण' नामक तीन अलकार ग्रन्थ लिखे। प्रिथीराजने पुराणसम्मत स्वस्थ श्रृगाररस मण्डित प्रेम-काव्य लिखा, और होलरायने इन सबकी प्रशसा करके पूरी मण्डलीकी कृपा प्राप्तकी।[1] मुगल राज्यके व्यवस्थित हो जानेपर उसकी छायामे सुख-शान्तिपूर्वक

[1] दिल्ली तें न तख्त ह्वैहै, बख्त ना मुगल कैसो,
ह्वैहै ना नगर बढि आगरा नगर तें।
गग ते न गुनी, तानसेन ते न तानबाज,
मान तें न राजा औ न दाता बीरबर तें।

जीवन व्यतीत करनेवाले तथा उसके प्रभाव क्षेत्रके बाहर रहकर कभी-कभी उससे टकरा जानेवाले राजाओके दरबारमे भी हिन्दी-कवियोको आश्रय मिला। अकबरके समकालीन ओरछानरेश महाराज रामसिहके छोटे भाई इन्द्रजीत सिहके आश्रयमे हिन्दीके प्रसिद्ध कवि केशवदासकी काव्य-कला विकसित हुई। केशव दासको कुल तीन आश्रयदाता मिले थे। जोधपुरके राजा मालदेवके पुत्र चन्द्रसेन, ओरछाके इन्द्रजीत सिह तथा वीरसिह देव। इनके आश्रयमे केशवने अलकार, रस, अध्यात्म, चरित और भक्ति-काव्यकी रचना की। अकबरके समयमे आमेरके 'कछवाहा', चित्तौडके 'सिसौदिया', रणथम्भौरके 'हाडा' और कालिजरके 'चन्देल' राजपूत प्रबल थे। इनके अतिरिक्त ओरछा, दतिया, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, जैसलमेर, मारवाड, चरखारी, पन्ना, बूँदी आदिमे भी राजपूतोके तेजकी चिनगारी दबी पडी थी। उत्तरमध्यकालमे हिन्दीके प्रसिद्ध कवि चितामणि, मतिराम, बिहारी, प्रतापसाहि, भूषण, लाल और सूदन क्रमश. नागपुरके भोसला राजा मकरदशाह, बूँदीके महाराज भाव सिह, जयपुरके मिर्जा राजा जय सिह, चरखारीके महाराज विक्रमसाहि, महाराष्ट्र केशरी शिवाजी, बुन्देलखडके महाराज छत्रसाल तथा भरतपुरके महाराज बदनसिहके पुत्र सुजानसिहके आश्रित थे। प्रसिद्ध कवि पद्माकर तो जयपुरके महाराज जगत सिह, उदयपुरके महाराज भीम सिह, ग्वालियरके महाराज दौलतराव तथा बूँदी नरेश आदि कई राजाओके आश्रित रहे। अकबरके बाद जहाँगीर और शाहजहाँके दरबारमे हिन्दी-कवियोका जमघट तो नही लगा किन्तु यदा-कदा उन्हे सम्मान मिल जाता रहा। शाहजहाँ बादशाहके आश्रित सुन्दर कवि (१६३१ ई० कविता काल)का उल्लेख मिलता है। इनके अतिरिक्त उत्तर मध्यकालमे अनेक छोटे-मोटे सामन्त, अमीर, उमरा, रईस, जमीदार और जागीरदार आश्रयदाताओने छोटे-मोटे कवियोको आश्रय देकर अपनी रसिकताका परिचय दिया। पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल (१३२५-

---

खान खानखाना ते न, नर नरहरि तें न,
ह्वैहैं ना दीवान कोऊ बेडर टुडर तें।
नवौ खण्ड सात दीप, सात हू समुद्र पार,
ह्वैहै ना जलालुदीन साह अकबर तें।

—**हिन्दी साहित्य का इतिहास**, रामचन्द्र शुक्ल, पृ० २१६ पर उद्धृत।

१८५० ई०) की लम्बी अवधिमे राज्याश्रयी साहित्यकी स्थितिमे मूल्योकी दृष्टिसे बहुत बडा अन्तर नही लक्ष्य किया जा सकता। पूर्व-मध्यकालमे जिस समय भक्त कवि उच्चतम नैतिक मूल्योकी स्थापनामे रत थे, दरबारी कवि आश्रय-दाताकी प्रशसा करने और उसकी मनोवृत्तिके अनुकूल हास्य, विनोद, नीति, सूक्ति या शृगार और नायिकाभेद लिखनेमे लीन थे। पाडित्य-प्रदर्शन भी राजकीय वातावरणका एक अग है। राज्याश्रयोमे जो अध्यात्म और काव्यशास्त्र सम्बन्धी ज्ञान-चर्चाका साहित्य लिखा गया है, वह इसी मनोवृत्तिका परिचायक है। अकबरके समयतक दिल्ली तथा अन्य राजपूत राज्याश्रय सघर्षकी स्थितिमें होनेके कारण सशक्त थे। उसके बाद मुगल साम्राज्यकी सत्ता दृढ हो जानेपर उसकी छायामे जीनेवाले छोटे-मोटे राज्य न तो आपसमे लड सकते थे और न विदेशी आक्रामकोसे ही सीधे सघर्ष मे आ सकते थे। मुगल फौजके साथ मिलकर एक दूसरे के विरुद्ध कभी-कभी तल्वारे भॉज लेना ही उनके वीरत्वकी चरम परिणति थी। अतः वे विलासिताकी ओर झुके। सौभाग्यवश जहॉगीर और शाहजहॉके राजत्व कालमे मुगल सत्ता भी मदिराकी मादकता और रमणीके नेत्रोकी तरलतामे ही डूबने-उतराने लगी थी। जहॉगीर और शाहजहॉने जमकर विलास किया। बर्नियरने इनकी विलास-लीलाका सजीव चित्र अपने यात्रा-विवरणमे प्रस्तुत किया है।[1] इनके समयमे कन्दहारको लेकर ईरानियोसे होनेवाली नोक झोक तथा कभी-कभी पुर्तगालियो, अग्रेजो और फ्रान्सीसियोकी समुद्रतट पर होनेवाली छोटी-मोटी हरकतोके अतिरिक्त कोई बडा युद्ध नही लडा गया। इसलिए निश्चिन्त राजसत्ता विलास-धर्मके पालनमे लगी रही। इसीका अनुकरण देशी राजा, अमीर, उमरा

---

१ "Chah-Jehan was fond of the sex and introduced fairs at every festival. x x x x He certainly transgressed the bounds of decency in admitting at those times into the seraglio singing and dancing girls called Kenchens (the gilded, the blooming) and in keeping them there for that purpose the whole night"

—*Travels in the Mogul Empire*, A D 1656-1663 by Francsois Bernier (1916) pp *273, 274*

और जागीरदार भी करने लगे। मुगल बादशाहोंका अन्त पुर अपने आपमे छोटा-मोटा परियोका नगर हुआ करता था। यह सौन्दर्य राशि देशके कोने-कोनेसे कुटिल कुटनियो एव चतुर-चाकरोके अथक प्रयत्नके परिणामस्वरूप एकत्र हो पाती थी। जब अकबर जैसे सजग शासकके हरममे ५,००० नारी रत्न दिन-रात जगमगाते रहते थे[1] तो जहाँगीर और शाहजहाँके लिए तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। सूरने बहुत दिनोतक यह लीला देखनेके बाद लिखा होगा—

"ज्यो दूती पर बधू भोरि कै लै पर पुरुष दिखावै" और केशवने अपनी बारह पीढियोका अनुभव बटोरकर काव्य-विषयोकी चर्चा करते हुए राज्यश्रीके प्रसगमे लिखा होगा कि—

> आखेटक जलकेलि, पुनि, विरह स्वयबर जानि।
> भूषित सुरतादिकनि करि, राज्यश्र हि बखानि[2] ॥
> राना रानी, राज सुत, प्राहित दलपति दूत।
> मन्त्री, मन्त्र, पयान, हय, गय, सग्राम अभूत ॥

राजा कैसाभी क्यो न हो, काव्य-जगत्मे वह दृढप्रतिज्ञ, पुण्यात्मा, धार्मिक, प्रतापी, प्रसिद्ध, शत्रुनाशक, बलविवेक युक्त, कृपालु, दानी, सत्यवादी, धीर, उद्यमी, और क्षमानिधान ही हुआ करता था[3]। किन्तु असलियत कहाँतक छिपती। ऐसे राजा भी अपना बहुत-सा समय कमलमुखी सुन्दरियोके साथ जलक्रीडामे जलचरोके समान प्रवृत्त होकर व्यतीत करते थे। नारी-रत्नोको रसिक नागरिकोकी विलास-क्रीडा-वृत्तिके अनुकूल सज्जित करनेके लिए सखियो और दूतियोकी आवश्यकता हुई। धाय, दासी, नाइन, नटी, पडोसिन, मालिन, तमोलिन, चितेरिन, मनिहारिन, सुनारिन, गोसाइन, सन्यासिन और पटवाइन इस महान् कार्यके

---

१ "The imperial harem constituted a town in itself No less than five thousand women dwelt within the walls and each of them had a separate apartment"

—*Akbar the Great Mogul,* 1958
Vincent A Smith, pp 261

२. 'कवि प्रिया', आठवाँ प्रभाव, पृष्ठ ११६।

३. वही, ,, छन्द ३, ४, पृ० ११६।

लिए उपयुक्त समझी गई[१]। जो कुछ जिन्दगीमे जिया जा रहा था वही काव्यमे उतरता आ रहा था। इन सखियो और दूतियोका काम था शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, हृदयका भेद लेना, विरह सुनाना, और येन-केन-प्रकारेण नायिकाको नायकसे मिला देना[२]। राज्याश्रयोमे जीवनकी गम्भीर वृत्तियोके उदात्त स्वरूपकी अभिव्यक्तिकी आवश्यकता न थी। वहाँ तो कोई ऐसी फडकती हुई चीज सुनानी पडती थी कि महाराज और दरबारियोके मुँहसे वाह-वाह निकल जाय। इसीलिए उत्तर मध्यकालीन हिन्दी-काव्य (जो एक प्रकारसे राज्याश्रयोमे ही लिखा गया है) मे या तो चमत्कृत कर देनेवाले अलकारोंकी धूम है या शृङ्गारके नामपर विविध प्रकारकी नायिकाओकी अनेक मुद्राओके मुग्धकारी रूप-चित्रोकी चहल-पहल। जो कवि राज्याश्रय नही प्राप्त कर पाते थे वे भी ऐसी ही रचनाएँ लेकर आश्रयकी खोजमे भटकते रहते थे। महाकवि देवको न जाने कितने नरनाहोकी 'नाही' सुननी पडी थी[३]। ठाकुर जैसे कविको भी राजसभामे बडप्पन पानेवाला कवि ही भाता था[४]। इस कालके रीति-मुक्त कहे जानेवाले शृगारी कवि—घनानन्द, बोधा, आलम और ठाकुर—भी राज्याश्रयी ही थे। घनानन्द, मुहम्मद शाहके मीर मुशी थे। बोधा, पन्ना नरेशके आश्रित थे। अलम, औरगजेबके बेटे मुअज्जमके आश्रित थे। ठाकुर, जैतपुर नरेश पारीछतके दरबारी थे। इनके शृगार-वर्णनमे (विशेषत बोधा और घनानन्दमे) जो गम्भीरता आ गई है उसका कारण है लौकिक प्रेमकी असफलताके कारण इनकी भावनाका अध्यात्मोन्मुख हो जाना।

उत्तर मध्यकालमे औरगजेबकी धर्मान्धताकी प्रतिक्रिया हुई। दक्षिणमे शिवाजी-

---

१ 'रसिक प्रिया', केशवदास, १२, १, २।

२ निज चतुराई ठानिके भेद हियेको लेहि।
विरह सुनावै हेत धरि मिलवै मग मग नेहि॥

हिततरगिणी, 'हिन्दी साहित्यपर सस्कृत साहित्यका प्रभाव', पृ० २३७ पर उद्धृत।

३. आजुलों केतिक नरनाहनकी नाही सुनि
हार लौ निहोरि होरि बदन विलोकतों॥—**देव**

४ ठाकुर सो कवि भावत मोहि जो राजसभामें बडप्पन पावै।
—**ठाकुर**

के नेतृत्वमे मराठे, मथुराके आस-पास गोकुल, जाटके नेतृत्वमे वहाँके हिन्दू किसान, ओरछामे बुन्देले राजपूत, दिल्लीके पश्चिम नारनौलमे सतनामी सन्त, पजाबमे गुरु तेगबहादुरके नेतृत्वमे सिक्ख, राजस्थानमे मेवाडके राणा राजसिंह और मारवाडके सरदार दुर्गादासके नेतृत्वमे राजपूत सगठित हो गये। इस सगठनको सम्भव बनानेमे १५वी और १६वी शताब्दियोके धार्मिक एव सास्कृतिक आन्दोलनोके माध्यमसे जनतामे व्याप्त नवचेतना भी कार्य कर रही थी। शिवाजीके व्यक्तित्वका विकास समर्थ गुरु रामदासकी देख-रेखमे हुआ था। सिक्खों और सतनामियोका सगठन भी मूलत नवीन धार्मिक जागृतिके कारण सास्कृतिक स्तरपर किया गया था। छत्रसालके मनमे दृढता उत्पन्न करनेका कार्य सन्त साधक अक्षरअनन्यने किया था। इस प्रकार हिन्दुत्वकी प्रतिष्ठा एव जन्मभूमिकी रक्षाकी भावनासे भावित होकर जब इन वीर राजपूतोने शस्त्र उठाया तो इनके आश्रयमे 'भूषण', 'सूदन' और 'लाल'ने शुद्ध वीर-काव्यकी रचना की। इसी प्रकार राणाप्रतापके शौर्यसे प्रभावित होकर दुरसाजी-चारणने 'प्रताप चौहत्तरी' लिखी थी[1]। राज्याश्रयके वातावरणमे परिवतन होनेपर राज्याश्रयी साहित्यका स्वरूप निरन्तर परिवर्तित होता रहा है किन्तु घूम-फिरकर वह वीर, शृगार, नीति, प्रशस्ति, सूक्ति, हास्य और रीतिकी परिधिमे ही चक्कर काटता रहा है। कुछ अपवादोको छोडकर यह सारा काव्य मुक्तक शैलीमे ही लिखा गया है। दरबारमे प्रबन्ध-काव्यके लिए क्या स्थान हो सकता है? महाराज पोथा नही सुनते थे। इसीलिए वीर-काव्यकी रासो-पद्धति धीरे-धीरे लुप्त हो गई। मुसलमानी दरबारोमे तो हिन्दी-कवियोको उर्दूके शायरोसे मोर्चा लेना पडता था। उधरसे वे शेर पढते या गजल गाते थे, इधरसे ये कवित्त, सवैया या दोहा भनते थे[2]। इसलिए राज्याश्रयी काव्य (चाहे वह भक्तिकालका हो चाहे रीतिकालका) की मूल-प्रवृत्ति प्राय. एक-सी रही है। यह जन-जीवनसे दूर रहा है। आश्रयदाता जब जनसमर्थित और लोकप्रिय होता था तब कविकी वाणी जनतामे भी गूँज उठती थी अन्यथा वह दरबारमे ही स्फुटित होकर रह जाती थी। कभी-कभी नायिकाभेद लिखते समय कुछ ग्रामीण नायिकाये दरबारोमे

१ 'भूषण', विश्वनाथप्रसाद मिश्र, भूमिका, पृ० ३०।

२ 'बिहारी', विश्वनाथप्रसाद मिश्र, पृ० १०।

पहुँच जाती थीं[1], या महाराजके लिए विनोदकी सामग्री प्रस्तुत करते समय कुछ देहाती किस्से और पहेलियाँ भी राजसिंहासनतक पहुँचनेकी जुर्रत दिखा देती थीं,[2] नही तो कहाँ सरकार, दरबार, हाकिम और हुजूर कहाँ बेचारा बेकस गाँव मजबूर। जो लोग यह मानकर चलते है कि रीतिकालमे सामान्य जनता—किसान और कारीगर—भी नायिकाओके साथ उलझी हुई थी वे भारतीय इतिहासके प्रति अपना अज्ञान व्यक्त करते है। पूर्व मध्यकालमे सामान्य जनतापर सर्वाधिक प्रभाव धार्मिक साहित्यका था। उत्तर मध्यकालमे धीरे-धीरे किसान जागीरदारोके चगुलमे और कारीगर महाजनोके पजेमे फँसते जा रहे थे[3]। वे शृगार-काव्यकी ओर प्रवृत्त नही हो सकते थे। उनपर स्थानीय (आचलिक) भक्तो और सन्तोका व्यापक प्रभाव था। औरगजेबके विरुद्ध सगठित होनेवाले 'सतनामी' किसान ही थे। गोकुल जाटके नेतृत्वमे किसानोका ही पौरुष उबल उठा था। गुरु तेगबहादुर और गोविन्द सिहका साथ देनेवाले सिक्ख सामान्य श्रेणीके गृहस्थ ही ही थे। ध्यान रखना होगा कि 'रसिक प्रिया' लिखनेवाले केशव जैसे कवियोको सुन्दरदास जैसे सन्त कवियोने खूब फटकारा था[4] और पद्माकरके समसामयिक श्री भूधरदासने शृगारिक काव्योकी खूब भर्त्सना की थी। निश्चय ही यह भर्त्सना बढती हुई विलास-प्रियताको देखकरकी गई थी केवल शृगार-काव्य लिखनेके कारण नही।[5] हाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि उत्तर

---

१ बिहारीकी 'छीबरवारी छोहरी' और रहीमकी 'बॉस चढी नटनदिनी' आदि नायिकायें गाँवोमे ही ली गई है।

२ अमीर खुसरोंकी मुकरियों और पहेलियोकी प्रेरणा जन-जीवनसे ही ली गई हैं।

३ 'भारतीय इतिहासका उन्मीलन', जयचन्द्र विद्यालकार, पृ० ६३८, १९५६, ५७।

४ रसिक-प्रिया रस मजरी और सिग रहिं जानि।
चतुराई करि बहुत विधि विषै बनाई आनि।
विषै बनाई आनि, लगत विषयनिको प्यारी।
जागै मदन प्रचड सराहे नख सिख नारी।
ज्यो रोगी मिष्ठान्न खाइ, रोगहिं विस्तारे।
सुन्दर यह गति होइ, जुतौ 'रसिक प्रिया' धारे॥
—ब्रजभाषा और उसके साहित्यकी भूमिका, पृ० १२३ पर उद्धृत।

५. राग उदय जग अध भयो,
सहजै सब लोगन लाज गवाई।

मध्यकालमे राज्याश्रयी साहित्य कई सीढियो नीचे उतरकर छोटे-छोटे रजवाडो, सामन्तो, जागीरदारो और जमीदारोकी गटियोमे जी रहा था। तात्पर्य यह कि पूरे मध्यकालमे राज्याश्रयी साहित्यकी गतिविधिमे कोई विशेष अन्तर नही आया था। बलबनसे लेकर बहादुरशाहतक और पृथ्वीराजसे लेकर जयपुरके जगत सिहतक उसकी एक धारा प्रवाहित हुई है। उसमे अन्तर उसी सापेक्षितामे आया है जिस सापेक्षितामे राज्यो और दरबारोके वातावरणमे परिवर्त्तन हुआ है। जनतामे होनेवाले परिवर्तनोका इसपर कोई प्रभाव नही पडा है। पूरे मध्य-कालमे राजसत्ता निरकुश रही है। यह दूसरी बात है कि अपनी सास्कृतिक परम्पराओके अनुसार व्यक्तिगत स्तरपर कुछ हिन्दू राजे और कुछ मुसलमान बादशाह सयमी, विवेकी, उदार और न्यायनिष्ठ हुए हो और इसीलिए उनके आश्रित कवियोम नैतिक मूल्योकी प्रतिष्ठा हो सकी हो। वातावरणके स्थितिशील होनेके कारण ही दरबारी (राज्याश्रयी) काव्य एक ही लीकपर चलता रहा। "वाणीका सार था 'शृगार' और 'शृगार'के सार रूप थे किशोर किशोरी" बस यही वह महान् मूल्य था जिसे इन कवियोने उपलब्ध किया था। इसीलिए काव्य-शास्त्रीय ग्रन्थोकी रचना करते समय भी इन कवियोने अपना ध्यान किशोर-किशोरियोपर ही रखा और किसी प्रकारका मौलिक विवेचन न प्रस्तुत कर सके। इस काव्यमे जीवनको अभिव्यक्ति हुई है किन्तु वह रईसोका जीवन है—जिसमे गुलगुली गिलमे, गलीचा, गजक गिजा, सजी सेज, सुराही, प्याला, चाँदनी, चिक, चिरागोकी माला, सुबाला, दुशाला, विशाला-चित्रशाला, तान-तुक-ताला तथा गुनीजनो द्वारा प्रस्तुत 'विनोदके मसाला' की भरमार रहती थी। जिस जाडेमे राजा और रईस ऊपर गिनाये गये मसालोका सेवन करके सुखकी नीद सोते थे, उसी जाडेमे साधारण जनता शीतसे ठिठुरती रहती थी—

सीख विना नर सीखत है,
विषयानिके सेवनकी सुघराई।
त पर और रचें रसकाव्य,
कहा कहिए तिनकी निठुराई।
अन्ध असूझिनी की अँखियानि में
झोकत है रज राम दुहाई।
—ब्रजभाषा और उसके साहित्यकी भूमिका, पृ० १२३ पर उद्धृत।

'आयो जडकालो जोर, परत प्रबल पालौ
लोगन कौ लालौ पर्यौ जियै कित जाइ कै।
ताप्यौ चाहै बारि कर तिन न सकत टारि,
मानौ हैं पराये ऐसे भये ठिठराइ कै॥'
—सेनापति

किन्तु इन ठिठुरनेवालोको नही देखा गया। जिन कवि महोदयने इन्हे देखा वे भी वास्तवमे काव्य-रीतिपर चलते हुए षट ऋतुओको देख रहे थे। उनके नेत्र चिरागोकी मालासे चौधियाये नही थे, इसलिए उनकी दृष्टि ऐसोपर भी पड गई जिनके लिए जीवन दूभर हो गया था।

मध्ययुगीन-लोकाश्रयी-काव्य (जन-काव्य)

लोकाश्रयी काव्यसे तात्पर्य उस काव्यसे है जिसमे लोक-भावनाये सुरक्षित रहती है। लोक-भावना लोक-हृदयका सरल, कोमल और निश्छल भावोच्छ्वास है जो जड-चेतन सभीको अपनी तरलतासे सिक्त कर देता है। 'लोक' सदैव 'मतिका भोरा' रहा है। वह विश्वासोपर जीवित रहा है। विश्वासोके अन्धे हो जानेपर भी प्राय उनसे चिपका रहा है। इसलिए 'वेद'के समानान्तर 'लोककी लीक' बराबर चलती रही है। लोक-साहित्य अपनी सहजता और निश्छलताके कारण सदैव सहृदय-संवेद्य रहा है। वह अपनी भावुकतामे अपराजेय रहा है। लोक-साहित्य और लोक भावनाको समझनेके लिए तत्त्वदर्शी होनेकी आवश्यकता नही, 'धरती' को समझनेकी आवश्यकता है। लोक कवि इसी धरतीपर खडे होकर जगत्के व्यापारोको देखता रहा है। उसके आग्रहपर चन्द्रमा रुक जाता है, नदी अपना प्रवाह मन्द कर देती है, पवन, मेघ, पथी और पछी रुककर सन्देश ले लेते है। वह धरतीकी हरियालीके साथ गा उठता है। वसन्तके उल्लासमे हुलस उठता है। प्रकृति उसकी सहचरी है। पशु उसके साथी है। विश्वास उसका जीवन है। सहृदयता उसकी निधि है। उसके काव्य-नायकपर आपत्ति आनेपर 'गौरा-पार्वती-महादेव' सहसा प्रकट हो जाते है। अन्याय होनेपर धरती फट जाती है और उसके पात्र उसमे समा जाते है। लोक-कविकी आस्था कभी खण्डित नही होती। उसका उत्साह कभी नही थकता। उसके

काव्यमे जीवनका अक्षय स्रोत है। वह राजाओ, धर्माधिकारियो और नेताओका मूक-आलोचक है। उसके पास कुछ थोडे-से काव्य रूप है—गीत, कहानियॉ, पहेलियॉ, उक्तियॉ और सूक्तियॉ। वह कृतित्व छोड जाता है, नाम नही। अभिजात साहित्य ताजगीके लिए सदैव उसका मुखापेक्षी रहा है। मध्ययुगके लोकाश्रयी साहित्यकी निजी सत्ताके विषयमे तो आज विश्वासपूर्वक अधिक नही कहा जा सकता किन्तु यह स्पष्ट है कि इस युगके धार्मिक साहित्यको इसने बहुत दूरतक प्रभावित किया है। विद्यापति और तुलसीके गीतोमे लोकगीतोका स्वर सुरक्षित है। जायसीके प्रेमाख्यानको आधार-शिला लोक-कहानी ही है। गोरख और कबीरकी उक्तियॉ लोक-समर्थित होकर लोकोक्ति बन गई है। तुलसीकी ग्राम-वधुय लोक-वधुयेही है जिनका सरल-स्नेह राम और सीताको विभोर कर देता है। उत्तर मध्यकालमे देवकविकी 'माखनसे मन' और 'दूधसे जोवनवाली अहीरी' लोक-साहित्यसे ही उधार ली गई है। सूर-साहित्यके मधुरतम प्रसग—गोप-जीवनकी सरसता—की अवतारणा पशुचारणकालके लोक-जीवनके स्मृति-स्थित-अवशेषके आधारपर ही की गई है। जिसे आचार्य शुक्लने 'देशकी अन्तर्वर्त्तिनी मूल भावधारा' कहा है[1] वह लोक-जीवनमे प्रवाहित होनेवाली स्वस्थ सरस लोक-काव्य-धारा ही है जो प्राय लोक-गीतोमे मुखरित हुई है। सूर सागरको लोक-भावसिक्त देखकर ही शुक्लजीकी पारदर्शी दृष्टिने अनुमान लगाया था कि—'सूर सागर किसी चली आती हुई गीत-काव्य-परम्पराका —चाहे वह मौखिक ही रही हो—पूर्ण विकास-सा प्रतीत होता है'[2]। इधर विभिन्न विद्वानो द्वारा जो लोक गीतोके सग्रह प्रस्तुत किये गये है उन्हे देखनेसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि बहुत-से गीतोकी रचना मुसलमानी सामन्तोके निरकुश शासनकालमे हुई होगी। हिन्दी-प्रदेशकी सभी बोलियोमे ऐसी सती साध्वी स्त्रियोके छोटे-छोटे गीत-बद्ध आख्यान मिलते है जिसमे वे किसी क्रूर अत्याचारी और रूप-लोलुप सामन्तसे अपने सतीत्वकी रक्षा करनेके लिए सती हो गई हैं। सन् १८५७ की क्रान्तिके लोक-प्रिय नेताओकी वीरता और शौर्यको लेकर—विशेषत बाबू कुँवर सिह, महारानी लक्ष्मीबाई और राना बेनीमाधो सिंह—कई लोकगीत लिखे गये थे, जो

१ हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ १६६।

२ हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ १६५।

इधर प्रकाशमे आए है। इस प्रकारके अनेक गीत पूर्व-मध्ययुगमे भी लिखे गये होगे जिनके अध्ययनसे तत्कालीन लोक-जीवन और लोक-भावनाका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। आज भी जो गीत-सगृहीत किये गये है उनमे जाने कितने प्राचीन युगके लोक-सस्कार लोक मानसने सचित कर रखे है। कौन सा गीत इतिहासके किस अज्ञात पृष्ठकी कहानी छिपाये है, यह बताना आसान नही है। फिर भी यह निर्विवाद है कि मध्ययुगीन धर्माश्रयी साहित्यपर लोक-भावनाका बहुत व्यापक प्रभाव पडा है। धर्मका प्रचार लोक-जीवनमे उतरकर ही किया जाता रहा है। मध्ययुगके भक्तो और आचार्योंने लोकको वेदसे समथित करनेकी चेष्टामे ही मूल्योकी स्थापना की है। मध्ययुगका धर्माश्रयी साहित्य इस दृष्टिसे भी महत्त्वपूर्ण है।

मध्ययुगीन धर्माश्रयी साहित्य

धर्म, भारतीय जन-जीवनका सर्वाधिक सचेष्ट और जीवित अग रहा है। धर्मकी रक्षामे मृत्युको भी वरण करना यहाँकी जनताके लिए साधारण-सी बात रही है। भारतवर्षकी जनतामे होनेवाले क्रान्तिकारी परिवर्तन धार्मिक क्षेत्रोमे ही हुए हैं। मध्ययुगमे धर्माश्रयी साहित्य मुख्यतः दो स्रोतोमे होकर प्रवाहित हुआ है। एक नाना पुराण निगमागम सम्मत सगुण भक्ति-धारा ओर दूसरी जैनियो, बौद्धो, योगियो, सूफियो, वैष्णवोके सम्मिलित प्रभावको लेकर चलनेवाली तथा तर्क, अनुभव और आत्म विश्वासको महत्त्व देनेवाली निर्गुण भक्ति-धारा। वस्तुतः वैदिक युगसे ही हम भारतके सास्कृतिक धरातलपर दो समानान्तर विचार-धाराओको प्रवाहित होते हुए लक्ष्य कर सकते हैं। एकको, सुविधाके लिए वैदिक धारा और दूसरेको वेद-विरोधी धारा कह सकते है। 'लोकायत', 'चार्वाक', 'आजीवक' आदि वेद-विरोधी मत थे। आगे चलकर जैन और बौद्ध मत भी वेद-सम्मत ब्राह्मण धर्मसे बराबर टकराते रहे। आचार-प्रधान और आडम्बरपूर्ण-विधिविधान-रहित होनेके कारण ये जनतामे शीघ्र अपनी जडे जमानेमे समर्थ हो सके थे। वैदिकमत वेदों, उपनिषदो और भगवद्गीताके माध्यमसे क्रमशः युगानुकूल परिवर्तनोको स्वीकार करते हुए आगे बढता रहा।

सगुण भक्तिका विकास

गुप्त-युगमे वेद समर्थित भक्ति-प्रधान भागवतधर्म 'वैखानस', 'सात्वत',

'पाञ्चरात्रिक' और 'ऐकान्तिक' आदि कई रूपोमे विकसित हुआ, किन्तु बौद्ध[१] और जैन धर्मोका आकर्षण कम नही हुआ था।[२] यह भागवत धर्म शुद्ध वैदिक धर्म नही था। इसे वेद-सम्मत सिद्ध करनेकी आवश्यकता पडी थी। बहुत सम्भव है, शक्ति सम्पन्न आर्येतर जातियोको समाजकी उच्चतर भूमिपर प्रतिष्ठित करनेके लिए उनके विश्वासो और आचारोके साथ उनका धार्मिक उन्नयन किया गया हो और इस प्रयत्नमे भागवत धर्म प्रतिष्ठित हुआ हो। हर्षके समयतक (६०६-४३) भारतवर्षमे बौद्ध और शैव मतोका विशेष प्रभाव था। ब्राह्मण धर्म प्रभावहीन था। आठवी शतीतक आते-आते भारतीय जनताका जीवन शताधिक जातियो, उपजातियो, धर्मों, सम्प्रदायो और मतोमे विभाजित होकर खण्ड-खण्ड हो गया। विदेशोसे आई हुई अनेक जातियाँ—हूँण, शक, सीथियन, कुशन, पल्लव, आभीर—कुछ कालतक सघर्ष करनेके बाद यहाँ आबाद हो गई थी। दक्षिणके मलाबार तटपर अरब यात्रियो और ईसाइयोका समागम हो चुका था। सातवी सदीमे अरब सौदागरोने मलाबार तटपर इसलामका प्रचार करना प्रारम्भकर दिया था और बल्लभीके शासकोसे उन्हे प्रोत्साहन भी मिला था। सातवाहन युग (ईस्वी सन् १३० तक) मे ही कुछ ऐसी जातियाँ पनप चुकी जिन्हे चतुर्वर्णोके अन्तर्गत नही रखा जा सकता था। १५० ई० पूर्व मनुस्मृति लिखी जा चुकी थी। सातवाहन युगमे याज्ञवल्क्य स्मृति लिखी गई, जिसमे 'वर्ण जाति विवेक वर्णन' करनेकी आवश्यकताका अनुभव किया गया। आचार्य शकरने इन समस्त भेद-प्रभेदोसे ऊपर उठकर अभेद-दर्शनकी प्रतिष्ठा की। उन्होने समस्त सृष्टिमे एक शाश्वत चेतन सत्ता (ब्रह्म) की सत्यता स्वीकारकी और जीवको उससे अभिन्न सिद्ध किया। जगतकी सत्ताको उन्होने विवर्तात्मक (अध्यासात्मक) माना। जगत्के समस्त स्थूल उपादानोको पीछे छोडकर आत्माके अस्तरपर स्थापित यह अभेद-दृष्टि

१ चौथी शताब्दीके अन्तमें पेशावरमे 'आसग' और 'वसुबन्धु' जैसे महान् बौद्ध दार्शनिक हुए थे। पाचवीं शताब्दीके प्रारम्भमे मगधमें 'बुद्धघोष' जैसा पण्डित हुआ था।
—भारतीय इतिहासका उन्मीलन, पृ० २३७।

२. ४५३ ई० मे सुराष्ट्रकी वलभी नगरीमे जैन विद्वानोंने जैन धर्मके सभी ग्रन्थोंका सम्पादन किया था।
—वही, पृष्ठ २७३।

व्यवहारिक जीवनमे अधिक उपादेय न सिद्ध हो सकी। किन्तु इससे एक लाभ हुआ। बौद्ध दार्शनिकोने जगतकी नित्यताको अस्वीकार कर दिया था किन्तु सभी पदार्थोंकी आन्तरिक एकता स्वीकार की थी।[१] शकरने उपनिषदोके आधारपर इसी सत्यको प्रतिपादित करके उन्हे हतप्रभ कर दिया।

जिस समय आचार्य शकर आत्माके स्तरपर अभेदकी स्थापना कर रहे थे उसी समय दक्षिणके तमिल प्रदेशमे आडवार भक्त, भावना (भक्ति और प्रेम)-के स्तर पर सभीको समान मानकर चल रहे थे। ये प्रेमको जगतका सारभूत तत्त्व मानते थे और विष्णुके दोनो रूपो—राम और कृष्ण—के प्रति व्यक्तिगत रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करके निष्काम भावसे उनकी उपासना करते थे। इनकी भक्ति दास्य, वात्सल्य और कान्ता इन तीनो भावोकी है। इन भक्तोमे ब्राह्मण, क्षत्रिय और शूद्र सभी थे। भावना-क्षेत्रकी यह समता, जो सामाजिक जीवनको भी प्रभावित कर रही थी, मध्ययुगकी बहुत बडी उपलब्धि है। प्रेमके क्षेत्रमे सभी एक है। भगवान् प्रेम-वश प्रकट हो जाते है। उनसे प्रेम करनेका अधिकार सभीको है। इस प्रकारकी स्थापनाओसे भारतीय धर्म-साधनामे एक नवीन युगका द्वार खुल गया। ग्यारहवी शताब्दीमे रामानुजाचार्य (१०३७-११३७ ई०) ने आडवार भक्तिको वेद-सम्मत सिद्ध किया। ११वी शताब्दीसे लेकर १६वी शताब्दीतक होनेवाले सभी आचार्यो—रामानुज, मध्व (११९९-१३०३ ई०), निम्बार्क (११६२ ई०), विष्णु स्वामी, वल्लभ (१४७९ ई० जन्म) ने भक्तिको वेद-सम्मत बताया। प्रेमके क्षेत्रमे सबकी एकता स्वीकार की और जाति-भेदको साधनाके क्षेत्रमे व्यर्थ माना। इन आचार्योंने समस्त उत्तरी भारतमे भक्तिका प्रचार किया। दक्षिणसे उमडनेवाला यह भक्तिका प्रबल प्रवाह प्राचीन पाञ्चरात्रिक भक्तिसे मिलकर समस्त उत्तरी भारतमे छा गया। श्रीकृष्णस्वामी आयगरके शब्दोमे भक्तिका यह विकास भारतीय सस्कृतिके प्रति दक्षिण भारतकी

---

१ The Philosophy of idealisatic absolutism that was started by Maitreya and Asanga and elaborated by Vasubandhu denies the existence of the eternal objective world and ends in the affirmation of oneness of all things

—*The Legacy of India*, p 119

एक बहुत बडी देन है ।'[1] ११वी शतीमे ही उत्तरी भारतका नकशा बदल गया था । बौद्ध मत, शाक्त और तान्त्रिक मतोमे घुल-मिलकर बगालमे जी रहा था । जैन मत गुजरात और राजपूतानामे सीमित था । शेष भारत वैष्णवधर्मके प्रभावमे आ गया था । १५वी शतीतक तो सम्पूर्ण भारतमे वैष्णव-भक्ति-आन्दोलन छा गया । इस वैष्णव भक्तिका स्वरूप बहुत-कुछ भगवद्गीता, श्वेताश्वतर उपनिषद और महायानी बौद्ध धर्मके सम्मिलित प्रभावसे सघटित हुआ था । जातीय-भेद-भावके प्रति उदारताका दृष्टिकोण बौद्ध और जैन धर्मोके प्राचीन और शुद्ध रूपसे लिया गया है किन्तु इसमे निहित उग्ण और अहेतुक प्रेम, आत्महीनता और प्रपन्नता तथा प्रगतिशील सहजताकी व्याख्या पडित लोग प्राचीन ग्रन्थो एव वैदिक भक्तिके आधारपर नही कर पाते । पाचरात्रादि भक्ति मूलक तन्त्रोके लिए कहा जाता है कि इनका निर्माण वेद-बाह्य समझे जानेवाले व्यक्तियोकी रक्षाके लिए केशवने शिवसे प्रेरित होकर किया था[2] । बहुत सम्भव है भक्तिका यह स्वरूप आर्येतर जातियोकी देन हो और इस तथ्यकी पौराणिक ढगसे उपर्युक्त व्याख्या कर ली गई हो । अनेक विदेशी और कुछ देशी विद्वानो—बर्नेल (Burnell), वेबर (Weber) लॉगन (Logan), हॉपकिन्स (Hopkins) पोप (Pope), ग्रियर्सन (Grierson) और भडारकर—ने वैष्णव भक्तिकी प्रगतिशीलताको ईसाई धर्म-प्रेरित माना है । कुछ विद्वानोने इसे इस्लामके प्रभाव रूपमे स्वीकार किया है । इसलामका अर्थ ही प्रपन्न होता है । डॉ० ताराचन्दने अदाज लगाया है कि बहुत सम्भव है रामानुजने यह प्रपन्नता इस्लाम से ग्रहण कर ली हो ।[3] किन्तु ये सभी मान्यताये सम्भावना-साध्य ही है । 'शरणा-

---

१ *Some Contribution of South India to Indian Culture*, भूमिका, पृ० १४ ।

२ तस्माद् वै वेद बाह्याना रक्षणार्थाय पापिनाम्
विमोहनाय शास्त्राणिकरिष्यावो वृषध्वज ॥ ११६ ॥
चकार मोह शास्त्राणि केशवोऽपि शिवेरित ॥ ११७ ॥
—कूर्म पुराण, अध्याय १४, भक्तिका विकास, डॉ० शर्मा, पृ० २४८ पर उद्धृत ।

३ The word Islam means surrender, and the Muslim is varily a *Prapanna* It has been shown that the submission to the

गति'की भावना तो 'गीता'मे भी मिलती है। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज' कहकर भगवान्‌ने जीवमात्रको पापमुक्त होनेके लिए 'शरणागति' को ही एकमात्र और अतिम साधन बताया है। गीताके ही निष्काम कर्मको भक्ति-क्षेत्रमे प्रतिष्ठित कर देनेसे 'अहेतुकी भक्ति'की उद्‌भावना भी की जा सकती है। गीताकी रचना (मूल रूपमे) ई० पूर्व २०० मानी जाती है। किन्तु उसको वर्तमान रूप किस समय दिया गया, नही कहा जा सकता। विद्वानोका अनुमान है कि भागवत धर्मके लोकप्रिय होनेपर औपनिषदिक मान्यताओको नवीन परिस्थितियोके अनुकूल मोडनेके प्रयत्न मे 'गीता' जैसे महान् ग्रन्थकी रचना हुई होगी। भागवत धर्मकी प्रतिष्ठा महाभारत कालमे ही किसी-न-किसी रूपमे हो गई थी। महाभारतको ईसा-पूर्व चौथी शताब्दीमे ही वर्तमान रूप प्राप्त हो चुका था। यदि मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलनमे निहित प्रेम और समताकी भावनाका प्रेरक स्रोत ईसाई धर्मको माना जाय तो भी घूम-फिरकर भारतवर्षमे ही लौट आना पडता है क्योकि ईसाई धर्म भी बौद्ध-धर्मसे प्रभावित माना गया है। बौद्ध और जैन व्यापारियोके अलेक्जैड्रिया (Alexandria) मे बसनेकी बात बहुत पुरानी है। अशोकने मेसीडोनियामे भी बौद्ध भिक्षुओको प्रचारार्थ भेजा था और इन भिक्षुओके अलेक्जैड्रियामे पहुँचनेकी बात तो विदेशी विद्वान् भी स्वीकार करते है।[१] जो भी हो, ११ वी शतीतक उत्तर भारतमे वैष्णव भक्ति प्रतिष्ठित हो चुकी

---

will of God is an essential part of the Muslim religious consciousness Historically also there is no insuperable difficulty in supposing that Ramanuja adopted it from Islam

—*Influence of Islam on Indian Culture*,
—Dr Tarachand, p 114

१ "Whether the yellow robed messengers of the Law of Piety ever actually reached Macedonia or Epirus may be regarded as doubtful, but there is no reason to suppose that they did not get as far as Alexandria and Antioch"

—*The Legacy of India*, p 11.

थी और आडवार भक्तोके भावावेशमय गीतोसे लेकर भागवत पुराण, विष्णु पुराण तथा अन्य भक्ति-ग्रन्थो तकमे धार्मिक उदारता एव जातिगत एकताकी भावनाका समर्थन किया जा चुका था।[१] इसी भावनाका विकास मध्ययुगीन हिन्दी सगुण भक्त कवियोमे देखा जा सकता है। सूर तथा अन्य 'अष्टछापी' कवि और तुल्सी तथा अन्य रामभक्त कवि भक्तिके क्षेत्रमे जाति-भेदको व्यर्थ मानते है और प्रेमको सर्वोपरि सम्मान देते है।

निर्गुण-भक्तिका विकास

निर्गुण-भक्तिधाराका विकास कुछ भिन्न मार्गोसे हुआ। ब्राह्मण धर्मकी पुन प्रतिष्ठाके बाद बौद्ध धर्मानुयायी कही खो नही गये। वे जनतामे घुल-मिल गये। ११ वी शतीमे बगाल प्रान्तमे इनका थोडा बहुत प्रभाव शेष रह गया था। ये वज्रयान और सहजयान सम्प्रदायोमे बॅटकर तान्त्रिक हो गये थे। सहजयानी सिद्धोमे शाक्त तान्त्रिकोके प्रभावसे गुह्य साधनाओका प्रचार भी हो गया था। अब बौद्ध लोग सिद्ध हो गये ये। इनकी स्थिति स्पष्ट करते हुए राहुल साकृत्यायनने लिखा है—"गुह्य समाज एकत्रित होने लगे, जहॉ स्त्री-पुरुषोको मन्त्र-मैथुनकी पूरी स्वतन्त्रता दी गई सहज मार्गसे पाखड-मार्ग पकडना अधिक आसान था, इसलिए सरहपाका सहजयान, तन्तर-मन्तर, भूत प्रेत, देवी-देवता, सम्बन्धी हजारो मिथ्या-विश्वासो और ढोगोके पैदा करनेका कारण बना"।[२] इसकी प्रतिक्रिया नाथ-पथी योगियोकी आचारनिष्ठा-मूलक-धर्म-साधनामे हुई। यह नाथधर्म भारतवर्षका बहुत पुराना धर्म था। इसको माननेवाले ब्राह्मण-धर्म व्यवस्थाके कायल नही थे। ब्राह्मण धर्मके उत्थान काल्मे इनकी सामाजिक मर्यादाका ह्रास हुआ होगा। गोरखनाथ जैसे महापुरुषोके नेतृत्वमे यह धर्म-

---

१ The Vishnu-Puran says that to look upon all beings as equal to One's-Self and to love them all as one would love one's own self is the service of God for God has incarnated Himself in the form of all Living beings,"

S N Das Gupta, *The Legacy of India*, p 122

२ हिन्दी काव्य-धारा, पृष्ठ ३५।

साधना पुनः जीवित हो उठी। १४ वी शतीतक इन जोगियोमे भी अनेक प्रकारके वाह्याचार प्रविष्ट हो गये। ठीक इसी समय दक्षिणसे प्रगतिशील रामभक्तिकी जीवन-प्रेरणा लेकर राघवाचार्य उत्तर भारतमे आये। इन्हीके शिष्य प्रसिद्ध रामभक्त रामानन्दजो थे। उत्तरके योगके थालेमे भक्तिका बीज इन्ही रामानन्दने डाला था। इन दोनो धार्मिक मतो (भक्ति और योग) के सयोगसे निर्गुण-भक्ति-सम्प्रदायके सन्तोकी परम्परा पुष्ट और पल्लवित हुई। उत्तर भारतमे अनेक वयनजीवी (बुनकर) जातियाँ थीं जिनका सम्बन्ध नाथ-पथसे था। बगालमे तो 'जुगी' जाति ही है जो कपडा बुननेका कार्य करती है।[1] कबीरदास-जी ऐसी ही किसी जातिके जुलाहे थे। इस समयतक उत्तरी भारतमे मुसलमानो-का शासन स्थापित हो गया था। ब्राह्मण-धर्म-व्यवस्थामे जिन जातियोको सामाजिक सम्मान नही मिला था वे सामूहिक रूपसे मुसलमान धर्म स्वीकार कर रही थी। मुसलमानी शासकोके साथ कट्टर एकेश्वरवादी मुल्ला और मौलवी तथा उदार प्रेमी सूफी-साधक भी इस देशमे आये थे। इन नवागतुकोके प्रति जनतामे पर्याप्त आकर्षण था। सूफी साधक अपनी सहजता, प्रेमनिष्ठा और उदारताके कारण हिन्दू जनताको अधिक प्रभावित कर सके थे। कबीरने अपने चारो ओर देखा। एक ओर बौद्ध-सिद्धो और योगी-साधकोकी छिन्न-भिन्न परम्परा चल रही थी। दूसरी ओर वैष्णव भक्तो और आचार्योंकी लोकप्रियताके आगे इस्लामके आगमनसे (और परिणामस्वरूप मन्दिरो और मन्दिरोके ध्वस्त होनेसे) प्रश्न का चिह्न लग गया था। तीसरी ओर शाक्तोकी गुह्य और तान्त्रिक साधना अपनी अलग करामात दिखा रही थी। और, चौथी ओर कट्टर एकेश्वरवादी मुसलमानोकी विजयके तेजसे जगमगाती हुई सगठित भ्रातृ भावना निम्नवर्गीय जनताको आकर्षित कर रही थी तथा उन्हीके साथ आये हुए सूफी-साधकोंके प्रेमकी पीडा सहृदय हिन्दुओके चित्तको द्रवीभूतकर रही थी। उन्होने इन सभी धार्मिक मतोको मानवताके सहज स्वरूपसे कुछ भिन्न पाया। इसलिए वे किसी एकके प्रति पूर्ण निष्ठा न व्यक्तकर सके। उन्होने योगियासे (शायद) द्वैताद्वैत विलक्षण (निर्गुण-सगुणसे परे) 'समतत्व'के रूपमे अपने आराध्यको ग्रहण किया। बौद्ध-सिद्धोसे सहज-साधना (आडम्बर रहित आचारनिष्ठाके रूपमे) ली। वैष्णवोसे

१ कबीर, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृ० ७।

अहिसा, अनन्यता और समर्पणका तत्त्व लिया और सूफियोसे प्रेमकी पीडा लेकर सहज मानवधर्मकी प्रतिष्ठा की। कबीर द्वारा प्रतिष्ठित इस भक्ति-धाराको सामान्यतः निर्गुण-भक्ति कहा गया है। इस निर्गुण परम्पराके विकासमे कबीरके साथ नानक, पीपा, सेन, रैदास आदि सन्तोने यथेष्ट योग दिया। इस्लामके प्रवेशके साथ ही इस देशमे आये हुए सूफी साधकोने अपनी कई परम्पराये चला दी थी। इनमे 'चिश्ती', 'सुहरावर्दी', 'कादिरी', 'शत्तारी' और 'नक्शवन्दी' परम्पराये अधिक प्रसिद्ध हुई। मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यके विकासमे इन सूफी साधकोने भी पर्याप्त योग दिया। कुतुबन, मझन, जायसी और उसमान जैसे कवि इन्ही परम्पराओकी देन है। इनमे कुतुबन और मलिक मुहम्मद जायसी चिश्ती परम्पराम आते है। इन सूफी कवियोको भी निर्गुण-भक्ति-परम्परामे स्थान दिया गया है। सन्तो और सूफियो-की भक्तिको अलग करनेके लिए एकको ज्ञानाश्रयी और दूसरेको प्रेमाश्रयी कहा गया है। इस प्रकार पूर्वमध्यकालीन धर्माश्रयी हिन्दी-साहित्यके निर्माताके रूपमे कबीर, नानक, रैदास, पीपा, सेन, दादू, मलूक, सुन्दरदास, दरियादास आदि सन्त कवि, कुतुबन, मझन, जायसी, उसमान आदि सूफी कवि, सूरदास, नन्ददास, कृष्णदास, परमानन्द दास, कुम्भनदास, चतुर्भुज दास, मीरॉ बाई आदि कृष्ण भक्त-कवि, और तुलसीदास, अग्रदास, नाभादास, हृदयराम आदि राम-भक्त कवियोको प्रमुख स्थान दिया जा सकता है।

कृष्ण और राम-भक्ति-धाराओका परवर्ती रूप

कृष्ण-भक्ति और राम भक्ति धाराये मूलत· एक ही वैष्णव-भक्ति परम्परासे उद्भूत थी किन्तु मध्ययुगमे इनका विकास निजी विशेषताओके साथ अलग-अलग हुआ। कृष्णभक्ति अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत क्षेत्रमे प्रचलित हुई। मराठी, गुजराती और बगाली क्षेत्रोमे इसका व्यापक प्रचार हुआ। १५ वी और १६ वी शताब्दीमे इस भक्तिधारामे अनेक परिवर्तन हुए। चैतन्य (बगालमे) निम्बार्क और वल्लभ सम्प्रदायो (विट्ठलनाथके समयमे) मे राधा-तत्त्वकी प्रतिष्ठा हुई। हिन्दी-प्रदेशमे हितहरिवशजीने (१५६५ ई० मे वर्तमान) राधावल्लभीय सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा की। स्वामी हरिदास (१५४३-१५६० ई० कविताकाल) ने 'टट्टी' सम्प्रदाय चलाया। वल्लभाचार्यजीके मतमे भी हरिराम, रसखानि

आदि प्रसिद्ध कवि हुए। निम्बार्क सम्प्रदायमे श्री भट्टजी (१५६८ ई० कविता-काल) तथा राधावल्लभीय सम्प्रदायमे 'व्यासजी' (१५६३ ई० कविताकाल) अच्छे कवि हुए। कृष्णभक्ति परम्परामे राधातत्त्वकी प्रतिष्ठा और उन्हे कृष्णसे भी अधिक महत्त्व देनेके कारण एक नये अध्यायका आरम्भ हुआ। सर आर० जी० भण्डारकरने इसे वैष्णवभक्तिके ह्रासोन्मुख होनेका कारण माना है[1]। तुलसीदासके बाद रामभक्ति-शाखामे भी भक्तिका मर्यादित रूप स्थिर न रह सका। 'रामभक्तिमे रसिक भावना'का विकास हुआ। रसिक भक्तोने स्वय तुलसीदासको 'तुलसी सखी' बना दिया। उत्तर मध्यकालमे 'रसिक भावना'की भक्तिका विकास ठीक उन्ही पदचिह्नोपर हुआ जिसपर चलकर कृष्णभक्ति ह्रासोन्मुख हुई थी। १९वी शतीके आरम्भमे रसिकाचार्य महात्मा रामचरणदास-ने रसिक सम्प्रदायको सगठित किया[2]। सम्प्रदायकी प्राचीनता दिखानेके लिए वेद, उपनिषद, पुराण, सहितायें, वाल्मीकि रामायण तथा तन्त्र-ग्रन्थोसे उद्धरण प्रस्तुत किये गये। 'गोलोक'के स्थानपर 'साकेतधाम'की कल्पना हुई। राम-भक्त भगवान् रामके प्रति 'मधुर', 'सख्य', 'दास्य', 'वात्सल्य' और 'शान्त' भावकी सम्बन्ध-स्थापना करने लगे। भगवान् राम एक पत्नीव्रत त्यागकर आठ पट-रानियोके नायक हुए। वे भी सीताकी अनन्त सखियोके साथ लीला करने लगे। भक्त लोग सखा भावसे उस लीलामे प्रवेशकर कृतकृत्य हुए। मधुर भावकी साधना चाहे जिस सम्प्रदायमे हो, आत्माके स्तरपर कुछ विशिष्ट साधकोके जीवनमे ही चरितार्थ हो सकती है। जनसामान्यमे उसका प्रचार होनेपर वह शारीरिक भोग-विलाससे ऊपरकी वस्तु नही रह पाती। रामको 'छबीले छैला'

---

१ The introduction of Radha's name, and her elevation to a higher position even than Krisna's operated as a degrading element in Vaisnavism, not only because she was a woman, but also because she was originally a mistress of the cowherd god, and her amorous dealing were of an overt character

—*Vaisnavism, Saivism & Other Cults*, p 125, (1929)

२ रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय, पृ० १४७

—डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह।

कहनेमे पता नही क्यो, मेरे सस्कारोको तो ठेस ही लगती है। जो भी हो, साहित्यिक और सामाजिक मूल्योकी दृष्टिसे उत्तर-मध्यकालीन राम-भक्ति किसी नवीन दिशाकी ओर सकेत नही करती। पूर्व-मध्यकालीन कृष्ण और राम-भक्ति धाराओकी भॉति इसमे जातिगत उदारता भी नही दृष्टिगत होती। प्रारम्भमे इसका स्वरूप गुह्यात्मक था और बादमे भी यह कुछ राजो-महराजो, सेठो और उनके कृपापात्र सन्तो-महन्तोमे ही सीमित रही।

निर्गुण-भक्तिका परवर्ती रूप

निर्गुण भक्ति-परम्पराके सन्तोमे भी आगे चलकर वह उत्साह न रह गया। उत्तर-मध्यकालमे भी अनेक सन्त सम्प्रदायो और पथो—बाबालाली सम्प्रदाय, धामी सम्प्रदाय, सत्तनामी सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय, दरियादासी सम्प्रदाय, दरियापथ, शिवनारायणी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, गरीब पथ, पानप पथ, रामसनेही सम्प्रदाय आदि—का प्रवर्त्तन किया गया। किन्तु इन सन्त सम्प्रदायोके द्वारा जीवनमे किसी नये मूल्यकी प्रतिष्ठा न हो सकी। ये अवतारवादकी ओर झुक गए। इनमे समझौते और समन्वय (तथा कभी-कभी अनुकरण) की प्रवृत्ति पनपने लगी। इनमे भी कर्मकाण्ड और पूजापद्धतिके विविध-विधानोका समावेश हुआ। इनका प्रभाव आचलिक रह गया। सिक्ख पथ अवश्य ही नवीन चेतना और स्फूर्तिसे प्रेरित होकर एक सगठित एव शक्ति सम्पन्न सम्प्रदायके रूपमे परिणत हुआ और अदम्य उत्साहके साथ औरगजेबकी शक्तिको क्षीण करता रहा। गुरु गोविन्दने (१६७५ ई० के आस-पास) सिक्खोके सास्कृतिक सगठनको एकताके सॉचेमे ढालकर राजनीतिक दृष्टिसे पूर्णत: सगठित करके खाल्सा दलमे परिणत कर दिया।[१] तुर्कोके

१ All, he said, must become as one, the lowest were equal with the highest, caste must be forgotten, they must accept the 'Pahul' or initiation from him, and the four races must eat as one out of one vessel The Turks must be destroyed, and the graves of those called Saints neglcted

—*History of the Sikhs*, by Joseph Davey, Cunningham, p 63, 1955

विनाशके लिए कृत सकल्प गुरु गोविन्दसिंह द्वारा फूँकी गई यह नव-चेतना एक प्रकारका प्रतिक्रियात्मक मजहबी जोश था जो अब भी राष्ट्रीयताके प्रशस्त मार्गपर एक मजबूत ढोकेके समान अडा हुआ है। प्रेममार्गी सूफी साधक उत्तर मध्यकालमे भी प्रेमाख्यान लिखते रहे। शेख नबीका 'ज्ञानदीप' (१६१९ ई०), कासिम-शाहका 'हस जवाहिर' (१७३१ ई०) नूरमुहम्मदकी 'अनुराग-बाँसुरी' (१७६४ ई०) आदि रचनाएँ इसी युगमे लिखी गई। कुछ सत कवियोने भी सूफियोके अनुकरणपर प्रेमकाव्य प्रस्तुत किया। दु.खहरनदासकी 'पुहुपावती', और धरणी-दासका 'प्रेम परगास' ऐसी ही रचनाये है। इन सभी कृतियोमे परम्परा-पालनकी प्रवृत्ति ही लक्षित होती है। शाहजहाँके उदारमना सुपुत्र दाराशिकोहने सूफी सन्तोको आश्रय दिया था। बर्नियरने शाहजहाँके शासनकालके अन्तिम दिनोका विवरण देते हुए सूफी सम्प्रदायको 'एक महान् रहस्यवादी सम्प्रदाय' कहा है और दारा तथा शुजा दोनोको सूफियोसे प्रभावित माना है।[१] दारा शिकोहकी मृत्युके बाद सूफियोका प्रभाव प्रेरणा और आश्रयके अभावमे क्रमश. क्षीण होता गया। तात्पर्य यह कि पूरे पूर्व ओर उत्तर मध्यकालके धर्माश्रयी साहित्यके उत्कृष्ट रूपकी अभिव्यक्ति कबीर, जायसी तथा सूर और तुलसीकी कृतियोमे ही हुई है। अत धर्माश्रयी साहित्यके मूल्योकी चर्चा इन्हीको लक्ष्यमे रखकर की जा सकती है।

धर्माश्रयी साहित्यका मूल्यांकन

१ **सामाजिक उदारता**—यह कहा जा चुका है कि वैष्णव भक्तिको प्रतिष्ठाके रूपमे एक प्रकारसे भक्ति-भावनाके क्षेत्रमे अभेद या एकता स्थापित करनेकी चेष्टा की गई थी। सूर और तुलसी दोनोमे यह धार्मिक उदारता लक्ष्य की जा

१ In conclusion, I shall explain to you the Mysticism of a great sect (Le Mystere d' une grande Cabole) which has lately made great noise in Hindustan, in as much as certain Pendets or Gentile Doctors had instilled it into the minds of Dara and Sultan Sujah, the elder sons of Chah-Jehan

—*Travels in the Mogul Empire*
Francois Bernier, p 345, 1916

सकती है। किन्तु इन कवियोके काव्यमे व्यवहारिक स्तरपर सामाजिक-अभेदकी भावनाकी पुष्टि नही की गई है। इनकी उदारताका इतना ही अर्थ है कि भगवान्से प्रेम करनेका अधिकार सभी वर्णो और जातियोको है। जहॉ भगवान्के प्रति सच्ची निष्ठा है वही वे निवास करते है। भगवान् पुरुष और नारी तथा कुलीन-अकुलीनका भेद-भाव नही करते। सूरके एक पदमे यह भावना स्पष्ट रूपमे व्यक्त हुई है —

"कियौ सुर-काज गृह चले ताके।
पुरुष औ नारी को भेद-भेदा नही, कुलिन अकुलिन अवतऱ्यो काकै।
दास-दासी कौन प्रभु निप्रभु कौन है, अखिल ब्रह्माण्ड इक रोम जाकै।
भाव साँचौ हृदय जहॉ, हरि तहॉ है, कृपा प्रभुकी माथ भाग वाकै।
दास दासी स्याम भजनहुँ तै जिये, रमा सम भई सो कृष्न दासी।"[1]

तुल्सीके काव्यमे भी यह भावना अनेक स्थलोपर प्रकट हुई है। 'विनय-पत्रिका' मे लगभग सूरके ही स्वरमे वे भी कहते है कि गुह जैसे कुलहीन गरीबने, जिसने भला किस जीवका भक्षण नही किया था, पावन प्रेमके प्रभावसे सखाका सम्मान प्राप्त किया—

"गुह गरीब गत-ज्ञाति हूँ जेहि जिउ न भखा को
पायो पावन प्रेम ते सनमान सखा को।"[2]

यही तुल्सी रामराज्यका वर्णन करते हुए 'बरनाश्रम निज निज धरम निरत वेद-पथ लोग' कहकर वर्ण और आश्रम धर्मके प्रति अपनी आसक्ति व्यक्त करते हुए वैष्णव भक्तिके सामाजिक दृष्टिकोणकी व्यञ्जना करते है। इसी प्रसगमे वे यह भी कहते है—'विप्र चरन सेवक नर नारी'। इस प्रकार उन्हे ब्राह्मण वर्गकी सामाजिक उच्चता पूर्णत मान्य है। सूरने भी कुब्जा और कृष्णके साथको वैसा ही अशोभन और अनुचित माना है जैसा ब्राह्मण और शूद्रका एक साथ भोजन करना।[3] साराश यह कि मध्य युगमे वैष्णव-भक्ति-साहित्य (हिन्दी) के माध्यमसे

---

१ सूरसागर दशम स्कन्ध, ३७१९ पद, पृ० १३२०, सभा सस्करण।

२. विनयपत्रिका, पद १५२, तुलसी ग्रन्थावली, पृ० ५३६।

३ 'भोजन साथ सूद्र ब्राह्मनके तैसो उनको साथ' सूरसागर, दशम स्कन्ध, पद, ३७७०।

मनुष्य मात्रकी सामाजिक एकताकी प्रतिष्ठा नही की गई। भगवान्‌के दरबारमे सब एक माने गये किन्तु समाजमे जो जहॉ था वही रहा। जायसीके सामने सामाजिक समता या एकताका प्रश्न ही नही था। उनके लिए प्रेम सर्वस्व था और उस क्षेत्रमे भेद-अभेदका प्रश्न नही था। वर्ण-व्यवस्था या जन्मजात उच्चता और नीचताको तर्क, विश्वास, शक्ति और दृढताके साथ प्रबल चुनौती (हिन्दी कवियोमे) सबसे पहले कबीरने दी। उन्होने पडितोके गढ काशीमे डकेकी चोट कहा—

> "एक बूँद एकै मल मूतर, एक चाम एक गूदा।
> एक जोति थै सब उतपना, कौन बाँम्हन कौन सूदा॥[1]

'मनुष्य होनेके नाते हम सब एक है' और 'यह एकता सामाजिक स्तरपर भी मान्य होनी चाहिये' निर्गुण सन्तोकी यह बहुत बडी उपलब्धि थी। इस सामाजिक मूल्यका उदय इसलामी प्रभावसे ही हुआ, ऐसा नही कहा जा सकता, क्योकि बौद्धो और योगियोने भी वर्ण-व्यवस्थाको चुनौती दी थी। कबीरने तो मुसलमानो-को भी उनके आडम्बरके लिए फटकारा था। भारतवर्षमे आकर उनमे भी सैयद, तुर्क और पठानका भेद-भाव उत्पन्न हो गया था। सन्त कवियोकी वाणियोमे जिस मनुष्य-सत्य, सामाजिक एकता और मानवधर्मकी प्रतिष्ठा मध्ययुगमे हुई वह हिन्दीके लिए गौरव और गर्वकी वस्तु है। खेद है कि व्यवहारिक जीवनमे उसकी प्रतिष्ठा आज भी नही हो सकी है। मध्ययुगमे उसकी चरितार्थताकी बात सोचना तो मनोराज्यमे विचरण करना था। स्वय तुलसीदासको, जो सारे ससारको 'निज प्रभुमय' तथा 'सीय राम मय' देखते थे और जिनका किसीसे कोई विरोध नही था, सन्तोके उपर्युक्त कथन खटके ही नही, चुभे भी थे। फिर औरोसे क्या आशाकी जा सकती थी ?

२. **नैतिक दृष्टि**—मध्ययुगके भक्त कवियोकी दूसरी बडी उपलब्धि, जो सभीमे समान रूपसे पाई जाती है, उनकी नैतिक दृष्टि है। आचरणकी शुद्धताको इस भारत भूमिमे सदैव महत्त्व दिया गया है। स्वय रामानुजाचार्यने भक्ति-योगकी साधनाके लिए 'यम नियम आसन' आदि अष्टाग योगके अभ्यासके साथ

---

१. कबीर ग्रन्थावली, पदावली, ५७, पृ० १०६, सभा सस्करण, १९२८ ई०।

ही पवित्रता, सत्यता, अहिंसा, सहानुभूति, उदारता आदि मानवीय गुणोंके अभ्यासको भी आवश्यक माना था।[१] कबीरने 'कथनी-करनीकी एकता', 'मनकी पवित्रता', 'साधु-संगति', अहंकारत्याग', 'सत्यनिष्ठा', 'अहिंसा', 'सहानुभूति' आदि गुणोंकी आवश्यकतापर ध्यान दिया है। जायसी भी अपनी लम्बी प्रेम कहानीमें अवसर निकालकर 'दानमहिमा', 'विनम्रता', 'उपकार', साहस' और 'सत्यनिष्ठा' आदिका विशद् वर्णन करते हैं।[२] सूरसागरके विनय सम्बन्धी पदोंमें नैतिक आदर्शोंकी प्रतिष्ठा की गई है। 'तजि अभिमान, राम कहि बौरे', 'तजौ मन हरि-विमुखनको संग', 'रे मन, छाँडि विषय कौ रँचिबौ', 'अबकै नाथ मोहि उधारि,' आदि पदोंमें आचार-निष्ठा और नैतिकतापर बल दिया गया है। दशम स्कन्धमें एक स्थानपर वे कहते हैं कि माया, मोह, लोभ और मान व्यक्तिके लिए फाँस तुल्य है।[३] तुलसीदासकी कृतियोंमें तो नैतिकताकी सीख स्थल-स्थलपर दी गई है। उत्तर-कांडमें भरतकी जिज्ञासाके उत्तरमें भगवान् रामने जो सन्तोंके लक्षण गिनाये हैं वे सभी नैतिक मूल्योंकी प्रतिष्ठा करनेवाले हैं।[४] युद्ध-भूमिमें रामने विभीषणको जिस 'धर्मरथ' का अलंकारिक ब्यौरा दिया है, वह भी जीवनका नैतिक दृष्टिसे किया जानेवाला मूल्यांकन ही है। विनयपत्रिकामें स्वयं तुलसीदास जिस प्रकारके जीवनकी कामना करते हैं, वह एक प्रकारकी शुद्धाचारपूर्ण नैतिक जीवन-व्यवस्था ही है[५]। इन भक्त-कवियोंकी परम्परामें होनेवाले परवर्ती कवियोंने भी इन मूल्योंको बार-बार दुहराया है। कुछ जैन और सन्त कवियोंको तो उत्तर मध्यकालमें शृंगाररसका अत्यधिक प्रचार अशोभन लग रहा था और उन्होंने उसका विरोध भी किया।

---

१ Vaisnavism, Saivism and Minor Religous Systems, p 77

२ आचार्य रामचन्द्र शुक्लने जायसी ग्रन्थावलीकी भूमिकामें इन प्रसंगोंमें सबद्ध पंक्तियोंको एकत्र कर दिया है।—देखिये, पृ० १६५, तृतीय संस्करण।

३ माया मोह लोभ अरु मान। ये सब नर कौ फाँस समान।—दशम स्कन्ध, पद ५९१९

४ देखिये उत्तर काण्ड, दोहा ३७ और ३८ में आनेवाली चौपाइयाँ।

दशम स्कन्ध, पद ४९१९

५ कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
यथा लाभ सन्तोष सदा काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो। पद १७२।

३ **प्रेमकी महत्ता**—नैतिकताको आवश्यक और श्रेष्ठ मानते हुए भी मध्ययुगके उपर्युक्त सभी कवि प्रेम-तत्त्वको उससे अधिक महत्त्व देते रहे है। 'मानस'मे स्पष्ट कहा गया है कि—

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम त प्रगट होहिं मै जाना॥
अगजगमय सब रहित विरागी। प्रेम तें प्रभु प्रगटइ जिमि आगी।"[1]

सूरदासजी भी गोपियो द्वारा अपनी बात प्रकट करते हुए कहते है—

प्रेम प्रेम तै होइ, प्रेम तें पारहिं जइयै।
प्रेम बध्यौ ससार प्रेम परमारथ लहियै।
साँचौ निहचै प्रेम कौ जीवन मुक्ति रसाल।
एकै निहचै प्रेम कौ जतै मिलै गोपाल।

—दशम स्कन्ध, पद ४७१३

कबीर और जायसी तो 'प्रेम तत्त्व' को ही सब कुछ मानते थे। वस्तुत मध्ययुगके हिन्दी-भक्त-कवियोने भेदकी सभी खाइयोको प्रेमकी स्निग्धतासे ही भरना चाहा था। तुलसीके काव्यमे नैतिक मूल्योको, व्यवहारिक जीवनमे, प्रेमसे कम महत्त्व नही दिया गया है किन्तु कबीर, जायसी और सूरके काव्यमे तो प्रेमको नेमकी तुलनामे श्रेष्ठ स्वीकार किया गया है।

५. **काव्यादर्श**—मध्ययुगकी काव्यकृतियोके आधारपर तत्कालीन जनजीवनकी सक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत करनेके पहले हम सक्षेपमे धर्माश्रयी कवियोकी काव्य-धारणा सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण देनकी चर्चा आवश्यक समझते है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी आदि सभी कवियोने अलकार-शास्त्रके सीमित दायरेसे अलग 'मति अनुरूप' इष्ट देवके गुणगानको ही श्रेयस्कर माना। राज्याश्रय और उनके प्रलोभनोको ठुकरा दिया। व्यक्तित्व-सस्कार और लोक-सग्रहको काव्यका लक्ष्य स्वीकार किया। जन-भाषाको अभिव्यक्तिका माध्यम बनाया। तुलसीने लोक-गीतोको भी काव्य-रूपमे प्रतिष्ठित किया। सूरने काव्यकी कीर्तन-पद-शैलीको पुष्ट किया। सगीत-कलाको काव्य-कलाके उत्कर्षमे सहायक माना। गौडीय वैष्णव कवियो और सम्भवत उनसे प्रभावित नन्ददास आदि अष्टछापी कवियोने

१ मानस, बालकाण्ड, पृ० १८७।

रूपगोस्वामीके 'उज्ज्वल नीलमणि', (भक्ति-शास्त्रीय ग्रन्थ)के आधारपर मधुर, या उज्ज्वल रसकी प्रतिष्ठा की, जो प्राचीन रस शास्त्रपर आधृत होते हुए भी चेतन या दिव्य आध्यात्मिक सत्ताके प्रति व्यक्त प्रेमसे पुष्ट होनेके कारण लौकिक शृङ्गार और उसकी जड-विषयक रतिसे सर्वथा भिन्न कोटिका है। उपर्युक्त मान्यताओकी प्रतिष्ठासे लोक-रुचिमे परिवर्तन हुआ। परवर्ती सस्कृत कवियो की अलकृत वर्णन विशदता और चमत्कारपूर्ण शब्द-क्रीडाके स्थानपर सरल सुबोध शैलीमे आदर्श-चरित्र-विधायक-काव्योकी रचना करके इन कवियोने जनताके हृदयमे स्थान प्राप्त किया। हिन्दीके श्रेष्ठ प्रबन्ध और मुक्तक काव्योकी रचना इसी युगमे हुई। मुसल्मानो और हिन्दुओके सास्कृतिक सम्पर्कसे उस भाषाका जन्म हुआ जिसकी एक शैली आजकी खडी-बोली हिन्दीके रूपमे मान्य है और दूसरी उर्दूके रूपमे। काव्यकी परम्परागत मान्यतामे परिवर्तन और परिष्कार उपस्थित करनेवाले इन तत्त्वोकी उपेक्षा आज भी नही की जा सकती।

६ **जन-जीवनका चित्रण**—मध्ययुगीन काव्योके आधारपर तत्कालीन जन-जीवनका चित्रण स्वतन्त्र अध्ययनका विषय है। राज्याश्रयी साहित्य जन-जीवन-की अभिव्यक्तिसे दूर रहा है। उसमे राजाओ-महाराजाओ, अमीरो, सामन्तों, नवाबो आदिका विलासमय जीवन चित्रित है। सामान्य जन-समाजको ध्यानमे रखते हुए थोडेमे कहा जा सकता है कि इस युगमे हिन्दुओकी प्राचीन सास्कृतिक जीवन-व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी, यद्यपि अभी उसका लोप नहीं हुआ था। सयुक्त-परिवार एव सहयोग, धैर्य, सन्तोष, श्रद्धा, स्नेह, विनय, त्याग अदिपर आधृत कौटुम्बिक व्यवस्था ज्यो-त्यो चल रही थी। कौटुम्बिक जीवनमे मनाये जानेवाले सस्कारो—जातकर्म, नामकरण, कर्णवेध, अन्नप्राशन, चौल, विद्या-रम्भ, उपनयन, विवाह, अन्त्येष्टि आदि—का पालन किया जाता था।[१] किन्तु कुछ सीमित लोगो और आदर्श परिवारोमे ही। अन्यथा 'मानस'के आरम्भमे तुल्सीको यह न लिखना पडता कि—

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई।[२]

---

१. 'करनवेध उपवीत विआहा। सग-सग सब भये उछाहा।'

२. 'मानस', बालकाण्ड, पृ० १८५, चौपाई ४।

गुण और कर्मके आधारपर प्रतिष्ठित चतुर्वर्ण-व्यवस्था विशृङ्खलित हो गई थी। अनेक नवीन जातियोका उदय हो चुका था जो प्राचीन वर्ण-व्यवस्थाको चुनौती दे रही थी।[१] जायसीने राजपूतोमे ही ३६ कुलो का उल्लेख किया है।[२] ब्राह्मणोमे भी अनेक उपजातियाँ हो गई थी। कही-कही एक ही जातिके कुछ लोग हिन्दू रह गये थे कुछ मुसलमान बन गये थे और इस प्रकार विचित्र स्थिति पैदा हो गई थी[३]। हिन्दुओके धर्म कर्म और जटिल होते जा रहे थे। देवगिरिके अन्तिम यादव राजाके मन्त्री हेमाद्रिके 'चतुवर्ग चिन्तामनि' ग्रन्थमे पूरे वर्षमे २००० व्रतो-अनुष्ठानोका विधान है। इसी प्रकारके ग्रन्थ काशी और मिथिलाके पडितोने भी लिखे थे।[४] सकीर्णता बढनेके साथ व्यवस्था बिगडती ही गई और अधम वर्ण तेली, कुम्हार, स्वपच, किरात, कोल, कलवार भी वैभवहीन होनेपर सन्यासी बनने लगे।[५] विप्र लोग अपढ, लोभी, कामी और आचरणभ्रष्ट होने लगे।[६] शूद्र लोग जप-तप-व्रत करने लगे[७]। सारी व्यवस्था ही उलट-पलट गई। तुलसीको ही नही सूरको भी शूद्र और ब्राह्मणका एक साथ भोजन करना खला था। कृष्ण और कुब्जाके मिलनको लेकर उनकी गोपियाँ कहती है—

'भोजन साथ सूद्र बाम्हन के तैसों उनकौ साथ'

—दशम स्कन्ध, ३७७० पद।

---

१ 'भये बरन-सकर कलि भिन सेतु सब लोग'

—दोहा १००, उत्तर काण्ड।

२ 'भै अहान पदुमावति चली। छत्तीस कुरी भै गोहने भली।'

'पदमावत,' बसत खण्ड, १८५।१

३ भारतीय इतिहासका उन्मीलन, पृ० ४३८।

४ वही, पृ० ४३९।

५ जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा।
नारि मुई गृह सपति नासी। मूड मुडाइ होहिं सन्यासी।

—मानस, उत्तर काण्ड, ९९।३

६. विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ वृपली स्वामी।

—वही, ९९।४

७ सूद्र करहिं जप तप व्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना।

—वही, ९९।५

स्त्रियोकी हीनावस्था—सबसे दयनीय दशा स्त्रियोकी थी। वैराग्य मूलक-धर्माके उदयके साथ ही बेचारी स्त्रियोको 'सन्देहोका भँवर, अविनयोका भवन, दुःसाहसोका नगर, दोषोकी अक्षयनिधि, सैकडो कपटोवाली, स्वर्गद्वारका विघ्न, अविश्वासोकी जन्मभूमि, नरकपुरीका द्वार, मायाओकी पेटी, ऊपरसे अमृतमय और भीतरसे विषमय तथा प्राणियोको बाँधनेका पाश' कहा गया[1]। पञ्चतन्त्रमे उनके दोषोकी चर्चा करते हुए 'अनृत, साहस, माया, मूर्खता, लोभ, अशौच और निर्दयताको उनके लिए स्वभावज कहा गया[2]। इसीका अनुवाद-सा करते हुए तुलसीदासने कहा—

"नारि स्वभाव सत्य कवि कहई। अवगुण आठ सदा उर रहई।
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया[3] ॥"

मध्यकालीन हिन्दी-भक्त कवियोने उपर्युक्त विचार परम्परासे पाया था। उनकी वकालत करनेकी आवश्यकता नही। यह सत्य है कि मध्ययुगमे विलासी सामन्तोके लिए सुराही और प्यालाके साथ सुबाला भी विलासका मसाला बन गई थी। शक्ति और शौर्यपूर्ण सामन्तोके लिए भी वह 'खड्गकी चेरी'के अतिरिक्त और कुछ नही थी[4]। पडितोके लिए, सस्कारहीन होनेके कारण, वह शूद्रवत् थी और भक्तोके लिए साक्षात् मायामूर्ति थी। यह होनेपर भी भक्त कवियोको उसका 'सती' रूप अब भी आदर्श प्रतीत होता था और दरबारी कवि भी उसके 'रानी' रूपकी प्रशसा ही करते थे। केशवने सलाह दी थी कि रानीका वर्णन करना हो तो आँखमूँदकर उसे सुखदा, सुन्दरी, पतिव्रता, शुचि-रुचि सम्पन्ना, लज्जाशीला, बुद्धिमती और मानिनी लिख दीजिये[5]। कृष्ण भक्त कवियोमे, राधाकी प्रतिष्ठा

१ भर्तृहरि, शृगारशतक, श्लोक ७६

२ अनृत साहस माया मूर्खत्व अति लोभता। अशौच निर्दयत्वञ्च स्त्रीणा दोषा स्वभावजा
—मित्रदेव, श्लोक २०७।

३ मानस, लका काण्ड, १६।१, २।

४ 'तिरिया पुहुमि खरगकी चेरी। जीतै खरग होइ तेहि केरी।
पद्मावत ६१८।४

५ सुन्दरि, सुखद, पतिव्रता, शुचि रुचि शील समान।
यदि विधि रानी बरणिये, सलज सुबुद्धि निधान।
—कविप्रिया, आठवाँ प्रभाव, छन्द ६।

होनेके कारण, स्त्रियोके प्रति थोडी सम्मानकी भावना जाग उठी थी। इसीलिए सूरकी गोपियाँ, कृष्णकी निष्ठुरतापर उपालम्भ दे सकीं[1]। अन्यथा मध्ययुगकी नारीको बोलनेका अधिकार भी नही था। तुलसीने कुछ आदर्श नारी-पात्रोकी सृष्टि अवश्य की किन्तु सामान्य नारी वर्गके प्रति उनकी भावना भी सहानुभूति-पूर्ण नही थी। उत्तर मध्यकालमे औरगजेबकी कट्टर धार्मिक नीतिकी प्रतिक्रियाके रूपमे जब महाराष्ट्र और बुन्देलखडमे जातीय भावनाका जोश उबल पडा तो पुरुषोके साथ युद्ध-क्षेत्रमे उनकी वीरागनाओंके रण-कौशलकी झाँकी भी देखनेको मिली[2]। आचलिक लोक-साहित्यमे इन नारियोकी गाथा अवश्य किसी-न-किसी रूपमे सुरक्षित होगी। इससे यह तो प्रकट है कि मध्ययुगमे भी भारतीय नारीके तेजकी चिनगारी नही बुझी थी किन्तु वैराग्य मूलक प्रवृत्तिके कारण या तो उनको हीन समझकर उपेक्षाका पात्र माना गया या अतिशय राग वृत्तिके कारण विलासकी वस्तुके रूपमे उनका सग्रह करके राजमहलोकी शोभा बढाई गई।

अंध विश्वास

मध्ययुगकी सामान्य जनताकी मनोभूमिमे अनेक अधगह्वर थे। इसीलिए वह टोना, टोटका, शकुन, अपशकुन, झाड-फूंक, भूत-प्रेत, तन्त्र-मन्त्र, और जादू-जन्तरके चक्करमे पडी रहती थी। इन्हे लोक-विश्वास कहे या अन्धविश्वास, इनका प्रचलन खूब था। जायसी, सूर, तुलसी आदि सभी कवियोकी कृतियोंमे इनका जगह-जगह उल्लेख मिलता है। इससे प्रकट है कि अनेक धार्मिक आन्दोलनोके बावजूद साधारण जनताकी मन.स्थितिमे कोई विशेष अन्तर नही आया था।

राजनैतिक चेतनाका अभाव

मध्ययुगमे जनसामान्यमे राजनैतिक चेतनाका अभाव था। जनताको

---

१ एक स्थलपर तो वे यहा तक कह देती है कि 'पुरुष कौ री सबै सोहै कूबरी किहि काज',
—सूरसागर, सभा-सस्करण, दशम स्कन्ध, ३७६८ पद।

२ जुझार सिंहके साथ 'पार्वती', चम्पतरायके साथ 'काली कुमारी' और छत्रसालके साथ 'कमलावती'के रण-क्षेत्रमें जाने और युद्ध करनेका उल्लेख मिलता है।
—भारतीय इतिहासका उन्मीलन, पृ० ६३९।

शासनमे अधिकार तो किसी प्रकारका नही था किन्तु उसके कर्त्तव्योकी सीमा नहीं थी। राज्य द्वारा निर्धारित कर देना तो अनिवार्य ही था, कर उगाहनेवाले कर्मचारियोको भी हिस्सा देना पडता था। यही कारण था कि राज्यसत्तामे होनेवाले परिवर्तनोमे जनताकी दिलचस्पी नहीके बराबर थी।[१] 'पद्मावतमे' रत्नसेनके बन्दी होनेपर उसे मुक्त करनेका प्रयत्न उसके नजदीकी सामन्त गोरा और बादल करते है। जनता मौन है। 'मानस'मे रामके राज्याभिषेककी चर्चा करते हुए भरतका पक्ष समर्थन करनेवाली मथरा यह कहकर कि 'कोइ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छोडि अब होब कि रानी।' जनसामान्यकी तत्कालीन मनोवृत्तिका ही प्रकाशन करती है। सूरके कृष्णके राजा हो जानेपर ब्रजमे प्रसन्नताकी लहर नहीं दौड पडती। क्योकि राजा होनेका तात्पर्य था जनतासे दूर हो जाना, ब्रजको छोडकर कचनकी नगरीमे निवास करना। जनताकी उदासीनताका अनुमान मुगल कालकी कुछ अविस्मरणीय घटनाओके आधारपर भी लगाया जा सकता है। शाहजहॉका ज्येष्ठ पुत्र दारा पर्याप्त लोकप्रिय था। जब वह औरगजेबकी आज्ञासे दयनीय दशामे दिल्लीकी गलियोमे घुमाया जा रहा था तो उसकी दुर्दशा देखनेके लिए अपार जनसमूह एकत्र होकर रो रहा था। फ्रेंच यात्री बर्नियर (जो स्वय इस दृश्यको देख रहा था) को आश्चर्य हुआ कि उसकी रक्षाके लिए एक भी तलवार म्यानसे बाहर नही निकली। कुछ फकीरो और गरीबोने धोखा देकर पकडवानेवाले पठानपर थोडसे ककड फेककर अपना क्रोध प्रकट कर लिया।[२] कोई अन्य राजकुमार पकडा गया होता तो कदाचित् यह

---

१ The masses of the people had no place in the Government, no share in political power They had very few rights, if any Their duty principally consisted in paying heavy taxes to the State, which were usually realized through the headman of a village and a staff of revenue officers, all of whom oppressed them, and managed to keep a share of the sum realized for themselves, thus becoming very wealthy

—*Life and Conditions of the People of Hindustan,* Dr K M Asharaf, pp 54-55, 1959

२ I observed some Fakiras and several poor people throw

भी न होता। स्टेनले लेनपूलने मध्यकालीन भारतीय जनताकी राजनीतिक चेतनाके प्रति बहुत सही निर्णय दिया है। वह कहता है—'जनताने अपनी चिरकालीन उदासीनताके साथ हर राजाकी आज्ञाका पालन किया, चाहे वह आर्य, हूण, यूनानी, फारसी, राजपूत, तुर्क, अफगान, मगोल या अग्रेज जो भी था।'[१] इस उदासीनताके कारण थे। एक तो भारतीय जनता जीवनके चढाव उतारको पूर्वकृत कार्योंका अनिवार्य परिणाम मानती थी, दूसरे राजसत्ताके परिवर्तनसे उसपर कोई विशेष प्रभाव नही पडता था। उत्तर मध्यकालमे औरगजेबके राजत्वकालमे थोडा-सा जन-जागरण हुआ था। सतनामियो और सिक्खोका विद्रोह जनताका ही विद्रोह था। शिवाजी और छत्रसालको जनताके एक बहुत बडे वर्गका समर्थन प्राप्त था। किन्तु सब मिलाकर यह जागरण भी आचलिक ही था।

राष्ट्रीय चेतनाका अभाव

मध्यकालीन जनतामे राष्ट्रीयताकी भावनाके विकासका भी कोई सकेत नही मिलता। लोग स्वामिभक्त होते थे, जन्मभूमिको प्रेम भी करते थे किन्तु समूचे भारत राष्ट्रको जन्मभूमिके रूपमे न देखकर उस स्थान या राज्यको ही जन्मभूमिका गौरव देते थे जहॉ वे उत्पन्न होते थे। पद्मावतमे बादल अपनी नवागता पत्नीसे यह कहकर कि—'हे गजगामिनी, यदि तू गौने आई है, तो मेरा भी गमन वहॉ है जहॉ मेरा स्वामी है'[२]—अपनी स्वामिभक्ति प्रकट करता है। तुलसी और सूर दोनोके राम अपनी जन्मभूमि अयोध्याके प्रति अपना विशेष अनुराग व्यक्त करते है।[३] सूरके कृष्ण भी कहते है—

---

stones at the infamous patan, but not a single movement was made, no one offered to draw his sword, with a view of delivering the beloved and compassionate prince

Travels in the Mogul Empire,—pp 99-100.

१ मध्यकालीन भारत, हिन्दी सस्करण, पृ० ४३।

२ "जौ तू गवन आइ गजगामी। गवन मोर जहवॉ मोर स्वामी।"

३ मानस, उत्तर काण्ड, पृष्ठ ८७३, सूरसागर, नवमस्कन्ध, पद १६५।

'रुक्मिनि चलौ जन्मभूमि जाहिं,
जो क्रीडा श्री वृंदावन मे, तिहुँ लोक में नाहिं ।'[१]

मेवाडके राजपूत जननी जन्मभूमि और अपने स्वामी महाराणाके लिए ही युद्ध करते रहे । यही स्थिति प्रत्येक राजपूत राज्यकी थी । राजपूतानेके अन्तर्गत प्रत्येक राजपूत अपने स्वामीके राज्यकी सीमातक ही अपनी जन्मभूमिकी कल्पना करता था । सिक्ख बराबर लडते रहे किन्तु केवल पजाबके लिए । १८५७ की क्रान्ति भी व्यापक राष्ट्रीय दृष्टिके अभावमे ही असफल हुई । शिवाजीके नेतृत्वमे जिस राष्ट्रीयताका उदय हुआ था वह अधिकसे अधिक हिन्दू राष्ट्रीयता थी । सास्कृतिक एकताके बावजूद मध्ययुगके भारतीय जीवनमे राष्ट्रीय चेतनाका अभाव बराबर खटकता रहा है ।

आर्थिक विषमता

मध्ययुगीन जन-जीवनकी आर्थिक स्थितिका चित्र सबसे अधिक करुण है । तुर्कोंकी विजयके साथ राजनैतिक जीवनमे जो परिवर्तन हुए उनका अनिवार्य प्रभाव समाजके आर्थिक ढॉचेपर पडना ही था । तुर्क विजेता विजयके बाद इलाके आपसमे बॉट लेते थे । वे किसानोको खेती-बारी तो करने देते थे, किन्तु उनका शासन स्वय करते थे । जो काम पहले शिल्पियोकी श्रेणियॉ और ग्राम पंचायते करती थीं, उसका बहुत-सा अग इन जागीरदारोने अपने हाथमे ले लिया । यह जागीरदारीकी प्रथा सम्भवत. कुछ पहलेसे प्रारम्भ हो गई थी किन्तु मुसल्मानी विजयके बाद इसका विकास तेजीसे हुआ ।[२] धीरे-धीरे कारीगर और किसान इनके चगुल्मे आते गए । अलाउद्दीन खिलजीने तो हिन्दुओको (प्रजा-वर्गको ही समझिए) विनम्र बनानेका एक ही नुस्खा ईजाद किया था कि उन्हे अधिकसे अधिक गरीब बना दिया जाय ।[३] बीचमे शेरशाह और अकबरके समयमे कुछ राहत मिली थी किन्तु जनताकी स्थितिमे अधिक सुधार नही हुआ । शेरशाहके समकालीन जायसीने वियोगिनी नागमतीकी दयनीय स्थिति अकित

१ दशम स्कन्ध, पद, ४८९१

२ भारतीय साहित्यका उन्मीलन, पृ० ४३७ ।

३ मध्यकालीन भारत, हिन्दी सस्करण, लेनपूल, पृ० ७३ ।

करते समय उसे जिस सामान्य नारीकी भूमिकामे उपस्थित किया है वह वस्तुत तत्कालीन ग्रामीण नारीका चित्र है, जिसके घरमे न ठीकसे 'छप्पर' है, न 'थूनी' है, न 'थभ', न 'कोरो', न 'मूज'। —पद्मावत ३५६। दोहा

तुलसीदासजी ने अपने समय की स्थिति को ईमानदारी से उपस्थित किया है। उन्होंने देखा कि पेट की आग बडवाग्नि से भी भीषण है। इसके लिए लोग अनेक प्रकारके ऊँच नीच कर्म करते है, यहाँ तक कि बेटा और बेटी भी बेचते है। सारी दुनिया 'दारिद-दसानन' के द्वारा आक्रान्त है। न किसान बेचारेका ठीकसे खेतीकी सुविधा है न वणिकको व्यापारकी और न चाकरको चाकरीकी। भिखारीको भीख भी नही मिलती। लोग जीविका विहीन होकर दु खीचित्तसे एक दूसरेसे कहते है 'कहाँ जायँ? क्या करे?'[१] समाजकी आर्थिक हीनताका इससे अधिक प्रामाणिक साक्ष्य इतिहास ग्रन्थोमे ढूँढना व्यर्थ है। अकबरके सम-सामयिक कवि नरोत्तमदासने सुदामाकी पत्नी द्वारा जा गृहस्थीका चित्र अकित कराया है—'या घर ते कबहूँ न गयो पिय, टूटो तवा अरु फूटी कठौती'—वह कोरी कल्पना नही है। घर-घरकी यही स्थिति थी। बर्नियरने शाहजहाँ और औरगजेबके जमानेके भारतको अच्छी तरह देखा था। उसने तत्कालीन कृषकोका जीवन-चित्र अकित करते हुए लिखा है—'ये बेचारे गरीब लोग, जब अपने लोलुप प्रभुओकी माँगकी पूर्ति नही कर पाते तो न केवल उनकी जीविका छीन ली जाती है वरन् उनके बच्चोको भी छीनकर गुलाम बना लिया जाता है। इस घृणित अत्याचारसे टूटकर प्राय. बहुतसे किसान गाँव छोडकर नगरो और कैम्पोमे बोझा ढोने, पानी पहुँचाने या सईसी करनेका पेशा अख्तियार कर लेते है।'[२] वस्तुत. मध्ययुगमे शाही खानदानके लोग, उनके समर्थक जागीरदार और सामन्त, धार्मिक नेता (उल्मा और काजी) दरबारी कवि और गायक

१ कवितावली, छन्द सख्या ९६, ९७।

२ "These poor people, when incapable of discharging the demands of their rapacious lords, are not only often deprived of the means of subsistence, but are bereft of their children, who are carried away as slaves Thus it happens that many of the peasantry, driven to despair by so execrable

सुन्दरी नर्तकियाँ तथा ऐसे और लोग जो किसी रूपमें शाहगाहके जीवनको मधुमय बनानेमें योग दे सकते थे, सुखी थे। उनके लिए पैसेका प्रश्न तुच्छ और नगण्य था। शेष जनता अर्थाभावसे पीडित थी। वह श्रम करती थी किन्तु उसका फल भोग करनेवाले मधुपुरियोंमे निवास करते थे। वहाँ उसकी पहुँच नही थी वह अपने पूर्वजन्मके कल्पित पापोको कोसकर चुप रह जाती थी।

मध्ययुगीन काव्यमे व्यक्तित्वका अभाव

मध्ययुगीन हिन्दी-काव्यकी प्रेरणा भूमि, उपलब्धि, महत्ता, मूल्य और उसके माध्यमसे व्यक्त होनेवाली जन-जीवनकी सक्षिप्त गाथा समाप्त करनेके पहले उसके विषयमे हम एक बात और कहना चाहेंगे। पूरे मध्ययुगीन साहित्यमे, आजका पाठक, व्यक्तित्वका स्पन्दन बहुत ही कम पाता है। कबीरकी अटपटी वाणी, तुलसीकी चीख (कवितावलीमे) देवका अनुताप और घनानन्दकी विवशता यदि मुखर न हुई होती तो शेष सब कुछ आदर्श अनुकरण और परम्पराके कटघरेमे आसानीसे बन्द हो जाता। जायसीके नैनोका जल भी पद्मावती-रत्नसेनकी गाढी प्रीतिमे घुल-मिलकर रह गया है। 'वस्तुनिष्ठ' काव्यो (प्रबन्ध काव्यो) की बात तो जाने दीजिए जिसे हम मध्ययुगकी 'व्यक्तिनिष्ठ' (subjective) कविता कहते है उसमे भी एक बॅधी-बॅधायी प्रवृत्तिको ही व्यक्त किया गया है। सूर और तुलसीके विनय-गीत भी व्यक्तित्वकी व्यञ्जना नही करते एक प्रवृत्ति (tendency) की अभिव्यक्ति करते है। मीराके करुण गीतोमे उनके निजी जीवनकी विवशताका सकेत ही ग्रहण किया जा सकता है वह सीधे ढगसे व्यक्त नही हुई है। रीति-काल तो मेरे एक मित्रके शब्दोमे 'व्यक्तिकी पराधीनताका युग है'। तो, भक्ति और रीति-युग या पूर्व-मध्य और उत्तर-मध्यकाल वस्तुत. भारतीय जनताके सघर्ष और पराजयके युग है। सघर्ष कालमे हम कभी-कभी चीख-पुकार सके है किन्तु पराजित होनेपर तो पराधीन होना ही पडता है।

---

a tyranny, abandon the country, and seek a more tolerable mode of existence either in the towns, or camps, as bearers of burdens, carriers of waters, or servants to horsemen"

—*Travels in the Mogul Empire*—p. 205

अन्तमे हम भूमिकाके आरम्भमे कही हुई अपनी बात एक बार फिर दुह-
राना चाहेंगे कि मध्यकालीन हिन्दी काव्यको 'भक्ति' और 'रीति'के आधारपर
नही उसकी प्रेरणा-भूमिओके आधारपर समझना अधिक उचित होगा, नही तो
भक्तिमे 'रीति' मिल जायगी और रीतिमे 'भक्ति' और कुछ फुटकर कवि फिर
भी छूट जायेंगे।

कबीर

मध्ययुगीन हिन्दी-साहित्यका प्रथम चरण भीषण सांस्कृतिक संघर्ष एव जीवन-मूल्योंके सक्रमणका युग है। उस युगमे समस्त भारतीय और अभारतीय साधना-धाराओको आत्मसात् कर जीवनकी सहज अनुभूतियोके आधारपर कबीरने जिस मानव-सत्यकी प्रतिष्ठाकी वह आज भी अनुकरणीय है। कबीरसे पूर्व इस महान् देशके विशाल धरातलपर जितनी धार्मिक साधनाये प्रचलित थी वे सभी जीवनकी गतिशीलता एव प्राणवत्ताके अभावमे रूढि-जर्जर एव प्रेरणा-हीन हो चुकी थी। उनका जीवन्त, स्फूर्तिदायक एव पोषक तत्त्व खो चुका था। परम्परागत मान्यताओके आधारपर प्रत्यक्ष समस्याये नही सुलझाई जा सकती। यही कारण है कि युग-विशेषका महान् व्यक्तित्व जो अपने जीवनको प्रयोग-शालाके रूपमे ग्रहण करता है, कभी भी परम्पराओकी सीमामे नही बँध सकता। कबीरने सत्यके अन्वेषणके लिए आजीवन प्रयोग किया था। उन्हे अपने पर अखण्ड विश्वास था। उनकी प्रतिभा विलक्षण थी। उनके जैसा आकर्षक व्यक्तित्व पूरे मध्ययुगमे दूसरा नही। कबीरको समझनेके लिए उनके पूर्व-युगकी समस्त साधनाओके प्रकाशमे उनकी मान्यताओको देखना होगा। कहा गया है कि 'कबीरदासकी वाणी वह लता है जो योगके क्षेत्रमे भक्तिका बीज पडनेसे अकुरित हुई थी'।[1] यह योगका क्षेत्र बौद्ध-सिद्धोकी ऊँची-नीची साधना-भूमिको पाटकर बनाया गया था जो भावके अभावमे सूखकर कडा पड गया था। दक्षिणसे वैष्णव भक्तिका जो सरस प्रवाह उमडकर उत्तर-भारतमे प्रवाहित हुआ उससे यह भूमि न केवल रस-रिक्त हो गई वरन् इसमे रामानन्दके रूपमे एक अँखुआ भी फूट पडा।[2] इसलामके साथ आए हुए सूफियोके प्रेम-जलसे सिञ्चित होकर यह अँखुआ कबीररूपी लताके रूपमे पल्लवित हुआ।[3]

---

१. कबीर, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १५३, १९५३।

२ "रामानन्दमें ही आकर नाथ मत एव वैष्णव सम्प्रदायका स्पष्ट सम्मिलन हुआ था"—'हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय' भूमिका भाग, पृष्ठ [ञ]।

३ कबीरकी भक्तिमे सूफी तत्त्व, श्री जी० यच० वेस्टकॉट, डॉ० बडथ्वाल।

इस प्रकार कबीरकी साधनाका सीधा सम्बन्ध बौद्ध-सिद्धो, नाथ-पथी योगियो, वैष्णव भक्तो तथा इसलाम और उसके साथ आए हुए सूफी प्रेमियोसे है। किन्तु उन्होने किसोको ज्योका त्यो स्वीकार नही किया है। आगेके पृष्ठोमे हम उपर्युक्त साधना-धाराओके सदर्भमे कबीरकी मान्यताओको प्रस्तुत करगे।

बौद्ध सिद्ध : नाथपंथी योगी और कबीर

बौद्ध सिद्धो और नाथपथी योगियोसे कबीरकी समता मुख्यत. निम्नलिखित पॉच आधारोपर दिखाई जा सकती है—(क) उच्चवर्गीय सस्कृतिके प्रति विद्रोहकी भावना, (ख) गुरुका महत्व, (ग) पिण्ड-ब्रह्माण्डकी एकता (सत्यका अन्तस्मे सन्निवेश), (घ) साध्यका स्वरूप, (ङ) भाषा और शैली।

(क) उच्चवर्गीय संस्कृतिके प्रति विद्रोहकी भावना—उच्चवर्गीय सस्कृतिके प्रति विद्रोहकी भावना उपनिषदोके युग या उमसे और पहलेसे ही लक्ष्य की जा सकती है। लोकायत, चार्वाक, जैन, बौद्ध-सिद्ध और नाथपथी योगियोसे होती हुई यह परम्परा कबीर-साहित्यमे चली आयी है। यह विद्रोह पुस्तक-ज्ञान, वर्णव्यवस्था, तीर्थव्रत, मूर्तिपूजा, तथा अन्य धार्मिक विधि-विधान सभीके प्रति व्यक्त हुआ है। बौद्ध-सिद्धोमे प्रसिद्ध सरहपा (७६० ई०) और कण्हपा (८४० ई०) ने 'पाखड-खडन' और 'पथ-पडित निन्दा' के रूपमे उच्चवर्गीय सास्कृतिक मान्यताओकी खिल्ली उडाई है।[१] गोरक्षपा (गोरखनाथ) (८४५ ई०)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, बाबू श्यामसुन्दरदास, तथा अन्य अनेक विद्वानोने स्वीकार किया है और 'पण्डित चन्द्रबली पाण्डेयने तो कबीर, दादू, यारी, दरिया आदि सन्तोंको 'आजाद' सूफी माना है'।—तसव्वुफ अथवा सूफीमत, —पृष्ठ १८८

१ बम्हणहि म जाणन्त हि भेउ। ऍवइ पडिअउ ए चउबेउ॥
मट्टि पाणि कुस लई पढन्त। घरही बइसी अग्गि हुणन्त॥
—'सरहपा'—हिन्दी काव्य-धारा, पृष्ठ ४।

× × ×

आगम-वेअ-पुराणे (ही), पण्डिअ माण वहन्ति।
पक्क सिरीफले अलिअ जिम, वाहेरीअ भमन्ति॥
—'कण्हपा'—हिन्दी काव्य-धारा, पृष्ठ १४६।

ने भी 'जत-मत वेदत' छोडने तथा 'पढिबा, गुणिबा, पूजा, पाठ, जाप' आदिसे मुख मोडनेका उपदेश दिया है।[१]

जैन कवि रामसिंह (१००० ई०) और योगीन्द्र (१००० ई०) ने भी पुस्तक-ज्ञान और देवी-देवता, तीर्थ-वेद काव्य आदि सभीकी निन्दा की है।[२] कबीरने इसी परम्पराका अनुसरण करते हुए कहा था—

"बेद पुरान पढत अस पाँडे, खर चदन जैसै भारा।
राम नाम तत समझत नाहीं, अति पडै मुखि छारा॥"[३]

× × ×

"कबीर दुनियाँ देहुरै सीस नवाँवण जाइ।
हिरदा भीतर हरि बसै, तू ताही सो ल्यो लाई॥"[४]

ब्राह्मणो की सामाजिक उच्चताके प्रति सहजयानी सिद्ध सरहपादने जिन आक्रोश पूर्ण शब्दोमे विरोध प्रदर्शन किया है, ठीक उन्ही शब्दोमे कबीरने भी उनकी श्रेष्ठताको चुनौती दी है। प० हजारीप्रसाद द्विवेदीने 'जनरल ऑव दी डिपार्टमेण्ट ऑव लेटर (वॉल्यूम २८) कलकत्ता विश्वविद्यालय'मे प्रकाशित

---

१ 'छाडौ तत मत वेदत। जत्र गुटिका धातपषड'

× × ×

छोडौ बेद-वणज-व्यौपार। पढिबा गुणिबा लोकाचार।
पूजा पाठ जपौ जिनि जाप। जोग माहि विटनौ आप।

—गोरखनाथ हिन्दी काव्य धारा, पृष्ठ १६३।

२ पढिय पढिय पढिया, कणु छटिवि तुस कटिया।
अत्थे गये तुट्ठोसि, परमत्थु न जाणहि मूढोसि।

—रामसिंह, हिन्दी काव्य-धारा, पृष्ठ २५६।

× × ×

देउलु देउवि सत्थु गुरु, तित्थुवि वेउ वि कव्वु।
वच्छु जु दीसै कुसुमियउ, इधण होसइ सव्वु।

—जोगि दु (जो इन्दु) हिन्दी काव्य-धारा, पृष्ठ २४८।

३ कबीर ग्रन्थावली, पदावली, ३९।

४. कबीर ग्रन्थावली, साखी, ४३६।

सरहपादके एक दोहेको गद्यमे इस प्रकार उद्धृत किया है—"ब्राह्मण ब्रह्मके मुखसे पैदा हुए थे, जब हुए थे तब हुए थे। इस समय तो वे भी वैसे ही पैदा होते है जैसे दूसरे लोग। फिर ब्राह्मणत्व कहाँ रहा ?"[१] कबीर भी ठीक यही बात कहते है—

"एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाँम एक गूदा।
एक जोति थै सब उतपना कौन बाम्हन कौन सूदा॥"[२]

इस प्रकारकी अनेक उक्तियाँ उद्धृतकी जा सकती है जिनमे बौद्ध-सिद्धो नाथ-पथी योगियो और कबीरमे समता ही नही एकता भी है किन्तु जैसा कि डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने लक्ष्य किया है—"कबीरके पूर्ववर्ती सिद्ध और योगी लोगोंकी आक्रमणात्मक उक्तियोमे एक प्रकारकी हीनभावनाकी ग्रन्थि या इन-फीरियारिटी कम्प्लेक्स पाया जाता है। × × उनमे तर्क है पर लापरवाही नही है, आक्रोश है पर मस्ती नही है, तीव्रता है पर मृदुता नही है। कबीरदासके आक्रमणोमे भी एक रस है।"[३] यह 'लापरवाही', 'मस्ती', 'मृदुता' और 'रस' उस अखण्ड आत्मविश्वासकी देन है जो भक्ति और प्रेमकी प्रगाढ अनुभूतिसे उत्पन्न हुआ था।

(ख) गुरुका महत्त्व—गुरुको महत्त्व देनेकी बात केवल सिद्धो जैनियो और नाथों तक ही सीमित नही है, यह भारतीय साधनाके सभी रूपोमे एक महत्त्वपूर्ण तत्त्वके रूपमें मान्य है। तन्त्र-साधनासे प्रभावित होनेके कारण सिद्धो और नाथो-ने गुह्यातिगुह्य शारीरिक क्रियाओका समावेश अपनी साधनामें कर लिया था। साधनाकी इस जटिलताने उनके लिए गुरुका महत्त्व बढा दिया था।[४] सिद्ध सरहपाद, और जैन साधु रामसिह दोनोने गुरुके उपदेशके प्रति पूर्ण आस्था

---

१ कबीर, हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १३३।

२ कबीर ग्रन्थावली, पदावली, ५७।

३ कबीर, पृष्ठ १६५।

४ "बौद्ध तन्त्र पद्धतिके अनुसार गुरु इस भूतलपर परमेश्वरका प्रतिनिधि माना जाता है। तिब्बतीय लामा धर्म जो बौद्ध धर्मका ही एक परिवर्तित रूप है 'गुरु धर्म' है और 'लामा' शब्दका अर्थ भी गुरु ही होता है। गुरुके लिए यही महत्त्व हम गोरखनाथियोमे

रखनेकी बात कही है।[१] योगी गोरखनाथने कहा है कि शरीर-कुजके भीतर स्थित बाटिकामे सद्गुरु द्वारा तत्त्वकी बेल रोपी गई है।[२] गुरुको महत्त्व प्रदान करने-वाली कबीरकी उक्तियॉ उपर्युक्त कथनोके मेलमे है। उन्होने मुक्त हृदयसे गुरुका महत्त्व प्रतिपादित किया है! कभी वे कहते है कि 'गुरु कुम्हार और शिष्य घडा है। गुरु, शिष्य रूपी घटको ठोक पीटकर सुधार देता है।' कभी कहते है कि 'अध्यात्मका बीज जो पहलेसे धरतीमे मौजूद है तभी पुष्पित और फलित हो सकेगा जब गुरु बादलकी भॉति उसपर अपने उपदेशोकी वृष्टि कर देगा।' कभी वे 'गुरुको गोविन्दको लक्षित करानेवाला मानते है' और कभी सशयको नष्ट करनेवाला।' एक स्थानपर तो वे यहॉतक कह देते है कि 'हरि'के रूठनेपर तो 'गुरु'की शरणमे स्थान मिल जायगा किन्तु गुरुके रूठनेपर तो कही ठौर नही है।[३] किन्तु बौद्ध-सिद्धो और नाथ-योगियो द्वारा प्रतिपादित गुरु-महत्त्व और कबीर द्वारा स्वीकृत गुरु-महिमामे एक मौलिक अन्तर है। सिद्धो और योगियोमे

भी पाते है और वहासे रामानन्दके द्वारा गोरखनाथियोके प्रभावमे कुछ और अधिक आ जानेके कारण इसका प्रवेश निर्गुण मतमें भी हो जाता है।"

—हिन्दी काव्यमे निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ ३०७।

१ चित्ताचित्ति वि परिहरहु तिम अच्छहु जिम बालु
गुरु बअणे दिढ भत्ति करु, होइ नइ सहज उलालु।

—सरहपा, हिन्दी काव्यधारा, पृष्ठ १०।

× ×

अह गुरु उवएसे चित्ति ठाइ। त तेम धरतिहि कहिं मि ठाइ।

—रामसिंह, हिन्दी काव्यधारा, पृष्ठ २५८।

२. 'काया कुजर तेरी बाडी अवधू, सतगुरु बेलि रुपाणी।'

—गोरखबानी, शबदी, ६९।

३. कबीर ते नर अध है, गुरुको कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २।

मिलाइये—गुरु पिता गुरुर्माता गुरुर्देवो गुरुर्गति
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन॥

—मत्रयोग सहिता, पृष्ठ १७।

'गुरु' एक भौतिक आवश्यकता भी है[1] क्योंकि उनकी साधना शारीरिक भी थी जब कि कबीरकी दृष्टिमे गुरु एक आध्यात्मिक आवश्यकता मात्र है। कबीरकी जिस सहज-साधनामे 'न तो ऑख मूॅदनेकी आवश्यकता थी न कान रूॅधनेकी न कायाको कष्ट देनेकी' उसमे गुरु केवल मनको ईश्वरोन्मुख करनेके लिए एक प्रेरक तत्त्वमात्र था।

(ग) पिण्ड-ब्रह्माण्डकी एकता—[अन्तस्‌मे सत्यका सन्निवेश] योग-साधनाके उद्‌भवके साथ ही पिण्ड (मानव शरीर) और ब्रह्माण्ड (समष्टि पिण्ड) की एकताका रहस्य साधकोने लक्ष्य किया होगा। नाथ-योगियोकी मान्यताके अनुसार इसी मानव शरीरमे (व्यष्टि पिण्डमे) समष्टि पिण्ड (ब्रह्माण्ड) की अनुभूति की जा सकती है। जिस प्रकार व्यक्तिकी आत्मा विश्वात्मासे अभिन्न है उसी प्रकार व्यक्ति पिण्ड, समष्टि पिण्डसे अभिन्न है। जब आत्मा और विश्वात्मा तथा पिण्ड और ब्रह्माण्डका भेद मिट जाता है और एक ही शक्ति-युक्त शिव भीतर और बाहर सर्वत्र अनुभूत होता है तभी 'समरस करण'की स्थिति आती है। इसी मानसिक स्थितिकी उपलब्धि योगीके जीवनका आदर्श है।[2] कबीरने 'ब्रह्मडे सो प्यडे जानि, मानसरोवर करि असिनान' कहकर इसी सत्यकी ओर सकेत किया है।[3] पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता हठयोगकी साधनाका दार्शनिक आधार है। कबीर आत्मा और विश्वात्माकी एकतापर अवश्य विश्वास करते थे क्योंकि उन्होने बार-बार 'आतमराम'को पहचाननेकी बात कही है।[4] जब व्यष्टि पिण्डमे स्थित आत्मा

---

१ Moreover many of the tantric practices are secret practices involving complex procees of esoteric yoga Because of this stringent nature of the tantric practice the help of *Guru* is enjoyned to be sought at every step.

—*Obscure Religious Cults*, p 101

२ 'नाथ योग : एक परिचय', अक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय, पृष्ठ, ५७, ५८ (हिन्दी सस्करण)।

३ कबीर ग्रन्थावली, पदावली ३२८।

४. कबीर औगुण ना गहै, गुण ही कौ ले बीनि।
घट-घट महु के मधुप ज्यूॅ पर-आत्म ले चीन्हि॥

—कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ५५।

और समष्टि पिण्ड (ब्रह्माण्ड) मे स्थित विश्वात्मा एक है तो पिण्ड और ब्रह्माण्डकी स्थिति भी अभेदात्मक मानी जा सकती है। कबीरको पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकता इसी रूपमे मान्य थी क्योंकि वे हठयोगकी शब्दावलीमे बात करते हुए भी कायाको कष्ट देने—'हठेन बलात्कारेण योगसिद्धि'के पक्षमे नही थे। वे तो 'निरवाण पद प्राप्ति' का एक ही अर्थ समझते थे कि 'आपा पर सब एक समान' समझा जाय।[1] इसीलिए वे शरीरको साधनेकी अपेक्षा मनको साधना आवश्यक समझते थे।[2] पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकताका अर्थ कबीरके लिए यह नही था कि 'पदको पाताल, सिरको आकाश, मध्य शरीरको भूमध्य सागर, मॉसको मिट्टी, रक्तको जल, नसोको जलधारा, हृदयको गहरी नदी, हड्डीको पहाड, बाल-को बन-उपबन', कहकर ब्रह्माण्डकी समस्त वस्तुओको शरीरके भीतर गिनाया जाय। यह प्रवृत्ति तान्त्रिकोमे थी वहाँसे नाथ पथी योगियोमे आई। कुछ परवर्ती सतोने भी योगका निरूपण करते समय ब्रह्माण्डकी सभी वस्तुओको मानव शरीरमे निदर्शित किया है।[3] किन्तु कबीरके सम्बन्धमे ऐसा नही कहा जा सकता। इतना लम्बा सिलसिला उन्हे नही स्वीकार हो सकता था। जिन तत्त्वोसे ब्रह्माण्ड-की रचना हुई है उन्हीसे पिण्डकी भी। इसलिए ब्रह्माण्डका रहस्य, पिण्डके रहस्य-से भिन्न नही है, विश्वात्मा, आत्मासे भिन्न नही है। सत्य बाहर नही भीतर है। विश्वात्माको ससारके विस्तारमे नही हृदयकी शुद्धिमे ढूँढना चाहिए। इसीलिए वे कहते हैं—

× × ×

'हरि हिरदै रे अनत कत चाहौ', ग्रन्थावली, पद १७०।

× × ×

'का नागेका बाँधे चाम, जौ नही चीन्हसि आतम राम—ग्रन्थावली, पद १३२।
'ते हरि के आवैहि किहि कामा जे तहिं चीन्है आतमरामा।'—ग्र० पद, १३७।

१. ग्रन्थावली, पद, १६७।

२. केसों कहा बिगाडिया, जे मूडै सौ बार।
मन कौ काहे न मूडिए, जामैं बिषै विकार॥—ग्रन्थावली, पृष्ठ ४६।

३. देखिये, 'सन्तकवि दरिया एक अनुशीलन' —पृष्ठ, ८३, ८४।

रे मन बैठि किते जिनि जासी।
हिरदै सरावर है अविनासी॥

इसी सत्यकी व्याख्या रूपमे वे कहते है—

काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी।
काया मधे कवलापति, काया मधे वैकुठ वासी॥[१]

जो लोग पिण्ड और ब्रह्माण्डकी एकताको शब्दश. ग्रहण करना चाहते है उनके लिए तो कबीर कुछ दूसरी ही बात कहते है—

प्यड ब्रह्मड कथै सब कोई, वाकै आदि अरु अत न होई।
प्यड ब्रह्मड छाडि जे कथिए, कहै कबीर हरि सोई॥[२]

जो अनादि और अनन्त है वह पिण्ड और ब्रह्माण्डकी सीमामे कैसे आ सकता है? ब्रह्माण्ड भी तो सीमित है? कबीरका 'हरि' इससे भी परे है।

(घ) साध्यका स्वरूप सहज, समतत्त्व और राम—बौद्ध सिद्धोने सहज मार्गपर चलकर जिस 'सहज तत्त्व'की उपलब्धि की थी वह एक प्रकारकी मानसिक स्थिति थी जिसमे 'महासुख'की अनुभूति होती थी। अनुभूतिके क्षणोमे साधक आत्म और परका भेद भूल जाता था। यह महासुखात्मक अनुभूति आदि, मध्य, अन्त, भव और निर्वाण सभीसे परे थी।[३] सहजयानी सिद्धोका यह 'सहज तत्त्व' प्रारभिक बौद्धोके 'निर्वाण'की तुलनामे अधिक पॉजिटिव (धनात्मक) है।[४] किन्तु मूलत. अनीश्वरवादी होनेके कारण बौद्ध सिद्ध इस 'सहज तत्त्व' को

---

१ कबीर ग्रन्थावली पद १७१।

२ कबीर ग्रन्थावली, पद १८०।

३ आइ ण अन्त ण मज्झ णउ, णउ भव णउ णिव्वाण।
एहु सो परम महासुह, णउपर णउ अप्पाण॥

—हिन्दी काव्यधारा, पृष्ठ, ६।

४ And this conception of the final state of the Buddhist *Sahajiyas* differd from that of the early buddhist in this that the Mahasukh state of Nirvana is a difinitely positive state, while the earlier Buddhistic tendency was towards negation
—*Obscure Religious Cults* p. 139

सम्पूर्ण सृष्टि-प्रक्रियाके मूलमे स्थित आदि तत्त्व (ब्रह्म, परमात्मा, शिव आदि) के समकक्ष (पूर्ण धनात्मक) न ला सके। नाथ योगियोने भी सहज और शून्यकी चर्चा की है। गोरखनाथको मत्स्येन्द्र नाथने बताया था कि—

"दुबध्या मेटिं सहजमें रहै। ऐसा विचार मछिन्द्र कहै।
× × ×
सहज सुनि मन तन थिर रहै। ऐसा विचार मछिन्द्र कहै॥"[१]

अर्थात् मनकी द्वन्द्वातीत अवस्था ही सहज अवस्था है। इस अवस्थामे काया और मन दोनो स्थिर रहते है। इस अवस्थामे योगी-साधक शिव और शक्तिके आनन्दमय एकत्वकी अनुभूति करता है।[२] इस एकत्वकी स्थितिमे शक्ति, शिवके अभ्यन्तर स्थित रहती है। वस्तुत· शिव और शक्ति एक दूसरेसे शाश्वत रूपसे आलिंगित रहते है—'शिवस्य अभ्यन्तरे शक्ति शक्तेर अभ्यन्तरे शिवः' इसीलिए यह अवस्था 'द्वैताद्वैत विलक्षण समरसावस्था' है। अत. यह कहा जा सकता है कि योगियोकी सहजावस्था एक प्रकारकी समरसावस्था ही है जिसमे वे समतत्त्वकी अनुभूति करते है। कबीरदासजीने भी सहज और शून्यकी चर्चा की है किन्तु उनका 'सहज' 'राम' का पर्याय हो गया है। सिद्धोका सहजसुख (महासुख) उनके लिए 'रामरस' हो गया है। रामसे 'एकमेक' होनेकी अनुभूति ही उनकी सहजानुभूति है।

सहज सहज सब कोई कहै, सहज न चीन्है कोइ।
जिन्ह सहजै हरिजो मिलै, सहज कही जै साइ।[३]
× × ×
सहजै सहजै सब गये, सुत-बित कामिणि काम।
एकमेक ह्वै मिलि रह्यौ, दास कबीरा राम॥[४]

---

१ हिन्दी-काव्यधारा, पृष्ठ १५९।

२ "गोरख कहै अम्हे चचल ग्रहिया। मिव सकती ले निज घर रहिया।"
—हिन्दी काव्यधारा, पृ० १६१।

३ कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ ४२, साखी ४।

४ वही " " ३।

उपर्युक्त अध्ययनसे प्रकट है कि बौद्धोसे योगियो तकके सक्रमण-कालमें 'सहज' तत्त्व क्रमशः धनात्मक (पाजिटिव) होता आया है। कबीर-साहित्यमे वह 'हरि' और 'रामसे' अभिन्न हो गया है। अब देखना यह है कि क्या कबीरके 'राम' योगियोके 'द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्त्व' (शिव) से अभिन्न है ?

कबीरके निर्गुण राम (साध्य)—कबीरदासको बाबू श्यामसुन्दरदास और डाक्टर बडथ्वाल ब्रह्मवादी और अद्वैतवादी मानते है।[१] अतः उनकी दृष्टिमे निर्गुण रामसे तात्पर्य अद्वैतके निर्गुण ब्रह्मसे है।[२] परम्परागत मान्यता यही रही है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने कबीरके रामकी नई व्याख्या दी है। वे कबीरके निर्गुण रामको योगियोके 'द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्त्व' का समानार्थी मानते हैं। वे कहते है—"इसी त्रिगुणातीत, द्वैताद्वैत-विलक्षण, भावाभावविनिर्मुक्त अलख अगोचर अगम्य प्रेम पारावार भगवान्‌को कबीरदासने 'निर्गुण राम' कहकर सबोधन किया है।"[३] डॉ० द्विवेदीने कबीरको जितना पढा और समझा है कदाचित् हिन्दीके किसी अन्य विद्वान्‌ने नही। किन्तु उनके अध्ययनमे एक विरोध दिखाई देता है। एक ओर तो वे कहते है—"हमने कई बार कहा है कि कबीरदास योगियो द्वारा प्रभावित तो बहुत है पर वे स्वय वही नही है जो योगी हैं। हम यहाँ फिर एकबार कहते है कि कबीरदास योगिक क्रियाओको भी बाह्याचार ही मानते थे।"[४] दूसरी ओर वे कबीरके निर्गुण रामको एकदम योगियोके 'शिव' (समतत्व) से अभिन्न मान लेते है।[५] योगियोके 'द्वैताद्वैत विलक्षण समतत्त्व-वाद' मे भक्तिका तत्त्व नही है। तुलसीने गोरखनाथको 'भक्तिको भगानेवाला' माना है। कबीरने भक्ति-तत्त्व वैष्णवोकी परम्परासे (रामानन्दसे) प्राप्त किया है। ऐसी स्थितिमे उनके आराध्यको भी रामानन्दकी

१ हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ ११५, [हिन्दी सस्करण]।

२ 'रामसे उनका तात्पर्य निर्गुण ब्रह्मसे है'।

—कबीर ग्रन्थावलीकी भूमिका, पृष्ठ ३१।

३ 'कबीर', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १२६।

४ 'कबीर', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ९३।

५ 'कबीर', डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ३२।

एतद्विषयक मान्यताओंके अनुकूल होना चाहिए।[१] यदि यह कहा जाय कि प्रारम्भमे कबीरदास योगियोसे प्रभावित थे बादको रामानन्दसे हुए। (जैसा कि डॉ० द्विवेदीने कहा भी है) तो उनके दो राम होने चाहिए। यदि यह माना जाय कि कबीरदासजीने प्रेमका तत्त्व सूफियोसे प्राप्त किया था [सूफियोका प्रभाव आजतक किसीने अस्वीकार नही किया है] तो यह भी सम्भव है कि उन्होंने प्रेम-के आस्पदको भी वहींसे लिया हो[२]। उनकी रचनाओसे कही-कही इसका सकेत भी मिलता है ? स्वय कबीरका तो कहना है कि मुझे गुरु-द्वारा तत्त्व-ज्ञान प्राप्त हुआ था किन्तु मैने मूलको विस्तृत अनुभवके बलपर परखकर ग्रहण किया है।[३] अन्यत्र भी उन्होने 'जगभव'का गावना क्या गावै अनुभव गावै सो रागी है' या 'करत विचार, मन ही मन उपजी, ना कही गया न आया' कहकर अनुभव ज्ञानको अधिक महत्त्व दिया है। अपने अनुभवके बलपर कबीरने जिस रामको समझा था वह 'अलख', 'निरजन', 'निरभै', 'निराकार', 'रूप-रेखासे परे', 'बरन-अबरनसे मुक्त', 'आदि मध्य अत रहित', 'अकथ्य' 'सृष्टि और लयसे परे' है। वह जैसा है तैसा ही है। वाणीके माध्यमसे जैसा व्यक्त किया जाता है वैसा वह नही है।[४] जब पवन, पानी, सृष्टि, पिण्ड, धरती, आकाश, कली, फूल, गर्भ, मूल, शब्द, स्वाद, विद्या, वाद, गुरु, शिष्य, आदि कोई भी नहीं था उस समय जो अविगत तत्त्व विद्यमान था उसकी गति कैसे कही जा सकती है।[५] यह अविगत तो निराधार है। इसका वार-पार नहीं जाना जा सकता। यह लोक वेद और ससारसे परे है। इसका न रूप है न रेखा न गुग न वेश (बाना)। न तो वह युवा है न वृद्ध न बालक। ऐसा राम

---

१. रामानन्दजीकी सस्कृत रचनाओमे—'वैष्णवमताब्जभास्कर', 'रामार्चनपद्धति'—में सगुण भक्तिका निरूपण किया गया है।

२. अला एकै नूर उपाया, ताकी कैसी निन्दा,
ता नूर थे सब जग कीया कौन भला कौन मदा।
—ग्रन्थावली, पद, ५१।

३. सत गुर तत कह्यौ बिचार, मूल गह्यौ अनभै विस्तार।
—ग्रन्थावली, पद, ३८६।

४. ग्रन्थावली, अष्टपदी रमैणी, पृष्ठ, २३०।

५. ग्रन्थावली, रमैणी, पृष्ठ, २३८।

सर्वथा पूर्ण है। उसका निरूपण नही किया जा सकता।[१] अपनी साखियो मे भी कबीरने यही कहा है कि यदि मै उसे भारी कहता हूँ तो डरता हूँ (यह सोचकर कि सत्य नहीं कह रहा हूँ)। और हल्का कहता हूँ तो झूठा सिद्ध होता हूँ। जिसको कभी स्थूल नेत्रो से नही देखा उसे कैसे जान सकता हूँ ?[२] यदि देखा भी है तो व्यक्त कैसे करूँ क्योकि मेरे कहे का कोई विश्वास ही नही करता। हरि जैसा है वैसा ही रहै। मै तो (कबीर) प्रसन्नता-पूर्वक उसके गुण गाता हूँ। कबीर ने अपने रामको निर्गुण-सगुणसे परे अवश्य माना है[३] किन्तु उनके लिए निर्गुण सगुणसे परेका अर्थ 'समतत्त्व' ही है, ऐसा नही कहा जा सकता। उन्होने 'शिव' और 'शक्ति' तत्त्वके उपासको और शरीर-मे विभूति लगानेवाले जटाधारी साधुओ (सम्भवत. योगियो) की निन्दा की है।[४] ऐसी स्थितिमे उनके दार्शनिक सिद्धान्तको ज्योका त्यो ग्रहण कर लेना स्वाभाविक नही प्रतीत होता। प० परशुराम चतुर्वेदीका तो निश्चित मत है कि 'कबीर साहबकी विचार-पद्धतिकी भित्ति स्वानुभूतिपर ही खडी है।'[५] उनके राम तो निर्गुण-सगुणसे ही नही समस्त ससारसे और जो कुछ वाणीके माध्यमसे कहा गया है या कहा जा सकता है उस सबसे परे है। उसके लिए यदि शब्द है तो एक—पूर्ण। थहाते-थहाते थक जानेपर कबीरने यही कहा था—"तूँ पूरा रहिमान"।[६]

निष्कर्ष रूपमे यह कहा जा सकता है कि कबीर अपने रामको 'निरपेक्ष' सत्यके रूपमे अनुभव करते थे और उसे अनिवर्चनीय मानते थे। उसे अनेक नामोसे अभिहित करनेका अर्थ यही है कि वह तत्वतः सभी नामोसे परे है।

(ङ) भाषा और शैली साम्य—बौद्ध-सिद्धो और नाथ-योगियोकी विचार-धाराके साथ ही उनकी भाषा और शैलीका प्रभाव भी कबीरपर कम नहीं पडा

१ ग्रन्थावली, पृष्ठ, २४२।

२ ग्रन्थावली, जर्णा कौ अग, साखी १, पृष्ठ, १७।

३ निर्गुण सर्गुण ते परे तहाँ हमरो ध्यान। —ग्रन्थावली

४ ग्रन्थावली, पद ३८०, पृष्ठ ११४।

५ उत्तरी भारतकी सत परम्परा, पृष्ठ १८८।

६ ग्रन्थावली, पृष्ठ १७, साखी २ [लॉबि कौ अग]।

है। कहीं-कहीं तो कबीरने सिद्धों और नाथोंके वाक्योंको प्रायः ज्योंका त्यों स्वीकार कर लिया है। उदाहरणके लिए निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए—

सिद्ध सरहपा—जहि मण पवण ण सचरइ, रबि ससि णाह पवेस।
तहि वढ! चित्त विसाम करु, सरहें कहिअ उएस[1] ॥

कबीर—जिहि बन सीह न सचरै, पषि उडे नहीं जाइ।
रैनि दिवस का गमि नहीं, तहाँ कबीर रह्या ल्यो लाइ[2] ॥

सिद्ध सरहपा—पडिअ सअल सत्थ वक्खाणइ।
देहहि बुद्ध बसन्त ण जाणइ ॥[3]

कबीर—पढि पढि पडित वेद बषाणै।
भीतरि हूती बसत न जाणै ॥[4]

सिद्ध तंतिपा (टेंटणपा)—बरद बिआअरु गविआ बाँझे।
पिटहु दुहिअइ ए तिनो साँझे ॥

× × ×

निति सिआला सिंहे सम जूझअ।
टेण्टण पाएर गीत विरले बूझअ ॥[5]

कबीर—बैल बियाइ गाइ भई बाँझ।
बछरा दूहै तीन्यूँ साँझ ॥

× × ×

नित उठि स्याल स्यघ सूँ झूझै।
कहै कबीर कोइ विरला बूझै ॥[6]

---

१ देखिये 'हिन्दीके विकासमें अपभ्रंशका योग', परिशिष्ट [अपभ्रंश दोहा-सग्रह] दोहा, ४।
२. ग्रन्थावली, पृष्ठ १८ साखी, १।
३. हिन्दी-काव्यधारा, पृष्ठ १०, छद ६८।
४. कबीर-ग्रन्थावली, पृष्ठ १०२, पद ४२।
५. हिन्दी-काव्य-धारा, पृष्ठ १६४, पद ३३।
६ कबीर-ग्रन्थावली, पृष्ठ ११३, पद, ८०।

गोरक्षपा (गोरखनाथ)—नीझर झरणै अमीरस पीवणा षट दल बेध्या जाइ।
चद बिहूणा चदिणा तहाँ देष्या श्री गोरष राइ ॥[1]

कबीर—मन लागा उनमन्न सौं गगन पहुँचा जाइ।
देख्या चद बिहूँणा चादिणा तहाँ अलख निरजन राइ ॥[2]

गोरक्षपा (गोरखनाथ)—हिन्दू आष राम कौं मुसलमान षुदाइ।
जोगी आष अलष कौं, तहाँ राम अछै न षुदाई ॥[3]

कबीर—हिन्दू मूये राम कहि, मुसलमान खुदाइ।
कहै कबीर सो जीवता, दुह मैं कदे न जाइ ॥[4]

इस प्रकारकी अन्य पक्तियाँ भी उद्धृतकी जा सकती है। सिद्धो और नाथोके अतिरिक्त जैन मुनियोकी शब्दावली भी कही-कही कबीरकी साखियो और पदावलियोमे मिल जाती है। इस प्रकार के प्रयोगोका अच्छा अध्ययन पडित परशुराम चतुर्वेदीने 'कबीर साहित्यकी परख'के दूसरे अध्याय—कबीर साहब और पूर्ववर्ती कवियोकी रचनाये—के अन्तर्गत किया है। इससे कबीरका सिद्धो और नाथोसे सीधा सम्बन्ध सिद्ध हो जाता है। कबीरकी शैली भी वही 'साखी' और 'सबदी' (दोहे और गेय पद) की मुक्तक शैली है जिसका प्रयोग सिद्धों और नाथोने किया था। कबीरका भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण भी वही था जो नाथो और सिद्धोका क्योकि दोनो ही जन-भाषाके समर्थक और पोषक थे। दोनोमें अतर व्यक्तित्व-भेदसे उत्पन्न होनेवाली ओजस्वितामे है। कबीरमे आत्मविश्वासकी मात्रा उस सीमातक पहुँची हुई थी जहाँ वे समस्त ससारकी उपेक्षा करके भी मुसकरा सकते थे। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीके शब्दोमे "सच पूछा जाय तो आजतक हिन्दीमे ऐसा जबर्दस्त व्यग्य लेखक पैदा ही नहीं हुआ। उनकी साफ चोट करनेवाली भाषा, बिना कहे भी सब कुछ कह देने-वाली शैली और अत्यन्त सादी किन्तु अत्यन्त तेज प्रकाशन-भगी अनन्य-साधारण

---

१ गोरखबानी, पृष्ठ ५८, सबदी १७१।

२ कबीर-ग्रन्थावली, पृष्ठ १३, साखी १५ [परचा कौ अग]।

३ गोरखबानी, पृष्ठ २५, सबदी, ६९।

४ कबीर-ग्रन्थावली, पृष्ठ ५४, साखी, ७।

है।"[1] सचमुच पडितोके गढ (काशी) मे बैठकर 'ससकीरत है कूप-जल भाषा बहता नीर'की व्यवस्था देना कबीरका ही काम था।

वैष्णव भक्ति और कबीर

कबीरका वैष्णव भक्तिसे प्रभावित होना सभीको मान्य है। स्वय कबीरने यदि किसीके प्रति आभार, उदारता, स्नेह या स्वीकृति प्रदर्शित की है तो वह वैष्णवोके प्रति ही[2]। आचार्य शुक्लने उनका वैष्णवोके अहिंसावाद और प्रपत्ति-वादसे प्रभावित होना स्वीकार किया है।[3] भण्डारकर महोदयने तो निश्चित रूपसे कबीरको वैष्णव भक्ति-परम्परामे स्थान दिया है।[4] डॉ० मुशीराम शर्माने कबीरको विशेष रूपसे वैष्णव भक्तिसे प्रभावित माना है।[5] डॉ० बडथ्वालने विश्वासपूर्वक लिखा है—"रामानन्दने अपने शिष्योको 'प्रेमाभक्ति' ही दी थी और इसीमे कबीर आदि निर्गुणी मग्न रहा करते थे।"[6] डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने विचारपूर्वक निर्णय दिया है—'रामानन्दके प्रधान उपदेश अनन्य-

---

१. कबीर, पृष्ठ, १६४।

२ मेरे सगी दोइ जणा, एक वैष्णों एक राम।
वोहै दाता मुकति, का वो सुमिरावै नाम॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ४९, साखी, ४।

× × ×

बैश्नौंकी छपरी भली, ना साषतका बड गाउ।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ, ५२।

× × ×

साषत बाभण मति मति मिलै, बैसनौं मिलै चँडाल।
अक माल दे भेटिये, मानौ मिले गोपाल॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ५३।

× × ×

'कबीर धनि ते सुन्दरी, जिनि जाया बैसनौं पूत'।
—वही, पृष्ठ ५३।

३. हिन्दी-साहित्यका इतिहास, पृष्ठ, ७७।

४. Vaisnavism, Saivism & C Page, 95

५. भक्तिका विकास, पृष्ठ ४२९।

६ हिन्दी-काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय, भूमिका, पृष्ठ, [ठ]।

भक्तिको कबीरने शिरसा स्वीकार कर लिया था। बाकी तत्त्वज्ञानको उन्होने अपने संस्कारो, रुचि और शिक्षाके अनुसार एकदम नवीन रूप दे दिया था'।[1] इसमें सन्देह नही कि कबीरने 'नारदी भक्ति' मे मग्न होने की बात कही है[2] और 'नारदी-भक्ति' वैष्णव-भक्तिका ही प्राचीन नाम है और उसमे ग्यारह प्रकारकी आसक्तियोमे 'कान्तासक्ति' को भी स्वीकार किया गया है किन्तु कबीर-की भक्तिमे जो प्रेमकी उत्कटता, उष्णता, और मादकता है वह रामानन्दी प्रभावका परिणाम नही है। रामानन्दके 'वैष्णवमताब्ज भास्कर' ग्रथके साक्ष्यपर यह कहा जाता है कि उन्होने ईश्वर-जीवके भागवत सम्बन्धोमे 'भार्याभर्तृत्व' सम्बन्धको भी विहित मानकर माधुर्य भावकी रामोपासना का मार्ग प्रशस्त कर दिया।[3] रामानन्दजीने 'भार्याभर्तृत्व सम्बन्ध' को माधुर्य भावकी रामोपासनाका मार्ग प्रशस्त करनेके लिए नही स्वीकार किया वरन् कृष्णभक्तोंमे प्रचलित राधा कृष्णके मधुर सम्बन्धो—कान्तासक्ति—को राम-भक्तिमे आत्मसात् करके उसे अपेक्षाकृत पूर्ण और युग-सम्मत बनानेके लिए स्वीकार किया। दोनो दृष्टि-कोणोमे सूक्ष्म-भेद है। हम किसी सिद्धान्तको प्रचारित करनेके लिए निरूपित करे, यह और बात है और हम किसी प्रचलित सिद्धान्तको अपनी व्यवस्थामे भी स्थान दे दे यह दूसरी बात है। रामानन्दजीने सीता और रामकी मर्यादित भक्ति-का ही प्रचार किया था।[4] 'नारदी भक्ति' और 'रामानन्दी भक्ति'मे स्वीकृत मधुर-भावनाका प्रभाव स्वीकार कर लेनेपर भी कबीरकी भक्ति उनके मेलमे नहीं रखी जा सकती। उपर्युक्त दोनो भक्ति-सिद्धान्त सगुणाश्रयी हैं। कबीरका उत्कट प्रेम निरपेक्षके प्रति है। इसके अतिरिक्त कबीरने जिस रूपमे अपनी विरहानुभूति

---

१ कबीर, पृष्ठ ९८।

२ भगति नारदी मगन सरीरा, इहिविधि भवतिरि कहै कबीरा।
—ग्रन्था० पृष्ठ १८३, पद २७८।

३ 'रामभक्तिमे रसिक भावना', डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह, पृष्ठ ८१।

४ "And a third very important reform made by him was the introduction of the purer and more chaste worship of Rama and Sita instead of that of Kisna and Radha"
—*Vaisnavism, Saivism & C*, p. 94

व्यक्त की है वह सूफियोके अधिक निकट है। इस सबन्धमे कबीर और जायसी की कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य है।

कबीर—यह तन जालौ मसि करौ लिखौ राम का नाउ ।
लेखणि करु करक की लिखि लिखि राम पठाउँ ॥[१]

जायसी—यह तन जारौ छारकै करौ कि पवन उडाउ ।
मकु तेहि मारग होइ परौ कत धरै जहँ पाउ ॥[२]

कबीर—यह तन जालौ मसि करूँ, ज्यूँ धूवाँ जाइ सरग्गि ।
मति वै राम दया करै, बरसि बुझावै अग्गि ॥[३]

जायसी—पिय सौ कहेहु सँदेसरा हे भँवरा हे काग ।
सा धनि विरहें जरि मुई तेहिक धुआँ हम लाग ॥[४]

कबीर—विरह भुवगम पैस करि, किया कलेजे घाव ।
साधू अग न मोडही ज्यूँ भावै त्यूँ खाव ॥[५]

जायसी—विरह हस्ति तन सालै खाइ करै तन चूर ।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर ॥[६]

कबीर—राम बिवोगो ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ।[७]

जायसी—जौ भा चेत उठा बैरागा । बाउर जनहुँ सोइ अस जागा ॥[८]

कबीर—बिन रोयाँ क्यूँ पाइए, प्रेम पियारा मित्त ।[९]

जायसी—एहि रे पथ सो पहुँचै सहै जो दुक्ख बियोग ।[१०]

प्रेमाभक्ति मे विरहको यह महत्त्व रामानन्दकी परम्परामे नहीं दिया गया है।

---

१. ग्रन्थावली, पृष्ठ ८, साखी १२।
२. पद्मावत, ३५२, १२।
३ ग्रन्थावली, पृष्ठ ८, साखी ११।
४ पद्मावत, ३४९, ९।
५. ग्रन्थावली, पृष्ठ, ९, साखी १९।
६. पद्मावत, ३४७, ७।
७ ग्रन्थावली, पृष्ठ ९, साखी १८।
८. पद्मावत, १२१, १।
९. ग्रन्थावली, पृष्ठ ९, साखी २७।
१०. पद्मावत, १२२, ४।

ऐसा लगता है कि कबीर ने वैष्णव भक्तिसे अहिंसा, समर्पण (प्रपन्नता) और अनन्यताकी भावना ग्रहण की थी किन्तु अव्यक्तके प्रति प्रगाढ प्रेम और तन-मन दाहकविरह सूफियोसे ही ग्रहण किया था, नही तो वे 'विरह'को 'सुल्तिान' न बनाते ।[१] जायसीने स्वय कबीरका महत्त्व स्वीकार करते हुए कहा है—

ना-नारद तब रोइ पुकारा । एक जोलाहे सौ मैं हारा ॥
प्रेम-ततु निति ताना तनई । जप तप साधि सैकरा भरई ॥

कबीरका यह 'प्रेम-ततु' जायसीके अनुकूल न होता तो वे उसकी प्रशसा न करते । कबीरकी भक्तिमे नारद भक्ति-सूत्रमे निरूपित ग्यारह प्रकारकी आसक्तियॉ भी मिल जाती है ।[२] किन्तु 'नारदीभक्ति'मे यह आसक्तियॉ सगुण भगवान्के प्रति दिखाई गई है जब कि कबीरका स्वामी 'अलख' और 'अरूप' है । यो तो भगवान्के प्रति प्रेम-प्रदर्शनमे इस प्रकारकी आसक्तियॉ कही भी स्वयमेव आ सकती हैं । ध्यान रखना होगा कि कबीरने वैष्णवोको भी पूर्णत स्वीकार नही किया है । वे कहते है—

वैष्णव हुआ त क्या भया माला मेली चारि ।
बाहर कचनवा रहा भीतरि भरी भँगारि ॥[३]

प्रकट है कि वैष्णव-भक्तोमे भी उन्हे कपटाचारी दृष्टिगत हुए थे और उनका भी उन्होंने विरोध किया था ।

सूफी प्रेम-तत्त्व और कबीर

कबीरके आविर्भावके पूर्व भारत भूमिमे सूफी सम्प्रदायोंका प्रवेश हो चुका था । ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (सन् ११४२-१२३६) ने सन् ११९२ मे चिश्ती सम्प्रदायको भारत-भूमिमे प्रतिष्ठित कर दिया था ।[४] ऐसी स्थितिमे कबीरका सूफी प्रेम-पद्धतिसे प्रभावित होना असम्भव नही है ।[५] कबीरने भी प्रेमके प्यालेको

१ ग्रन्थावली, पृष्ठ ९, साखी, २१ ।
२ कबीरकी विचारधारा, डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, पृष्ठ ३०९, १० द्वितीय सस्करण ।
३ ग्रन्थावली, (परिशिष्ट) साखी, १३८ ।
४ हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ ३०४ ।
५ वेस्कॉट महोदयने (G H Westcott) विस्तार पूर्वक विचार करनेके बाद निर्णय

छककर पिया था।[१] सूफी सन्तोसे उनके सत्सगकी बात तो लोक-परम्परामे प्रचलित भी है। किन्तु कबीरने इस प्रेम-तत्त्वको भी अपने अनुभवकी कसौटीपर कसकर (अपने ढगसे) ग्रहण किया था। सूफी-साधक प्रेम-साधनाके बलसे नासूत (मनुष्यत्व) का लाहूत (ईश्वरत्व) मे 'हल' हो जाना स्वीकार करते हैं किन्तु यह 'हुलूल' की स्थिति 'हाल' की अवस्थातक ही सीमित रहती है। 'हाल दशा' के व्यतीत हो जानेपर यह अद्वैतता समाप्त हो जाती है। कबीर भी प्रेम-बलसे अपने स्वामीसे 'एकमेक' हो जाते है किन्तु कुछ क्षणोके लिए नहीं सदा-सदाके लिए।[२] कबीरकी प्रगाढ-प्रेम-जनित अद्वैतता क्षणिक आवेशका परिणाम नहीं है। उनका प्रेम शाश्वत है। उनकी भावना एकरस है। कबीरके समयतक सूफियोमे भी अनेक प्रकारके बाह्याचार आ गए थे। इसीलिए उन्होंने 'मुरीद' और 'पीर' को भी चेतावनी दी थी—

> पीरा मुरीदा काजिया, मुला अरु दरवेस।
> कहा थें तुम्ह किनि कीये अकलि है सब नेस॥[३]

सूफियोसे कबीरका पार्थक्य एक अन्य दृष्टिसे भी है। सूफी 'साध्य' को प्रियतमाके रूपमे देखते है और स्त्री-सौन्दर्यमे उसकी भावना कर लेते है, कबीर स्वयको स्त्री-रूपमे कल्पित करते है और साध्यको पुरुष रूपमे देखते है। यह प्रतीक उन्हे योगियोकी परम्परासे प्राप्त हुआ था। योगियोके अनुसार यह सम्पूर्ण व्यक्त प्रकृति

दिया है—"We have probably written enough to show that it is not impossible that Kabir should have been both a Muhammadan and a Sufi"

—*Kabir and the Kabir Panth*, p 27

१ कबीर प्यालै प्रेम कै भरि-भरि पिवै रसाल। —ग्रन्थावली, पृष्ठ २६, साखी, ४९।

२ अब तोहि जान न दैहूँ राम पियारे।
ज्यूँ भावै त्यूँ होइ हमारे॥

× × ×

इत मन मदिर रहौ नित चोषै, कहै कबीर परहु मति धोषै॥

—ग्रन्थावली, पृष्ठ ८७, पद ३।

३ कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १७५, पद, २५७।

शक्ति-रूपा है। अद्वैतावस्थामे 'शक्ति' शिवसे मिलकर एक हो जाती है। बौद्धोने इसी अद्वैत अवस्थाको 'प्रज्ञा' और 'उपाय' के मिलनमे अनुभव किया था। व्यावहारिक स्तरपर 'उपाय' और 'प्रज्ञा' को पुरुष और स्त्रीके रूपमे कल्पित किया जा सकता है। दोनोकी युगनद्ध अवस्थामे उत्पन्न होनेवाले परम आनन्द की स्थितिमे ही निरपेक्ष सत्यकी अनुभूति की जा सकती है।[१] कबीरने अपने प्रियतमसे मिल्कर इसी निरपेक्ष सत्यका अनुभव किया था। कबीरकी आत्मा इसी अद्वैतताके लिए तडपती रही है। ऐसी ही तडपन उन्हे सूफियोके भुवन-व्यापी विरहमे भी दिखाई पडी थी। बस, इसी बिन्दुपर वे सूफियोके साथ थे।

इसलामी एकेश्वरवाद और कबीर

कबीरके इसलामी एकेश्वरवादसे प्रभावित होनेकी बात भी कही जाती है। इसमे सन्देह नही कि कबीरने—'दुई जगदीस कहाँ ते आए कहु कौने भरमाया' कहकर अल्ला, राम, करीम, केशव तथा हरि और हजरतकी एकताका प्रतिपादन किया है।[२] किन्तु कबीरके एक ईश्वरकी मान्यता और इसलामी एकेश्वर सम्बन्धी विचारधारामे मौलिक अन्तर है। मुसलमानोके एकेश्वर सम्बन्धी विचारका सार रूप इस कथनमे आ गया है—'ला इलाहे इल्लिल्लाह मुहम्मदर्रसूलिल्लाह'। अर्थात् 'अल्लाहका कोई अल्लाह नही, वह एकमात्र परमेश्वर है और मुहम्मद उसका रसूल है।' कुरान निरूपित इस अल्लाहकी शक्ति असीम है। वह सब कुछ करनेमे समर्थ है। वह कृपा करके अपने रसूलोको भेजता है जो जनताको उचित मार्गपर ले चलते है। अल्लाह नही चाहता कि कोई और उसकी समता

---

१ The principles of Siva & Sakti or Upaya and Prajna are represented by man and woman, and it is, therefore, that when through the process of Sadhana man and woman can realise their pure nature as Siva and Sakti or Upaya and Prajna, the supreme bliss arising out of the union of the two becomes the highest state where by one can realise the ultimte nature of the absolute reality

—*Obscure Religious Cults*, p 139.

२ हिन्दी काव्यमें निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ ९५।

कर सके। 'वह उन शूर-वीरोके लिए सुख-सदन बनाता हूरोका प्रबन्ध करता, भोग विलासका विधान करता जो उसके लिए मरते-मरते, जीते-जागते उसीकी उपासनामे लगे रहते है और कभी किसी दूसरेको नहीं भजते।'[१] कहना न होगा कि विहिस्तका यह अल्लाह धरतीका शाहशाह ही है। कबीर बेचारा भला ऐसी जगह कैसे पहुँच सकता था। वह कहता है—

तहाँ मुझ गरीब को को गुदरावै,
मजलसि दूरि महल को पावै।
सतरि सहस सलार है जाके, असी लाख पैकम्बर ताकै।
सेख जु कहिय सहस अठ्यासी, छपन कोडि खेलिबे खासी॥[२]

कबीर जिस एक 'अल्लाह'की बात करते है वह तो निरजन है।[३] वह सर्वव्यापी है। घट-घटमे रम रहा है। मुसलमानोका खुदा तो इस अर्थमे एक है कि उसके समान शक्ति सम्पन्न कोई दूसरा देवता नही है। कबीरका स्वामी एक होते हुए भी सबमे व्याप्त है।[४] वह इस अर्थमे एक है कि उसके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। आँखोके सामने फैला हुआ यह सारा पसार उससे अभिन्न है।[५] कुरानमे अल्लाहका विशद वर्णन उनके साकार रूपको सामने उपस्थित कर देता है।[६] कदाचित् इसीलिए कबीरको कहना पडा कि—'पूजा करूँ न निमाज गुजारूँ,

---

१ तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृष्ठ, ६५।

२ ग्रन्थावली, पृष्ठ २०२, पद ३३९।

३ एक निरजन अलह मेरा, हिन्दू तुरक दहूँ नहीं नेरा।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ २०२, पद ३३८।

४. मुसलमान कहै एक खुदाई,
कबीरा कौ स्वामी घटि घटि रह्यौ समाई।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ, २००, पद ३३१।

५. हम सब माहि सकल हम माही
हम थै और दूसरा नाहीं।
तीनि लोक मै हमारा पसारा।
आवागमन सब खेल हमारा।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ २००, पद ३३२।

६ तसव्वुफ अथवा सूफी मत, पृष्ठ, ६४।

एक निराकार हिरदै नमसकारूँ ।[1] प्रकट है कि इसलामी एकेश्वरवाद और कबीरके 'एकेश्वर'मे स्पष्ट किन्तु सूक्ष्म भेद है ।

कबीर और सन्तमतको प्रभावित करनेवाले अन्य सम्प्रदाय

उपर्युक्त धार्मिक मतोके अतिरिक्त दो अन्य मतोसे भी कबीर साहब और निर्गुण सन्त मतका प्रभावित होना बताया जाता है। एक है 'कश्मीरी शैवमत' और दूसरा है दक्षिणमे पढरपुरके आस-पास प्रचलित 'वारकरी सम्प्रदाय' इन मतोसे कबीरका प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही माना जा सकता। हॉ, किसी न किसी रूप मे प्रभावित होनेकी बात दूसरी है। **कश्मीर-शैव मतमे** ऐसी दो मान्यताये है जो सन्तोकी विचारधाराके अनूकूल पडती है। एक है, अद्वैतमे द्वैत या निर्गुणमे भी सगुणका आरोप ओर दूसरी है परमेश्वरमे कतृत्व शक्तिका होना अर्थात् मायाका आधार लिए बिना निजेच्छया सृष्टि रचनेकी शक्ति।[2] इसे 'ईश्वराद्वयवाद' 'आभासवाद' और 'प्रत्यभिज्ञा दर्शन' भी कहते है। 'प्रत्यभिज्ञा'से तात्पर्य है ज्ञात वस्तुको फिरसे जानना। 'जिस अद्वय ईश्वरका ज्ञान उसे अस्पष्ट रूपमे रहता है गुरुकी कृपासे उसे पूर्णत' जानकर साधक आनन्द-विह्वल हो जाता है।[3] इस मतमे ज्ञानके उपरान्त भक्तिको आनन्दकी अनुभूतिके लिए स्वीकार किया जाता है। यह भक्ति 'अद्वैत भावापन्न' है। कबीरने भी अपने 'आतम राम'को पहचान-कर उनसे प्रगाढ प्रीति की थी। उन्होने ज्ञानकी ऑधीमे 'भ्रम', 'मोह', 'द्विविधा', 'त्रिष्णा' और 'कुबुद्धि'के उड जानेपर हरिके प्रेम-जलसे स्नान किया था।[4] कबीरने अपने साहबको स्वेच्छया सृष्टि करनेवाला भी माना है। 'जिमि नटवै नटसारी साजी, जो खेलै सो दीसै बाजी'[5] या 'नट बहुरूप खेलै सब जाने, कला केर गुन

---

१ ग्रन्थावली, पृष्ठ २०२, पद, ३३८।

२ God is according to them independent and creates merely by the force of his will all that comes into existence.
—*Vaisnavism, Saivism & C*, p 184

३ उत्तरी भारतकी सन्त-परम्परा, पृष्ठ, ८७।

४ ग्रन्थावली, पृष्ठ, ९३ पद, १६।

५ वही, पृष्ठ २२७, रमैनी, २।

ठाकुर मानै'[१] कहकर उन्होने इसी सत्यकी अभिव्यक्ति की है। किन्तु इन कथनो और उद्‌गारोके लिए उनका कश्मीरी शैव सिद्धान्तसे प्रत्यक्ष प्रभावित होना आवश्यक नही प्रतीत होता। **वारकरी सम्प्रदाय** वैष्णव-भक्ति सम्प्रदाय है जिसके प्रवर्तक सन्त ज्ञानेश्वर (१२७५-१२९६ ई०) माने जाते है। नामदेव और तुकाराम जैसे सत इसी सम्प्रदायमे हुए थे। इनके आराध्यदेव विट्ठल भगवान् है। कबीरने न केवल इन सन्तोका नाम लिया है वरन् अपने आराध्य-देवके अनेक नामोमे 'बीठुला' का नाम भी लिया है। इस सम्प्रदायकी भक्ति भी अद्वैत भावकी है और इसमे भी योग-साधनाका महत्त्वपूर्ण स्थान है।[२] अवतारवाद और मूर्तिपूजाकी व्यर्थता[३], ब्रह्मकी निरपेक्षता, सर्वव्यापकता और अनिर्वचनीयता[४], जातिगत उच्चताकी निस्सारता[५], साधक और साध्यमे

१ वही, पृष्ठ २२९, रमैनी (अष्टपद)।

२ मराठीके प्रसिद्ध सन्त ज्ञानेश्वर और उनके अग्रज निवृत्तिनाथ नाथ विचारधारासे प्रभावित थे और उन्हे सीधे गोरखनाथकी परम्परामे रखा जा सकता है।

—दक्खिनीका पद्य और गद्य, पृष्ठ, २१ (निवेदन)।

३ देउलके पीछे नामा अलख पुकारे।
जिदर जिदर नामा उदर देउल ही फीरे॥

—नामदेव, दक्खिनी हिन्दीका पद्य और गद्य, पृष्ठ, १८।

× × ×

तीरथ बरथ करे असनान, नहिं नहि हरि नाम समान।

—वही पृष्ठ १६, पद, २।

४ सिवियले गोपालराय अलक निरजन
भक्ति दान दिये जाके सन्तजन॥

—वही, पृष्ठ, २९, पद २०।

× × ×

दह दिसीं राम रह्या भर पूरी, सतत नियरे झाकत दूरी।

—वही, पृष्ठ २८, पद १८।

× × ×

अकथ कथ्यो न जाई कागदी लिख्यो न भाई, सकल भुवन पति मिल्यो सहज भाई।

—वही, पृष्ठ २४, पद, १०।

५ नाना वर्ण गवा उनका एक वर्ण दूध।
तुम कहॉके बह्मन हम कहॉके सूद।

—नामदेव—दक्खिनीका पद्य और गद्य, पृष्ठ, १८।

रागात्मक सम्बन्धकी कल्पना[१] आदि ऐसी अनेक बातें है जो 'वारकरी' सम्प्रदायमे मान्य है और कबीर मे भी पाई जाती है। सन्त ज्ञानेश्वरने भक्तके वास्तविक रूपको स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'जिस प्रकार आकाशसे गिरनेवाली बूँद पृथ्वीके अतिरिक्त अन्यत्र नहीं जा सकती, जिस प्रकार गगा अपने सम्पूर्ण जल-प्रवाहके साथ समुद्रमे ही विलीन होती है, उसी प्रकार सच्चा भक्त अपने सम्पूर्ण प्रेमके साथ साध्यके स्वरूपमे विलीन होकर उससे अभिन्न हो जाता है। जिस प्रकार दुग्धका समुद्र तटसे लेकर अपने सम्पूर्ण विस्तारमे दुग्धके अतिरिक्त और कुछ नही है, उसी प्रकार सच्चा भक्त विश्वके सम्पूर्ण विस्तारमें साध्यका दर्शन करते हुए सभीको अपने प्रेमका आधार बना लेता है।[२] कहना न होगा कि कबीरने भी अपने रामको सर्वत्र और सबमे देखा है और अपनेको पूर्णतः उनके व्यक्तित्वमे मिला देनेकी कामना प्रकट की है। इन सब समानताओंके होते हुए भी कबीर वारकरी सन्तोसे भिन्न है। वारकरी सम्प्रदायके सन्तोने ज्ञानमूलक अद्वैतपरक भक्तिके लिए सगुण उपासनाको भी साधन रूपमे स्वीकार किया है किन्तु कबीर ऐसा नही मानते। वारकरी सम्प्रदाय के भक्तोने आराध्यके गुणगानके लिए कीर्तन-पद्धतिको भी स्वीकार किया है

---

१ कामी पुरखा कामिनी प्यारी। ऐसे नामा प्रीत मुरारी।

× × ×

जैसी प्रीत बालक अर माता। तैसा हर सेती मन राता।

—वही, पृष्ठ ४४।

२ As the rain that droppeth from above knows no other place except the earth to fall upon, or as the Ganges with all the wealth of her waters searches the ocean and meets it over and over again, similarly the true devotee with all the riches of his emotions, and with un abated love enters into My being, and becomes one with me As the ocean of milk is milk allover, whether on the shore or in the middle of the sea, similarly he should see as the supreme object of his love, from the ant onwards through all existences

—*Mysticism in Maharastra*, p 112

जिसे कबीर एक प्रकारका बाह्याचार ही मानते थे। तभी तो उन्होने कहा था—

सनक सनदन जैदेव नामा भगति करी मन उनहु न जाना।[१]

इस पक्तिमे 'नामा' से तात्पर्य वारकरी सत नामदेवसे ही है।

निष्कर्ष

सत्य तो यह है कि कबीरदासने अपने पूर्ववर्ती सभी धार्मिक मतो, साधनाओ एव दार्शनिक पद्धतियोको व्यावहारिक स्तरपर रूढिग्रस्त, आडम्बरपूर्ण एव लक्ष्य-भ्रष्ट मानकर अस्वीकार कर दिया था। उन्होने कहा भी है—

"पडित मुल्ला जो लिखि दीया।
छाडि चले हम कछू न लीया।"[२]

यही नही उन्होने बौद्धोको पाषडी,[३] सिद्धोको सशयमे पडा हुआ[४], योगियोको आडम्बर युक्त एव भ्रमग्रस्त[५], तथा जैनियो एव श्रावकोको भी बाह्याचारके जाल्मे पडा हुआ माना है।[६] कबीरके लिए राम और उनकी भक्तिके अतिरिक्त शेष सब मिथ्या है। इसीलिए वे कहते है—

भाव भगति बिसवास बिन कटै न ससै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल॥

—ग्रथा० पृष्ठ, २४५।

कबीरका सामाजिक दृष्टिकोण

कबीर का सामाजिक दृष्टिकोण ध्वसात्मक अधिक था, सृजनात्मक कम।

---

१ ग्रन्थावली, पृष्ठ, ९९, पद, ३३।

२ ग्रन्थावली, परिशिष्ट, पद २७, पृष्ठ २७२।

३ "जैन बोध अरु साकत सैना चारबाक चतुरग बिहूँना", ग्रन्थावली, पृष्ठ, २४०।

४ 'षट दरसन ससै पड्या, अरु चौरासी सिद्ध', ग्रन्थावली, पृष्ठ ५४, साखी, ११।

५ डडा मुद्रा खिंथा आधारी। भ्रम कै भाई भवै भेषधारी।
आसन पवन दूरि करि बवरे। छोडि कपट नित हरि भज बवरे।
—ग्रन्थावली, परिशिष्ट, पृ० २९५।

६ जेन जीवकी सुधि न जानैं। पाती तोरि देहुरे आनै।
ताकी हत्या होई अद्भूता। षट दरसन मैं जैन बिगूता।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ, २४०।

जब निर्धनके यहाँ आता है तो वह आदर करता है। कौन समझावे कि धनी और निर्धन तो भाई-भाई है। यह तो प्रभुकी कला है जो भिन्न परिस्थितियोमे पड गए है। वास्तविक निर्धन तो वह है जिसके हृदयमे भगवान् का नाम न हो[१]। ऐसे भेद-भाव-पूर्ण समाजको अस्वीकार कर देना ही कबीरने उचित समझा। इस ध्वसात्मक प्रवृत्तिके बावजूद उनके मनमे कुछ निश्चित मूल्य थे जिनपर उनका अखड विश्वास था। वे मूल्य थे—आस्तिकता (निरपेक्ष किन्तु भावात्मक तत्त्व रामके अस्तित्वमे विश्वास) प्रेम, अहिसा और समता, मनोनिग्रह, कर्त्तव्य और विचारकी एकता, जीवनकी सहजता या आडम्बरहीनता, सत्यता, सत्सगति, सारग्राहिता और विनय। कबीरकी यही पूँजी थी। इसीके बलपर वे ससारको चुनौती देनेमे समर्थ हो सके थे। कहना न होगा कि ये शुद्ध मानवीय तत्त्व है। इनका समन्वित उत्कर्ष उस महामानव, दिव्य-मानव या आदर्श-मानवकी सृष्टि करता है जिसे कबीरने 'आतमराम' और चण्डीदासने 'मनेर मानुष' कहा है। कवीन्द्र रवीन्द्रने इन्ही मूल्योको 'मानव-धर्म' की सज्ञा दी है। इस उद्भावनाके लिए वे मध्ययुगीन सत कवियोके ऋणी है। इन्ही की ओर सकेत करते हुए वे कहते है—भारतवर्षमे ऐसे मनुष्य हुए है जिन्होने मानव धर्म के विषयमे अध्ययन-पूर्ण ग्रन्थ नही रचे है किन्तु जिनमे इसकी उपलब्धिके लिए अदम्य इच्छा रही है और जिन्होने इसके लिए सतत अभ्यास किया है। उनकी जिन्दगी प्रमाणित करती है कि उन्होने उस व्यक्तित्व से जो सब व्यक्तियोमे है और उस निराकार मानवत्वसे जो सभी मानव-आकृतियोमे है नैकट्य प्राप्त किया था।[२] ध्वसात्मक

१ निर्धन आदर कोई न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई।
जौ निर्धन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई।
जौ सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई।
निर्धन सरधन दोनो भाई। प्रभुकी कला न मेटी जाई।
कहि कबीर निर्धन है सोई। जाकै हिरदे नाम न होई।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ ३०२ (परिशिष्ट)

२ "There have been men in India who never wrote learned texts about the religion of Man but had an overpowering desire and practical training for its attainment They bore in their life the testimony of their intimacy with the Person

होते हुए कबीरकी दृष्टि उस मानव-सत्य को पहचाननेमे हमारी सहायता आज भी कर सकती है जिसके आधारपर समस्त भेदोसे ऊपर उठकर व्यावहारिक स्तरपर सहज मानवीय धर्मकी प्रतिष्ठा की जा सकती है ।

कबीरकी दृष्टिमे जीव, संसार और माया

कबीरने जीवके दो रूपोकी ओर सकेत किया है । एक रूपमे तो वह रामका अश है । इसलिए चेतन शुद्ध और अमर है । न इसे मनुष्य कह सकते है न देवता । न तो वह जोगी है न जती न अवधूत । न तो इसकी कोई माता है और न यह किसीका पुत्र है । इसे किसी भी सासारिक नामसे अभिहित नही कर सकते ।[1] जीवका यह नित्य रूप सामान्यतः लक्षित नहीं होता । जीवका दूसरा रूप मायाबद्ध या ससारी है । ससारके सभी जीवोने काल, कर्म और मायाके प्रभावमे पडकर आत्मस्वरूपको विस्मृत कर दिया है । वे अलक्ष्यको न ढूँढकर अन्य ससारी जीवोमे अनुरक्त है ।[2] इसलिए उनकी ज्वाला शमित नहीं हो पाती । ऐसे जीवको कबीर सुप्त मानते है और उसको उद्बुद्ध करते हुए कहते है—

जागि रे जीव जागि रे ।
चोरन को डर बहुत कहत है, उठि उठि पहरै लागि रे ।[3]

---

who is in all persons, of Man the formless in the individual forms of men"
—*The Religion of Man* by Rabindranath Tagore, p 112

१ ना इहु मानसु ना इहु देव । ना इहु जती कहावै सेउ ।
ना इहु जोगी ना अवधूता । ना इसु माई न काहू पूता ।
× × ×
कहु कबीर इहु रामकी असु । जस कागदपर मिटै न मसु ।
—सन कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ १६५ ।

२ जीव बिलब्या जीव सौ अलष न लषिया जाइ ।
गोविन्द मिलै न झल बुझै, रही बुझाइ बुझाइ ॥
—ग्रन्थावली, [illegible] ३५, साखी, १ ।

३ ग्रन्थावली, पृष्ठ २०६, पद, ३५० ।

मुन जीव ही कबीरकी दृष्टिमे 'हदके जीव' या भ्रमित जीव हैं।[१] जो 'हदके जीव' (ससीम जगतमे अनुरक्त ससारी जीव) हे कबीर उनसे मुख भर बोल्ना भी नही चाहते किन्तु जो 'बेहद' (असीम ब्रह्म) मे अनुरक्त है उनके समक्ष अपना अन्तर्मन खोल्नेमे भी नही हिचकते।[२] कबीरके ये विचार अद्वैत-सिद्धान्तके अनुकूल है किन्तु इसका यह तात्पर्य नही कि कबीरने अद्वैत-दर्शनका सागोपाग अध्ययन किया था। इस प्रकारकी धारणाएँ सामान्य भक्तोके मन मे भी सस्कारत. बनी रहती है।

कबीरने ससारको तात्त्विक दृष्टिसे निस्सार माना है। इसकी उपमा उन्होने सेमरके फूल[३] और धूँआके धौरहरसे[४] दी है। कभी कुहराका धुन्ध[५] और कभी कागदकी पुडिया[६] कहा है। ससारको लेकर उनके मनमे कई चित्र थे। कर्मबन्धन इसी ससारमे जीवको उलझाये रखते है। जब वे इस दृष्टिसे सोचते है तो उनको यह ससार एक हाट जैसा लगता है।[७] जिसमे हर व्यक्ति वाणिज्यमे रत है। इसी ससारमे अनेक प्रकारकी वासनाएँ है जो मनको बलात् अपनी ओर आकर्षित

---

१ भरम न भागा जीवका अनन्तहि धरिया भेप।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ ४७, साखी १९।

२ कबीर हदके जीव सूँ हित करि मुखा न बोलि।
जे लागे बेहद सूँ तिन सूँ अन्तर खोलि।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ २६, पद ५०।

३ यहु ऐसा ससार है, जैसा सेंबल फूल।
दिन दसके व्यौहार को, झूठे रगि न भूलि॥

—ग्रन्थावली, पृष्ठ २१, साखी १३।

४ कबीर हरिकी भगति बिन, ध्रिग जीमणससार।
धूवाँ केरा धौलहर, जात न लागे बार॥

—ग्रन्थावली, पृष्ठ २३, साखी २७।

५ राम बिना ससार धुध कुहेरा।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ १९७, पद, ३१७।

६. बिनसि जाय कागदकी पुडिया।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ १७५, पद ९१।

७ यहु ससार हाट करि जानूँ सबको बणिजण आया।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ, १६८, पद २३५।

कर लेती है। वासनाओंके विषसे ग्रस्त मानव आत्मोद्धार नहीं कर पाता ऐसी स्थितिमें कबीरको यह संसार विषधर नागके समान प्रतीत होता है।[1] जब कभी वे यह सोचते हैं कि मुक्त आत्माको अन्तत साध्यके अमरलोकमें जाकर नित्य आनन्दमें मग्न होना है तब उन्हें यह संसार 'नैहर' जैसा लगता है, जहाँ यह जीवात्मा कुछ दिनोंके लिए आ गया है।[2] कबीरके एक पदमें ये सभी चित्र आ गए हैं—

> भयौ रे मन पाहुनडे दिन चारि।
> आजिक कालिहक माँहि चलैगा, ले किन हाथ सँवारि।
> सौंज पराई जिनि अपणावै ऐसी सुणि किन लेह।
> यहु संसार इसौ रे प्राणी जैसो धूवरि मेह।
> तन धन जोबन अंजुरी कौ पानी, जात न लागै वार।
> सैबल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यौ कहा गँवार।
> खोटी खाटै खरा न लीया कछू न जानी साटि।
> कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि।[3]

कबीरकी दृष्टिमें संसारके समस्त बन्धन 'माया' है। आदर, मान, विषय-रस, प्राण-मोह, जप, तप, जोग, माता, पिता, स्त्री, सुत सभी मायाके ही रूप हैं। ऐसी मायाको त्यागना आसान नहीं है। बार-बार त्यागनेका प्रयत्न करनेपर भी यह लिपटती ही जाती है। यह माया जल-थल-आकाश सबमें व्याप्त है। जहाँ इस मायाका बन्धन नहीं है, वहीं ब्रह्म-ज्ञान है।[4] यह माया खाँडसे भी मीठी है।

---

१ संसार भवगम डसिले काया, अरु दुख दारुन व्यापे तेरी माया।
—पृष्ठ ११४, पद ८३।

२ दिन दस नैहर खेलि ले, सासुर निज भरना।
× × ×
दास कबीरा यों कहे, जग नाहिन रहना।
संगी हमरे चलि गए, हमहूँको चलना।
—'कबीर बाणी', डॉ० द्विवेदी, पृष्ठ ३१६, पद, १४५।

३ कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ १९८, पद, ३१३।

४ माया तजू तजी नहीं जाय, फिरि फिरि माया मोहि लपटाइ।
माया आदर माया मान, माया नहीं तहा ब्रह्म गियान।

ससारमे जो कुछ सग्रह किया जाता है वह सब माया है।[1] रामकी यह माया प्रबल है। ससारके सभी प्राणी इसके शिकार हो चुके है। 'मुनियर', 'पीर', 'डिगबर', 'जोगी', 'जगम', 'बाम्हण', 'स्वामी', 'मिसर', सभीको यह पछाड चुकी है। शाक्तोको तो यह बनाती-बिगाडती है। हरि-भक्तोसे इसका बस नही चलता।[2] अज्ञानी पुरुषोको भुलावेमे डालकर खा जाती है।[3] धन, धन्धा, व्यवहार सभी माया और मिथ्या है।[4] माया मद-मत्त और अन्धी कर देनेवाली है। जो इसके बन्धनमे पड जाता है वह 'दुविधा'मे पडकर अनेक प्रकारके वेश धारण करता है किन्तु उस निरपेक्ष पुरुषको नही देख पाता।[5] यह माया त्रिगुणात्मिका है। सत, रज, तम इन तीन गुणोसे युक्त माया निरपेक्ष सत्ताको आवृत रखती है।[6] तत्त्वत॰ यह माया झूठी है। सारा ससार इसके बन्धनमे पडा हुआ है। राममे रमता हुआ कबीर आनन्द मग्न है।[7]

माया रस माया कर जान, माया कारनि तजै परान।
माया जप तप माया जोग, माया बाँधे सत ही लोग।
माया जल थलि माया आकासि, माया व्यापि रही चहूँ पासि।
माया मात माया पिता, अति माया अस्तरी सुता।
माया मारि करै व्यौहार, कहै कबीर मेरे राम अधार।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ ११५, पद, ८४।

१ ग्रन्थावली, पृष्ठ १२०, पद १००, १०१।

२ ग्रथावली, पृष्ठ १५१, पद १८७।

३ ,, पृष्ठ १६६, पद २४२।

४ ग्रन्थावली, पद २९६, पृष्ठ १८८।

५ 'माया कै यदि चेत न देख्या, दुविध्या माहि एक नही पेख्या।
भेष अनेक किया वहु कीन्हाँ, अकल पुरिम एक नही चीन्हा।'

—ग्रन्थावली, पृष्ठ २११, पद, ३६९।

६ सत रज तम थैं कीन्ही माया।
आपण माझै आप छिपाया।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ २२५, सतपदी रमैणी।

× × ×

राजस तामस सातिग तीन्यू, ये सब तेरी माया,

—ग्रन्थावली, पृष्ठ १५०, पद, १८४।

७ 'झूठी माया सब जग बाँध्या, मैं राम रमत सुख पाया'

—ग्रन्थावली, पृष्ठ ३२७, पद, २०६ (परिशिष्ट)।

कबीरके उपर्युक्त जीव, ससार और माया सम्बन्धी विचार वैराग्यमूलक प्रवृत्तिकी उपज है। मध्ययुगका जीवन आर्थिक-राजनीतिक दृष्टिसे घोर अस्थिरता-का जीवन था। आज, जो राज-सत्ताके मदमे मत्त है कल वही भिखारीका जीवन व्यतीत करनेको विवश हो सकता था। कोई भी हौसलेवाला व्यक्ति शक्ति सचय करके छोटे-मोटे राज्यकी स्थापना कर सकता था। राज-परिवारके अन्तर्गत सत्ताधारी राजाके विरुद्ध अनेक प्रकारके जाल भीतर ही भीतर बुने और काटे जाते थे। सामान्य जनता तो घास फूसकी तरह धरतीसे चिपकी हुई कभी लहलहा उठती थी, कभी रौद दी जाती थी और कभी समूल उखाड कर फेक दी जाती थी। एक-दूसरेके प्रति भेद-भावकी भावना सीमा पार कर चुकी थी। ऐसे ससारको मिथ्या माननेमे ही कल्याण था। यही कारण है कि मध्ययुगके सभी भक्त कवियोने—चाहे निर्गुण हो चाहे सगुण—माया, जीव और ससारके प्रति एक ही प्रकारके विचार व्यक्त किये है। सभीके लिए ससार मिथ्या है, माया प्रबल है और जीव भ्रमित, जड और सुप्त है। एक भगवान् सत्य है। उसके प्रति अनन्य अनुराग रखनेसे ही कल्याण हो सकता है। कबीरके विचार, इस क्षेत्रमे, अन्य भक्त-कवियो के अनुकूल है।

कबीरकी भक्ति-भावना

कबीरकी भक्ति-भावना अपने मे एक पूर्ण जीवन-दर्शन है। कबीर मानवता-के सहज धरातलपर अभेद-दृष्टिकी स्थापना करना चाहते थे, इसीलिए उन्होने विविध धार्मिक साम्प्रदायिक एव जातिगत इकाइयोमे बिखरे हुए मानव-समुदाय-की तात्त्विक एकता का प्रतिपादन किया। सामाजिक स्तरपर उनकी भक्ति समस्त बाह्याडम्बरो एव भेद प्रभेदो की अवहेलना करके 'मै-तै' और 'तैं-मै' की भ्रम-जनित द्वैतताको अस्वीकार करती हुई सकल घटमे उस एक 'अकल' (निराकार) की स्थिति मानकर जीव-मात्रकी समताकी प्रतिष्ठा करती है। वैयक्तिक स्तरपर वह भक्तको आत्म-समर्पणकी उस स्थितितक पहुँचा देना चाहती है जहाँ वह आराध्यके तात्त्विक स्वरूपको पूर्णतः पहचानकर गुरुकी कृपा, आत्मविश्वास, सत्सगतिके प्रभाव और नैष्ठिक जीवन एव सात्विक आचार-शीलताके बलपर उससे एकरस प्रेम करते हुए अपने व्यक्तित्वको सदा-सदाके

लिए उसमें न्य कर देना चाहता है। भक्तिकी यह साधना सर्व-सुलभ नहीं है। इसका द्वार सूक्ष्म है इसमें मदमत्त मनवाले लोग प्रविष्ट नहीं हो सकते[१]। कामी और इन्द्रिय-स्वाद-लोलुप व्यक्ति इसे नहीं प्राप्त कर सकते[२]। भक्तिके इस पथपर कायर लोग अग्रसर नहीं हो सकते। प्राणोंको उत्सर्ग करनेके लिए तत्पर व्यक्ति ही हरि नामकी ज्योति जगा सकता है।[३] भक्तिमें कपटका व्यवहार नहीं चल सकता। जिनके हृदयमें 'बिलाव-वृत्ति' और नेत्रोंमें 'बक-ध्यान' है, वे भक्ति-साधनाके लिए उपयुक्त नहीं है।[४] भक्तिके अभावमें जीव भवसागरमें डूबता है।[५] जहाँ भक्ति है वहाँ रामका निवास है।[६] भक्तिके अभावमें आप कुछ भी करते रहें, सब व्यर्थ है। आपकी इच्छा हो आप मथुरा, द्वारिका या जगन्नाथ पुरी कहीं भी हो आवें किन्तु याद रखिये बिना हरि-भक्तिके हाथ कुछ भी आने-

---

१ भगति दुवारा सकड़ा राई दसवें भाइ।
मन तौ मगल ह्वै रह्यौ क्यूँ करि सकै समाइ॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ३०, साखी २६।

× × ×

२ भगति बिगाडी कामिया इन्द्री केरे स्वादि।
—ग्रन्थावली, पृ० ४०, साखी १०।

× × ×

३ भगति दुहेली रामकी नहि कायरका काम।
सीस उतारे हाथि करि, सो लेसी हरि नाम॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ७०, साखी २४।

× × ×

४ हिरदा कौ बिलाव नैन बग ध्यानी,
ऐसी भगति न होइ रे प्रानी।
कपटकी भगति करे जिन कोई,
अतकी बेर बहुत दुख होई।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १६७, पद २३३।

५ 'भगति बिन भौजालि डूबत हैरे'
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १९३, पद ३१०।

× × ×

६ 'जहाँ जहाँ भगति कबीरकी तहाँ तहाँ राम निवास'
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ५३, साखी ११।

का नहीं।[१] हरिको किसी भी भावसे भजा जा सकता है। आवश्यकता मनके निश्छल होनेकी है। इसीलिए कबीर अपने आराध्यको कभी 'बाप',[२] कभी 'जननी',[३] कभी 'स्वामी',[४] कभी 'पिउ',[५] कभी 'दोस्त',[६] कभी 'पति'[७] और कभी 'पाहुन'[८] नामसे सबोधित करते है। भक्ति निष्काम भावसे की जानी चाहिए।

---

१ मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
साधु सगति हरि भगति बिन, कछू न आवै हाथ॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ४९, साखी ३।

२ 'कहै कबीर बाप राम राया, अबहूँ सरनि तुम्हारी आया'
—ग्रन्थावली, पृष्ठ २०७, पद ३५७।

× × ×

३ 'हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न ओगुण बकसहु मेरा'
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १२३, पद १११।

+ × ×

४ स्वामी सेवक एक मत मनही मे मिलि जाइ।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन कै भाइ॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ६८, साखी ४।

× × ×

५ मन प्रतीति न प्रेम रस, ना इस तन मे ढग।
क्या जाणो उस पीव सू कैसी रहसी रग॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ २०, साखी १६।

६. पाणी ही तै पातला, धूवा ही तै झीण।
पवना बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ २९, साखी १२।

× × ×

७. कबीर जगकी को कहै, भौ जलि बूडे दास।
पार ब्रह्म पति छाडि करि, करै मानिकी आस॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ३४, साखी १६।

× × ×

८ रामदेव मोरे पाहुने आये, मे जोबन मैमाती।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ ८७, पद १।

किसी प्रकारकी कामनासे की जानेवाली सेवा व्यर्थ है।[१] आराध्यके प्रति अनन्यता अनिवार्य है।[२] अनन्यताके लिए दृढता आवश्यक है। इसीलिए भक्त-साधकमे 'सती' और 'शूर' की दृढता अपेक्षित है। इसी स्थितिको व्यक्त करते हुए कबीर कहते हैं—

अब हरि हूँ अपनौ करि लीनौ।
प्रेम भगति मेरौ मन भीनौ॥
जरै सरीर अग नहीं मोरौ, प्रान जाइ तौ नेह न तोरौ॥[३]

यही एकरस, अविचल, अनन्य और दृढ प्रेम कबीरकी भक्तिका केन्द्र-बिन्दु है। इस प्रेमको समझनेके लिए 'मीनकी तडपन[४] कामी की आसक्ति[५] और सेवकके समर्पण[६]की निष्ठाका अनुभव होना चाहिए। इस विश्वासाधारित 'भाव भगति'के प्राप्त हो जानेपर सभी प्रकारके सशय-शूल कट जाते है और वास्तविक

१ जब लगि भगति सकामता तब लग निर्फल सेव।
कहै कबीर वै क्यूँ मिलै, निहकामी निज देव॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १९, सा० १०।

× × ×

२ जे हॉसि बोलौं और सौ, ता नील रॅगाऊँ देत।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १९, सा० १।

× × ×

३ कबीर ग्रन्थावली, पृष्ठ २०१, पद ३३४।

× × ×

४ दास कबीर मीन ज्यूँ तलपै मिलै भलै सचुपावै।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १८५, पद २८४।

× × ×

५ ज्यूँ कामी कौं काम पियारा, ज्यूँ प्यासे कू नीर रे।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, विन देखे जीव जाइ रे॥
—ग्रन्थावली, पृष्ठ १९२, पद ३०७।

× × ×

६ जौ मैं बौरा तौ राम तोरा, लोग मरमका जानैं मोरा।
—ग्रन्थावली, पृष्ठ, २०४, पद ३४३।

मुक्ति प्राप्त हो जाती है।[1] कबीरकी भक्तिमे 'नारद-भक्ति-सूत्र' मे निरूपित ग्यारह प्रकारकी आसक्तियॉ ढूँढ लेना या नवधा भक्तिके सभी प्रकारोकी भावमूलक व्याख्या प्रस्तुत कर देना, एक प्रकारसे उसके वैयक्तिक रूपकी व्याख्या करना है। किन्तु ध्यान रखना होगा कि कबीरकी भक्तिका एक सामाजिक रूप भी है। कबीरने मानव मात्रकी एकताका प्रतिपादन एक भक्तके रूपमे ही किया था। उन्होने न केवल स्वय राम नामका मर्म समझा था वरन् औरोको समझाया भी था। उनका मन तब सन्तुष्ट हुआ था जब उन्होने सबमे एक राम-तत्त्वको व्याप्त देखा था।[2] जो भेदवादी है, जो ऊँच-नीच, जाति पॉति, ज्ञानी-मूर्ख, हिन्दू-मुसलमान, आत्म-पर, राम रहीम और केशव-करीममे पार्थक्य अनुभव करते हैं उन्हीसे भक्त कबीरने पूछा था—

'अरे भाई दोइ कहॉ सो मोहि बतावौ,
बिचिही भरम का भेद लगावौ।'

× ×

कहै कबीर चेतहु रे भोंदू, बोलनहारा तुरुक न हिन्दू।'[3]

आर अपनी बात यों प्रस्तुत की थी—

"हम तौ एक एक करि जॉनॉ।
दोइ कहै तिनहीं कौ दोजग, जिन नॉहिन पहिचॉनॉ।
एकै पवन एक ही पॉनी एक जोति ससारा।
एक ही खाक घडे सब भॉडे, एक ही सिरजनहारा।"[4]

---

१ भावभगति बिसवास बिन, कटै न ससै सूल।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मूकति नहीं रे मूल॥

—ग्रन्थावली, पृष्ठ २४५।

× × ×

२ एक राम देख्या सबहिन मैं, कहै कबीर मन माना।

—ग्रन्थावली, पृष्ठ १०५, पद ५२।

३ ग्रन्थावली, पृष्ठ १०६, पद ५६।

४ ग्रन्थावली, पृष्ठ १०५, पद ५५।

भक्त कबीरकी अद्वैतता, एकता, अभेदात्मकता और समतत्त्ववादिता अन्तर्मुखी ही नहीं बहिर्मुखी भी है और अपने बहिर्मुख रूपमें ही वह विशिष्ट और श्लाघ्य है।

कबीर का कविरूप

जिस महिमामय व्यक्तित्वके लिए कवि एक अदना जीव था[1] उसे ही कवि-रूपमें प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा अपने आपमें उपहासास्पद है। यह सत्य है कि जनतामें कबीर एक भक्तके रूपमें प्रसिद्ध रहे हैं। इतिहासकारों[2]—वील, हंटर, ब्रिग्स, मेकालिफ, वेसकट, स्मिथ, भंडारकर, ईश्वरीप्रसाद आदि—ने उन्हें एक समाज-सुधारकके रूपमें ही महत्त्व दिया है और भारतीय अभिजात वर्ग उन्हें श्रुति-विरोधी पथ-प्रवर्तक दम्भी व्यक्तिके रूपमें पहचानता आया है। कबीरको कविरूपमें अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त करानेका श्रेय स्वर्गीय रवींद्र नाथ ठाकुरको है। उन्होंने क्षितिमोहन सेन द्वारा 'कबीर' नामसे संगृहीत (सन् १९१० ई०) रचनाओंमेंसे १०० का अंग्रेजी अनुवाद 'वन हड्रड पोयम्स ऑफ कबीर' नामसे प्रस्तुत करके आधुनिक कवियों, आलोचकों और विचारकोंके सम्मुख एक नये सत्यकी प्रतिष्ठा की। कवीन्द्र रवींद्रके मनमें काव्यका जो मूल्य प्रतिष्ठित था वह औपनिषदिक चिन्तन, वैज्ञानिक अन्वेषण तथा वैष्णव-भक्तों एवं बाउल संतोंकी परमविरहाकुलताके सम्मिलित प्रभावका परिणाम था। उन्होंने मध्य-युगीन मानवधर्मको आधुनिक विज्ञानके प्रकाशमें देख-परखकर स्वीकार किया था। उनके लिए काव्य सत्य और मानव-सत्य दो भिन्न तत्त्व नहीं थे। इसीलिए कबीरके पदोंमें उन्हें उदार मानवीय दृष्टिकोणके दर्शन हुए। उनके लिए कबीर संस्कार हीन, अपढ़, दम्भी, कोरी या जुलाहा नहीं था वरन् एक स्वतंत्र द्रष्टा था जिसने मनुष्यको सभी प्रकारके बंधनोंसे मुक्त करके उसके सहज रूपमें प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा की थी। हिन्दीके आलोचकों और इतिहास लेखकोंके लिए कबीर एक पहेली रहे हैं। उनके महत्त्वका अस्वीकारकर देना संभव नहीं था।

१ 'कवित पढे पढि कवि ता मूरे कपड केदारै जाई'

—ग्रन्थावली, परिशिष्ट, पृष्ठ, २१४।

२ इनके उल्लेखोंकी एकत्र सूचीके लिए देखिये, संत कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ, ४५, ४६।

उन्हे कविरूपमे स्वीकार करनेमे प्राचीन सस्कारोको ठेस लगती थी। फिर भी, मिश्रबधु[1], बाबू श्यामसुन्दर दास, डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल, डॉ० रामकुमार वर्मा, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी श्री पुरुषोत्तमलाल श्रीवास्तव और पडित परशुराम चतुर्वेदीने उदारतापूर्वक कबीरके कवि रूपको भी स्वीकार किया है। आचार्य रामचन्द्र शुक्लने उनकी प्रतिभा और व्यग्य-शक्तिको स्वीकार करते हुए भी उन्हे कवि नही माना। आचार्य शुक्लकी परम्परा आज भी जीवित है। इसीलिए आज भी यह प्रश्न विवाद ग्रस्त हो है। कबीरको 'कवि' रूपमे प्रतिष्ठित करनेके लिए जो तर्क दिये गये है उनमे प्रर्याप्त बल है। कबीर इसलिए कवि है कि उन्होने सत्यको अभिव्यक्ति दी है।[2] उनमे अनुभूतिकी सच्चाई और भावनागत सौदर्य है।[3] उनकी वाणीमे सन्देशकी महानता है।[4] उनके व्यक्तित्वमे आकर्षण है और उनकी उक्तियोमे प्रखर व्यग्य है।[5] प्राचीन भारतीय काव्य-शास्त्रकी कसौटीपर भी कबीरकी वाणीको परखा जा सकता है। काव्य-शास्त्रके अन्तर्गत सर्व स्वीकृत कसौटी रस-सिद्धान्त की है। रस-सिद्धान्तकी पूर्णता और महत्ता साधारणीकरणकी मान्यता पर आवृत है। देखना यह है कि कबीरकी उक्तियोके साथ पाठक-वर्गका मानसिक तादात्म्य होता है या नहीं? कबीरकी समस्त वाणीको तीन कोटियो मे रखा जा सकता है। (क) अभिजात वर्गीय मान्यताओके प्रति विद्रोह-पूर्ण व्यग्य-कथन (ख) नीति-परक उपदेश (ग) प्रणयानुभूतिकी अभिव्यक्ति। प्रथम कोटिमे आनेवाली उक्तियोके साथ पाठक मात्रका तादात्म्य नही हो सकता। उसमे केवल निम्नवर्गीय उपेक्षित जनता रस ले सकता है। जब बीसवी शतीमे प्रेमचन्दकी मान्यताओको दृष्टिमे रखकर उन्हे

---

१ मिश्रबन्धुओने 'हिन्दी नवरत्न' (स० १९८२) के दूसरे सस्करणमे कबीरको हिन्दीके श्रेष्ठ कवियोमे सातवाँ स्थान प्रदान किया है।

२ देखिये, कबीर ग्रन्थावलीकी भूमिका, पृष्ठ, ६३।

३ देखिये, हिन्दी काव्यमे निर्गुण सम्प्रदाय, पृष्ठ ३४१।

४ हिन्दी साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ २६७, १९५४ ई०।

५ "इसी व्यक्तित्वके आकर्षणको सहृदय समालोचक सँभाल नही पाता और रीझकर कबीरको 'कवि' कहनेमे सन्तोष पाता है। ऐसे आकर्षक वक्ताको 'कवि' न कहा जाय तो और क्या कहा जाय?"

—कबीर, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ २१७।

नास्तिक और ब्राह्मण-विरोधी कहा जा सकता है तो कबीरकी खरी बातोका समर्थन पाठक मात्र कैसे कर सकता है? आज भी कुछ ऐसे सहृदय है जिनका हृदय स्वार्थके सकुचित मडलसे ऊपर उठकर मानव-मात्रकी सामान्य भावभूमि-पर केवल केशव की कविता पढते समय ही पहुँचता है। जब सूर और तुलसी उन्हे द्रवीभूत नही कर पाते तो कबीरकी क्या बिसात है? नीति-परक उपदेशोको तो रसवादी आलोचक कभी काव्य मान ही नही सकते। शोधका विद्यार्थी कोई अन्य विषय न मिलनेपर नीति-कथनोको काव्य मानकर प्रबन्ध प्रस्तुत कर दे, यह दूसरी बात है। अब रह जाती है बात प्रणयानुभूतियोकी अभिव्यक्ति की। इसमे सन्देह नही कि कबीरके प्रणय-चित्र मार्मिक है, विशेषत. उनकी विरहानु भूतियोके चित्र किसी भी प्रेमाख्यानक कविके विरह-वर्णनक उत्कृष्ट छन्दोके साथ रखे जा सकते है। कुछ दोहे नीचे उद्धृत किये जाते है—

अषडियाँ झाई पडी पथ निहारि निहारि।
जीभडियाँ छाला पड्या राम पुकारि पुकारि॥[१]
नैना नीझर लाइया, रहट बहै निस जाम।
पपीहा ज्यूँ पिव पिव करौ, कबारु मिलहुगे राम॥[२]
अषडियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जाणै दुखडियाँ।
साई अपणै कारणैं रोइ रोइ रतडियाँ॥[३]
जौ रोऊँ तौ बल घटै, हँसौ तौ राम रिसाइ।
मनही माँहि विसूरणा, ज्यूँ घुण काठहिं खाइ॥[४]
कबीर सुपिनै हरि मिल्या सूता लिया जगाइ।
आषि न मीचौ डरपता, मति सुपिना ह्वै जाइ॥[५]

इस प्रकारकी अन्य साखियाँ भी उद्धृत की जा सकती हैं। इनकी मार्मि-कता और रमणीयतामे सन्देह नही किया जा सकता। 'ढोला मारु रा दोहा'मे

---

१ ग्रन्थावली, पृष्ठ ९, साखी २२।
२ ग्रन्थावली, पृष्ठ ९, साखी २४।
३ वही, पृष्ठ ९, साखी २५।
४ वही, पृष्ठ ९, साखी २८।
५ ग्रन्थावली, पृष्ठ ७९, साखी ६।

ऐसे कई दोहे है जो प्राय' ज्योके त्यो कबीरकी साखियोमे भी विद्यमान है।[1] यह स्थिति जैसे भी उत्पन्न हुई हो, यह प्रकट है कि ये दोहे पर्याप्त लोकप्रिय रहे होगे। कबीरकी इन मार्मिक उक्तियोमे व्यक्त अनुभूतिके साथ भी पाठक मात्रका मानसिक तादात्म्य नही हो पाता। कारण स्पष्ट है। कबीरके मिलन-विरह सम्बन्धी उद्गार अव्यक्त, अगोचर, रहस्यमयी सत्ताके प्रति है। जिस विशिष्ट मन स्थितिमे ये उद्गार व्यक्त किये गये है वह एक रहस्यवादी साधककी मनःस्थिति है। हर व्यक्ति अपनेको प्रियतमा मानकर अव्यक्त चेतन सत्ताके प्रति विरहोद्गार व्यक्त नही कर सकता। सूफी कवियोके प्रणयोद्गारोके साथ पाठक वर्गका तादात्म्य सरलतासे हो जाता है क्योकि उनके भाव-चित्र किसी भौतिक नायक-नायिककाकी कल्पित प्रणयगाथाके माध्यमसे ही व्यक्त हाते है। यो भी सूफियोके निकट भौतिक सौन्दर्य सर्वथा असत्य नही है क्योकि उसीके द्वारा अलौकिक और दिव्य सौन्दर्य-सत्ताकी भावनाकी जा सकती है। वे व्यक्त प्रकृतिमे भी अव्यक्त सौन्दर्यका सकेत ग्रहण कर लेते है। कबीरके सम्बन्धमे ऐसी बात नही कही जा सकती। वे बार-बार स्पष्ट करते रहे है कि उनका आराध्य अव्यक्त, अगोचर, अरूप, सगुण-निर्गुणसे परे, निराकार, निरजन, अलक्ष्य ओर अकुल है। प्रकट है कि उनके प्रणयोद्गार ऐसी ही सत्ताके प्रति है। उनकी अनुभूतिमे सच्चाई है किन्तु वह सामान्य-जन-सुलभ-मन स्थितिकी उपज नही है। सत्य तो यह है कि साधारणीकरणका सिद्धान्त मूलतः नाटकोको दृष्टिमे रखकर किये गये रस विवेचनके अन्तर्गत निर्धारित किया गया था। नाटकोमे मचपर नायक नायिकाको प्रत्यक्ष आचरण करते देखकर दर्शककी वासना सरलतासे जाग्रत हो जाती है और वह स्वयं भो उन्ही भावनाओका अनुभव करता हुआ रस-मग्न हो जाता है। नाटकोसे चलकर यह सिद्धान्त प्रबन्ध और मुक्तक काव्योके क्षेत्रमे आया। प्रबन्धकाव्योमे नाटक-रचनाके अधिकाश नियमोका पालन किया जाता रहा है। अत. यहॉतक तो साधारणीकरणके सिद्धान्तकी सार्थकता स्वीकार की जा सकती है। कथाधाराके साथ प्रवाहित होता हुआ सहृदय पाठकका चित्त सरलतासे द्रवीभूत हो जाता है, और वह

१ इनमेंसे पाँच दोहोका तुलनात्मक उदाहरण डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीने 'हिन्दी साहित्यके आदिकाल' (पृष्ठ, ११३-१४) मे उद्धृत किया है।

काव्यगत नायक-नायिकाके शीलसे प्रभावित होकर उनकी उक्तियोसे तादात्म्य स्थापित कर लेता है। मुक्तक-काव्योमे वह भाव-चित्रके साथ कल्पित अवतरणकी योजना करता हुआ आनन्द-मग्न होता रहता है। जहाँ कही वह उचित अवतरण-कल्पना नही कर पाता उसे पूर्ण आनन्दकी अनुभूति नहीं होती और ऐसी स्थितिमे साधारणीकरणका प्रश्न विवाद-ग्रस्त हो सकता है। कबीरकी स्फुट उक्तियोमे बात एक कदम और आगे बढ जाती है। यहाँ आश्रय एक आध्यात्मिक सत्वको स्वीकार करके (लौकिक दृष्टिसे पुरुष होता हुआ भी) स्वय नायिका रूपमे उपस्थित है और उसका आलम्बन अव्यक्त, अगोचर, रहस्यमयी सत्ता है जिसे प्रत्येक पाठक भावका विषय नही बना सकता। अत. कबीरकी अनुभूतिके साथ साधारणीकरणकी बात सन्देहसे परे नहीं मानी जा सकती। साधारणीकरण न होनेपर भी हम इन उक्तियोको काव्य इसलिए कहना चाहेगे कि इनमे पर्याप्त रमणीयता है और 'रमणीयार्थ प्रतिपादक शब्द' भी काव्य माना गया है। काव्यको जीवनकी अभिव्यक्ति, जीवनकी व्याख्या और जीवनकी आलोचना भी माना गया है। कबीरकी वाणीमे तत्कालीन जन-जीवनकी सच्ची आलोचना मुखर हुई है। उन्होंने मानवताके सहजरूपको दृष्टिमे रखकर जीवनके कृत्रिम रूपोको मूल्यहीन और निरर्थक घोषित किया है। ऐसी स्थितिमे उनकी उक्तियोको काव्य मान लेनेमे किसी प्रकारका अनौचित्य नहीं प्रतीत होता। हाँ, यह निश्चित है कि वे मात्रा गिनकर कविता लिखनेवाले कवि नही थे और न उन्होने कविताके लिए कविता लिखी है। उन्होने अपने जीवनकी साधनाका सार उपस्थित किया है। किसीको प्रसन्न करनेके लिए या किसी शास्त्रीय पद्धतिके निर्वाहके लिए उन्होने 'साखी' 'सबदी' और 'रमैनी' की रचना नही की है।

छन्द, शैली और भाषा

कबीर ग्रथावलीमे सगृहीत वाणीमे कुल तीन प्रकारके छन्दोका प्रयोग किया गया है—'साखी', 'पद' या 'सब्द' (सबदी) और 'रमैनी'। नाभादासजीने भी भक्त-माल्मे 'हिन्दू तुरक प्रमान रमैनी सबदी साखी' कहकर कबीर द्वारा प्रयुक्त इन्हीं तीन छन्द-प्रकारोको महत्त्व दिया है। छन्द-प्रकारकी दृष्टिसे साखियाँ दोहोसे अभिन्न है। दोहा अपभ्रशका लोक-प्रिय (किसी हदतक प्रतिनिधि) छन्द है।

'साखी' सामान्य दोहेसे इस अर्थमे भिन्न है कि उसमे अनुभूत-सत्य सन्निविष्ट होता है, वह साक्षात् गुरु-स्वरूप है।[१] 'साखी' शब्दका प्रयोग गोरख-पथियो एव बौद्ध-सिद्धोके साहित्यमे भी हुआ है। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीका मत है कि जिसे सिद्धोने 'उएस' (उपदेश) कहा है वही परवर्ती कालमे साखी बन गया है।[२] 'सबदी'का प्रयोग भी कबीरसे पहले प्रचलित था। गोरखबानीमे भी 'सबदियाँ' सगृहीत है। सत-मतावलम्बी अपनी कृतियोको 'शब्द-ग्रन्थ' कहते है। सतोने शब्द-ब्रह्मसे जगतकी उत्पत्ति स्वीकार की है। ब्रह्मका प्रथम विवर्त प्रणव, ॐ या शब्द-ब्रह्म है। कदाचित् इसी ब्रह्मकी अनुभूतिसे युक्त होनेके कारण सन्तोकी वाणी 'सब्दो' कही गई। 'सब्द' या 'सबदी' गेय पद है। कबीरकी कुछ ऐसी सबदियाँ (पद) है जिनकी रचना कई छन्दोको मिलाकर की गई है। 'गोरखबानी'मे आई हुई 'सबदियाँ' प्राय. दो ही पक्तियोकी है जबकि कबीरके पद (सब्दी) पर्याप्त लम्बे है। गेय पदोकी परम्परा भी पर्याप्त प्राचीन है। बौद्ध-सिद्धोके चर्यापद विविध रागोके अन्तर्गत सगृहीत गेय पद ही है। चर्यापदोसे पहले भी वज्र-गीतियोकी परम्परा मिलती है।[३] वस्तुत. यह गेय पद-शैली लोक-काव्यकी शैली है जिसे समय-समयपर सन्तो और भक्तोने लोक-चित्तको आकर्षित करनेके लिए अपनी अभिव्यक्तिका माध्यम बनाया है। 'रमैनी'का सग्रह कबीर-ग्रथावलीमे भी है और कबीर बीजकमे भी। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीके अनुसार 'रमैनी' शब्द कबीर सम्प्रदायमे बहुत बादको प्रचलित हुआ है।[४] प० परशुराम चतुर्वेदी इसे प्राचीन मानते है और इसकी व्युत्पत्ति रामायण शब्दसे (रामायण>रमैन>रमैनी) स्वीकार करते है।[५] छन्द-प्रकारकी दृष्टिसे 'रमैनी' चौपाई-दोहेके सम्मिलनसे ही बनती है। 'चौपाई-दोहेकी शैली कबीरसे बहुत पहले अपभ्रंश काव्योमे ही प्रचलित हो चुकी थी। उपर्युक्त तीन छन्दोके अतिरिक्त कबीर-साहित्यमे 'बावनी' 'चौतीसा', 'थिती', 'वार', 'चाँचर', 'हिंडोला', 'कहरा',

---

१ हिन्दी-साहित्यका आदिकाल, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ ११३।

२ वही, पृष्ठ ११२।

३ कबीर साहित्यकी परख, पृष्ठ १९०।

४ हिन्दी-साहित्यका आदिकाल, पृष्ठ ११३।

५ कबीर साहित्यकी परख, पृष्ठ १९३।

'बेलि', 'विरहुली' 'विप्रमतीसी' आदि कई अन्य छन्द-प्रकारोका भी प्रयोग किया गया है। 'बावनी' नागरी वर्णमालाके ५२ अक्षरोको लेकर पक्तियोके प्रारम्भमे क्रमश एक-एक अक्षरका प्रयोग करते हुए लिखी जाती है। आवश्यक नही है कि बावन अक्षरोका प्रयोग कर ही दिया जाय। 'चौंतीसा' भी ठीक इसी कोटिका छन्द-प्रकार है। इसमें स्वरोको छोड दिया जाता है। इसलिए कुल वर्ण ५२ न होकर ३४ रह जाते है। 'थिंती' तिथिका अपभ्रश है। इसमें तिथियोका प्रयोग करते हुए छन्द-रचना की जाती है। 'वार' भी इसी कोटिकी छन्द-रचना है। इसमें प्रसिद्ध सात वारोका प्रयोग करते हुए छन्द रचते हैं। 'चाँचर' चर्चरी का अपभ्रश है। यह बसन्तोत्सवके उपलक्ष्यमे गाया जानेवाला एक लोकगीत है।[१] यह चर्चरिका नामक तालकी लयमे गाया जाता है। कदाचित् इसीलिए इसे 'चर्चरी' कहा गया जो कालान्तरमे 'चॉचर' या 'चॉचरी' बन गया।[२] 'हिंडोला' एक प्रकारका गेय पद है जो सावनमे झूलेके समय गाये जानेवाले लोक गीतोके अनुकरणपर रचा जाता है। 'कहरा' भी एक प्रकारका गीत ही है। पं० परशुराम चतुर्वेदीका अनुमान है कि 'कहरवा'के ढगसे गाये जानेके कारण इसे 'कहरा' कहा गया।[३] 'बेलि' भी एक गेय काव्य-प्रकार है। कबीर बीजकमे प्रयुक्त 'बेलि' प्रसिद्ध राजस्थानी 'बेलि' काव्योसे भिन्न है। यह भी कोई लोक-प्रचलित काव्य-प्रकार रहा होगा। 'बिरहुली' एक प्रकारका गीत है जो, सॉप-का विष उतारनेके लिए गाया जाता है।[४] प० परशुराम चतुर्वेदीने 'विरहुली' का अर्थ 'विरहिणी' किया है और अन्तत उसे जीवात्मासे सम्बद्ध कर दिया है। काव्य-प्रकारकी दृष्टिसे उन्होने भी इसे किसी प्रचलित लोकगीतका अनुकरण माना है। 'विप्रमतीसी' कदाचित् 'विप्रमति तीसी'का विकृत रूप है, जिसका अर्थ होगा 'विप्रोकी मतिका उद्घाटन करनेवाली तीस पक्तियाँ'। कबीर-बीजकके

---

१ 'तेरहवीं शताब्दीके जिनदत्त सूरि नामक जैन सन्तने लोक-प्रचलित चर्चरी और रासक जातिके गीतोंका सहारा लिया था।'

—हिन्दी साहित्यका आदिकाल, पृष्ठ ११४।

२ कबीर साहित्यकी परख, पृष्ठ २०३।

३ वही, पृष्ठ २०४।

४ हिन्दी-साहित्यका आदिकाल, पृष्ठ ११२।

अतिरिक्त यह काव्य-प्रकार अन्यत्र नही मिल्ता। कबीर द्वारा प्रयुक्त काव्य-रूपो और छन्दोके विषयमे डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदीका मत है कि 'कबीरने अपने आस-पास प्रचलित विनोदो और काव्य-रूपोको अपनाया होगा'[१] क्योकि सत लोग प्राय ऐसा करते आये है।

शैली—कबीरकी सभी रचनाये मुक्तक शैलीके अन्तर्गत आती है। किसी भी व्यग्यकारके लिए मुक्तक शैली सर्वाधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकती है। अनुभूतिके गहनतम स्तरोको व्यक्त करनेके लिए भी गेय मुक्तक पद-शैली मध्य-युगमे सर्वाधिक लोकप्रिय रही है। नैतिक उपदेशोसे पूर्ण विचारोको सक्षिप्त रूपमें व्यक्त करनेके लिए तथा अनुभूत सत्यको प्रभावपूर्ण ढगसे प्रस्तुत करनेके लिए दोहोकी सतसई या शतकशैली सर्वथा उपयुक्त रही है। कबीरकी वाणीमे या तो सामाजिक वाह्याचारोपर चोट करनेवाला व्यग्य मुखर हुआ है या उनके हृदयकी गहनतम अनुभूति व्यक्त हुई है या जीवनमे अनुभूत सत्य सहज रूपमे साकार हो उठा है। इन सभीके लिए मुक्तक काव्य-शैली सर्वथा समीचीन थी। कबीरको न तो कोई लम्बा आख्यान प्रस्तुत करना था न शील-निरूपणके लिए जीवनकी सभी ऊँची-नीची भूमियोको किसी मार्मिक कथा-प्रसगमे गुफित करना था। अतः प्रबन्ध-शैलीको न अपनाना उनके लिए स्वाभाविक था। सक्षेपमे हम कह सकते है कि कबीरकी शैली उनके कथ्यको व्यक्त करनेमे सर्वथा समर्थ है।

भाषा—कबीरकी भाषाका अध्ययन अपने आपमे एक महत्त्वपूर्ण विषय है। उनकी भाषाके सम्बन्धमे निश्चित मत व्यक्त करना आसान नही है। एक तो उन्होंने अपनी वाणीको स्वय लिपिबद्ध नहीं किया था। उनके शिष्योने लिखते समय अपने जन्मस्थानकी भाषाके अनुकूल उसमे रूपान्तर अवश्य किया होगा। बीच-बीचमे क्षेपक अश भी अवश्य जुडते गए होगे। अपने मूलरूपमे भी वह कोई व्याकरणबद्ध निश्चित भाषा न रही होगी क्योकि उस समयतक हिन्दीकी काव्य-भाषाका कोई निश्चित रूप स्वीकृत न हो सका था। मनमौजी कबीर व्याकरणके बन्धनोसे बँधकर चलनेवाले व्यक्ति न थे। यही कारण है कि कबीरकी भाषाके सम्बन्धमे उतने ही मत है जितने निर्णायक। कबीर-बीजकके टीकाकार विचारदास-

१ हिन्दी-साहित्यका आदिकाल, पृष्ठ ११२।

जीने (बीजकको ही दृष्टिमे रखकर) उनकी भाषाको 'ठेठ प्राचीन पूर्वी' माना है।[१] डॉ० रामकुमार वर्माकी दृष्टिमे 'कबीरके काव्यका व्याकरण पूर्वी हिन्दी रूप ही लिए हुए है। उसमे स्थान-स्थानपर पजाबी प्रभाव अवश्य दृष्टिगत होता है।'[२] बाबू श्यामसुन्दरदासने पर्याप्त छान-बीनके पश्चात् निर्णय दिया है—'कबीरमे केवल शब्द ही नही क्रिया पद कारक-चिह्नादि भी कई भाषाओके मिलते है, क्रिया पदोके रूप अधिकतर ब्रजभाषा और खडी बोलीके है। कारक चिह्नोमे 'से' 'कै' 'सन', 'सा' आदि अवधीके है, 'कौ' ब्रजका है और 'थै' राजस्थानीका।'[३] इस प्रकार बाबू साहबकी दृष्टिमे कबीरकी भाषा पचमेल खिचडी है। डॉ० सुनीति-कुमार चाटुर्ज्याके अनुसार 'कबीरकी रचनामे हमे मुख्यतः ब्रजभाषा मिलती है लेकिन इसमे कोसली या पूर्वी हिन्दीका कुछ-कुछ मेल पाया जाता है और खडीबोलीका रूप भी यथेष्ट परिमाणमे मिलता है।'[४] उपर्युक्त समस्त मतभेदोके बावजूद यह तो मानना ही होगा कि कबीरका अधिकाश जीवन बनारसमे व्यतीत हुआ था और अन्तमे कुछ दिनोतक वे गोरखपुरके निकट मगहरमे भी रहे थे। अतः उनकी भाषा मूलत. इसी प्रदेशमे बोली जानेवाली जन-भाषा रही होगी। उसमे परिवर्तन दूरवर्ती प्रदेशोमे उनकी वाणीके प्रचारके कारण हुआ होगा। उन्होंने जो 'बोली हमारी पूरबकी हमै लखै नहि कोय' कहा है उसमे आध्यात्मिक सकेतके साथ अभिधात्मक तथ्यकी सूचना भी है। कबीरसे पूर्व सिद्धो और नाथो-की गूढ आध्यात्मिक सकेतोसे युक्त सध्या भाषाका प्रचार पूर्वी क्षेत्रोमे ही था। कबीर अपनेको उसी परम्परामे रखते हुए कहते है—'हमको तो सोई लखै, धुर पूरबका होय।' आचार्य रामचन्द्र शुक्लने कबीरकी भाषाको राजस्थानी-पजाबी मिली खडीबोली कहा है। साथ ही उनकी रमैनियो एव पदावलियोंमें ब्रजभाषा एव पूरबी बोलीका व्यवहृत होना भी स्वीकार किया है।[५] साराश यह कि कबीर-

१ विचारदास शास्त्री 'बीजक-विरल टीका', पृष्ठ ४३, कबीर साहित्यकी परख, पृष्ठ २०८ पर उद्धृत।

२ सत कबीर, डॉ० रामकुमार वर्मा, पृष्ठ २३

३. कबीर ग्रन्थावली, प्रस्तावना, पृष्ठ ६७।

४ डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, भारतकी भाषायें, पृष्ठ ६०।

५ हिन्दी साहित्यका इतिहास, पृष्ठ ८० (सशोधित सस्करण)।

की वाणीका जो रूप आज प्राप्त है उसमे कई भाषाओके शब्द, पद एव क्रिया-रूप सम्मिलित है। अवधी, भोजपुरी, खडीबोली, पजाबी और राजस्थानी इन सभी भाषाओका मिश्रित रूप उनकी वाणीमे विद्यमान है। एक प्रकारसे उनकी भाषाको सधुक्कडी कहाना ठीक ही है।

उपसहार

कबीर हिन्दी-साहित्यकी अन्यतम विभूति है। परम्परागत वैदिक मान्यताओका विरोध करके भारत जैसे देशमे जीवित रहना बहुत बडी शक्तिका काम है। कबीरकी शकाओका उत्तर देनेमे तुलसीकी विलक्षण बुद्धि, अपार अध्ययन, अथक प्रयत्न, विराट् व्यक्तित्व और अद्वितीय समन्वयात्मिका शक्ति भी खीझ उठी थी। उन्होने 'साखी' 'सबदी' 'दोहरा' 'किहनी' और 'उपखन' कहनेवालोको निस्तेज कर दिया किन्तु कबीरका तेजस्वी व्यक्तित्व अपराजेय रहा। कबीर जनताके एक बहुत बडे समुदायके आराध्य बने रहे। कबीरने सत्यके अभावात्मक स्वरूपकी अनिर्वचनीयताको भावात्मक अनिर्वचनीयता प्रदान किया। उसकी निरपेक्षिताको स्वीकार करते हुए भी उसे प्रेम करने योग्य माना। धर्म और अधर्म, बन्धन और मुक्ति, आसक्ति और अनासक्ति, स्वर्ग और नर्क, सेवक और स्वामी, यती और कामी, कर्म और अकर्म, स्थापन और विघटनकी स्थितियोसे ऊपर उठकर निरपेक्ष सत्यका दर्शन कबीर जैसा विमल-बुद्धि-सम्पन्न व्यक्ति ही कर सकता था। कबीरने सत्यके इसी रूपको स्थिर चित्तसे हृदयगम किया था। उनके व्यक्तित्वको समझनेके लिए निम्नलिखित पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

"ना मै धर्मी नाहीं अधर्मी, ना मै जती न कामी हो।
ना मैं कहता ना मै सुनता, ना मै सेवक स्वामी हो।
ना मै बँधा ना मै मुक्ता, ना मैं बिरत न रगी हो।
ना काहू से न्यारा हूआ, ना काहू के सगी हो।
ना हम नरक-लोक को जाते, ना हम सुर्ग सिधारे हो।
सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन तें न्यारे हो।
या मत को कोई विरलै बूझै, सो अटर हो बैठे हो।
मत कबीर काहू को थापै, मत काहू को मेटे हो॥"[1]

१ कबीर-वाणी, पद ७९, सपादक, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी।

पठनीय-सामग्री

हिन्दी काव्यमे निर्गुण सम्प्रदाय	डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल
कबीर	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
तसव्वुफ अथवा सूफीमत	प० चन्द्रबली पाण्डेय
हिन्दी काव्य धारा	श्री राहुल साकृत्यायन
कबीर ग्रन्थावली	स० बाबू श्यामसुन्दरदास
गोरखबानी	स० डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल
Obscure Religious Cults	S B Das Gupta
नाथयोग · एक परिचय	अक्षयकुमार बन्द्योपाध्याय
मत्रयोग सहिता	भारत धर्म महामण्डल प्रकाशन
सत कवि दरिया . एक अनुशीलन	डॉ० धर्मेन्द्रकुमार ब्रह्मचारी
उत्तरी भारत की सत परम्परा	प० परशुराम चतुर्वेदी
हिन्दी के विकास मे अपभ्रश का योग	डॉ० नामवर सिह
हिन्दी साहित्य का इतिहास	प० रामचन्द्र शुक्ल
भक्ति का विकास	डॉ० मुशीराम शर्मा
Collected Works, Vol IV	R G Bhandarkar
रामभक्ति मे रसिक भावना	डॉ० भगवतीप्रसाद सिह
कबीर की विचारधारा	डॉ० त्रिगुणायत
पद्मावत	स० डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा
Kabir and the Kabir Pantha	G H West Cott
दक्खिनी हिन्दी का पद्य और गद्य	स० श्रीराम शर्मा
Mysticism in Maharashtra	Ranadey
तुल्सी ग्रन्थावली	ना० प्र० सभा, काशी
The Religion of Man	Tagore
सत कबीर	डॉ० रामकुमार वर्मा
हिन्दी नवरत्न	मिश्रबन्धु
हिन्दी साहित्य का आदिकाल	डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
कबीर साहित्य की परख	प० परशुराम चतुर्वेदी

नन्ददास

अष्टछापी कवियोमे नन्ददासजीका स्थान (सूरदासके पश्चात्) दूसरा है। और यदि कलात्मक दृष्टिसे देखा जाय तो उन्हे पहला स्थान भी प्राप्त हो सकता है। कहा भी गया है—'और कवि गढिया, नन्ददास जडिया'। वास्तवमे नन्ददास-जीने एक-एक शब्द मणियोके समान जड दिया है जिनका सौन्दर्य पूरे वाक्यको अद्‌भुत आभासे मडित कर देता है। नाभादासजीने आपको 'आनदनिधि, रसिक, और प्रभुहित रगमगे' कहकर स्मरण किया है। प्रभु-प्रेममे आचूड मग्न होने के कारण ही आपका प्रेम-सिद्धान्त-निरूपण बहुत ही स्पष्ट, मधुर और मार्मिक हो सका है। आपके दार्शनिक विचार भी उलझे हुये नही हैं। उनपर आचार्य वल्लभके सिद्धान्तोकी छाप स्पष्ट लक्षित होती है।

दार्शनिक-विचार—नन्ददासजीके अनुसार रस-रूप कृष्ण ही परब्रह्म हैं।[1] वे घट-घटमे व्याप्त है। वे नित्य, एकरस, अखण्ड और केवल प्रेमगम्य हैं।[2] षटगुण सम्पन्न (ऐश्वर्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य) नारायण भी वही हैं।[3] यही ब्रह्म समय समय पर अवतार धारण करता है। समस्त जड चेतनका कारण भी यही है।[4] सत, रज, तम गुणोसे युक्त होकर व्यक्त होनेवाली यह प्रकृति भी

---

१ तहँ निरखे ब्रज राज कुमार। अव्यय ब्रह्म अनत अपार।
—भाषा दशम स्कन्ध, त्रयोदश अध्याय, नन्ददास ग्र०, पृ० २६७

२ नहिं कछु इन्द्रिय-गामी कामी कामिनि कै बस।
सब घट अनर जामी स्वामी परम एक रस॥
नित्य, आत्मानन्द, अखड स्वरूप, उदारा।
केवल प्रेम सुगम्य अगम्य अवर परकारा॥
—नन्ददास ग्रन्थावली, पृ० ७४, ना० प्र० सभा सस्करण।

३. षट्गुन अरु अवतार धरन नारायन जोई।
सबकौ आश्रय अवधि भूत नँद नन्दन सोई॥—वही, पृष्ठ ३८।

४. जो प्रभु जोति जगत मय, कारन करन अभेव।—वही, पृष्ठ ४९।

उसीका रूप है ।[1] अनन्त रूप होते हुए भी यह ब्रह्म-तत्व एक ही है । यही ज्योति रूप भी है । यह समस्त जगत उससे भिन्न नही है । ब्रह्म ही इस जगतका निमित्त और उपादान कारण है । एक ही ब्रह्मसे अनेक रूपोमे परिणत होकर यह जगत उसी प्रकार जगमगा रहा है जिस प्रकार एक ही कचनसे किंकिनी, ककन, कुण्डल आदि अनेक वस्तुये बन जाती है ।[2] इस प्रकार ब्रह्मको नित्य और एकरस मानना साथ ही उसे षट्गुण-सम्पन्न अवतारी पुरुष भी स्वीकार करना, उसमे परस्पर विरुद्ध धर्मोका आरोप करना है । यह विरुद्ध-धर्मारोप आचार्य वल्लभके सिद्धान्तोके अनुसार ही किया गया है ।

नन्ददासजीके 'जीव' सम्बन्धी विचार भी शुद्धाद्वैतके अनुसार ही है । भागवतके भाषानुवादके दूसरे अध्यायमे मुनीश्वरगण कृष्णकी स्तुति करते हुये कहते है "हम सब प्राणी आपसे उसी प्रकार उद्भूत हुये हैं जिस प्रकार अग्निसे स्फुल्लिग निकलते है ।"[3] 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी'म तो 'ब्रह्म' और 'जीव'का परस्पर भेद भी दिखाया गया है । 'जीव' काल, कर्म और मायाका वशवर्ती है । वह पाप-पुण्यका भोक्ता है । उसे विधि-निषेधकी सीमाये भी माननी पडती है । ज्ञान-विज्ञानका प्रकाशक परब्रह्म इन सीमाओसे परे है ।[4]

'जगत'को नन्ददासजी भी 'ब्रह्म'का अविकृत परिणाम मानते है । 'ब्रह्म'से 'जगत'का उद्भव उसी प्रकार हुआ है जिस प्रकार कञ्चनसे 'किंकिनी', 'कुण्डल' आदि अनेक आभूषण बन जाते है ।[5] वल्लभसिद्धान्तके अनुसार ही नन्ददासजी

---

१ तुमहीं प्रकृति सुकृत सब तुमहीं । सत रज तम जे लै लै उमही ॥
—नन्ददास ग्रन्थावली, पृष्ठ २५३ ।

२ एकै वस्तु अनेक है जगमगात जगधाम ।
जिमि कचन तें किंकिनी, ककन, कुडल नाम ॥—वही, पृष्ठ ४९ ।

३ तुम तें हम सब उपजत ऐसें । अगिनि तैं विस्फुलिंग गन जैसैं ।
—वही, पृष्ठ २२६ ।

४ काल-कर्म माया-अधीन ते जीव बखानें ।
विधि-निषेध अरु पाप-पुन्य तिनमें सब साने ।
परम-धरम परब्रह्म ज्ञान-विज्ञान प्रकासी ।
ते क्यों करिये जीव-सदृश श्रुति (प्रति) शिखर निवासी—वही, पृष्ठ ३९ ।

५. नन्ददास ग्रन्थावली, अनेकार्थ ध्वनि मञ्जरी, पृष्ठ ४९, ना० प्र० सभा ।

'जगत' और 'ससार'मे अन्तर भी करते हैं। 'ससार' असार है।[1] 'जगत' ब्रह्मका ही परिणाम होनेके कारण सत्य है। ससारी जन काल-कर्म और अविद्यासे सने होते है। उन्हे वह गति नही प्राप्त होती जो जोगी-जनोको क्रमश. तपस्याके बलसे और ब्रजवासियोको कृष्णके अनुग्रहसे प्राप्त होती है।

नन्ददासजीके अनुसार 'माया' 'ब्रह्म'के अधीन रहती है। यह माया ही सृष्टिके उद्भवको सम्भव बनाती है। 'रूप', 'गन्ध', 'रस', 'शब्द', 'स्पर्श' आदि पॉच विषय, 'पञ्चमहाभूत', 'दस इन्द्रियॉ', 'मन', 'अहकार', 'महत्तत्त्व', 'त्रिगुण' ये सभी मायाके ही विकार है। प्रभुकी आज्ञासे यह माया ही विश्वका उद्भव, पालन और सहार करती है।[2] यह महामोहिनी है। इसकी 'मलमई' काया है। लोक-सृष्टि करती हुई भी यह प्रभुसे दूर रहती है।[3] इस प्रकार इसकी दो स्थितियॉ या दो रूप है। यह 'कीच'का कार्य भी करती है और दर्पणका भी। दर्पणका कार्य यह प्रकृति मायाके रूपमे करती है। जिस प्रकार दर्पणमे उसके सम्मुख आनेवालेका रूप बिम्बित हो उठता है उसी प्रकार माया (प्रकृति) रूपी दर्पणमे प्रभुके शुद्ध गुण बिम्बित है। यह बिम्बित गुण, शुद्ध गुणसे भिन्न नही है। अत. यह माया (प्रकृति) प्रभुके सत् स्वरूपसे भिन्न कोई मिथ्या वस्तु नही है। 'कीच' रूपमे यह प्रभुके शुद्ध गुणोको विकृत कर देती है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार शुद्ध जल कीचडमे सनकर गॅदला हो जाता है। यह मायाका अविद्या-रूप है।[4] इस प्रसगमे शकराचार्यकी माया सम्बन्धी मान्यतासे नन्ददासके विचारोकी भिन्नता दिखाते हुये डॉ० दीनदयालु गुप्त कहते है— "जिस मायाके दर्पणका नन्ददासने यहॉ उल्लेख किया है वह शकरकी मिथ्या

---

१ अरु ससार असार अपार। सहजहि भयौ जु ताके पार।—नन्ददास ग्रथावली, पृ० ३१५।

२. सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, छन्द, ३, ४, ५, पृष्ठ ३८।

३ लोक सृष्टि सिरजति यह माया। तुम ते दूरि मलमई काया।

—भाषा दशम स्कध, २८ अध्याय—नन्ददास ग्र०, पृष्ठ ३१५।

४ जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहॉ तें।
बीज विना तरु जमे मोहिं तुम कहौ कहा तें॥
वा गुनकी परछॉह री माया दर्पन बीच।
गुन तें गुन न्यारे नहीं अमल बारि मिलि कीच॥

—भ्रमर गीत, पद २०, ग्रन्थावली, पृष्ठ १७७।

मायाका मिथ्या दर्पण नहीं है, यह दर्पण ब्रह्मकी सत् स्वरूपा प्रकृतिकी मायाका दर्पण है। इसमे जो विजातीय विकार है वह अविद्या रूपिणी मायाकी कीच है, जो अन्यथा प्रतीति कराती है।[१] शकराचार्यके अनुसार 'ब्रह्म' का ज्ञान होनेपर 'माया'का ज्ञान बाधित हो जाता है[२], इसलिये 'माया'को सत् नहो कह सकते किन्तु यहाँ 'गुन ते गुन न्यारे नहीं' कहकर प्रकृति (माया)के गुणोको प्रभुके शुद्ध गुणोंसे अभिन्न माना गया है। इस प्रकार प्रकृति (माया)की सत्ताको भी सत्य स्वीकार किया गया है। अतः डॉ० गुप्तका मत समीचीन जान पडता है।

नन्ददासजीने प्रेम-साधनाके बलपर ही 'मुक्ति'के आनन्दकी उपलब्धिको सम्भव माना है। 'ऋते ज्ञानात् न मुक्ति.'के सिद्धान्तको वे सर्वथा सत्य नहीं मानते।[३] भक्तिरसके अमृत-सरोवरके सम्मुख वे ज्ञानियोकी मोक्षावस्थाको उससे निःसृत साधारण निर्झरसे अधिक नही मानते।[४] बल्लभ सम्प्रदायके अनुसार प्रभुका विरह, विरही भक्तके सभी प्रकारके पाप-पुण्यमय कर्मोको भस्म कर देता है और तब भक्त प्रभुके प्रेममे मग्न होकर सानिध्यसद्योमुक्तिके आनन्दका अनुभव करता है। शुद्ध प्रेमके बलसे समस्त सासारिक विषयोंको त्यागकर 'निज-स्वरूप'की प्राप्ति ही मुक्ति है।[५] नन्ददासजीने कृष्णके विरहमे गोपियोके सभी कर्मोको विदग्ध कराकर उन्हे इसी सद्योमुक्तिके आनन्दकी उपलब्धि कराई है।[६] रासके वर्णनमे उन्होने गोपियोंको क्रमशः रसरूप कृष्णके निकट लाकर अन्ततः नित्य रासमे प्रवेश कराकर सायुज्य मोक्षके आनन्दकी स्थितितक पहुँचा दिया है। उन्होने एक

१. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, भाग, २ पृष्ठ ४६४।

२. भारतीय दर्शन, पृष्ठ ४५० ।

३. ज्ञान बिना नहिं मुकति इह जुपडिन गन गायो।
गोपिन अपनो प्रेम-पन्थ न्यारोइ दिखरायो ॥

—सिद्धान्त पन्चाध्यायी, ग्रथा०, पृष्ठ ४१।

४ तुम्हरी भगति अमीरम सरवर। मोक्षादिक जाके सब निर्झर

—भाषा दशम स्कध, ग्र० पृ० २६९।

५ अन्य रूपकी त्यागन जुक्ति। निज स्वरूपकी प्रापति मुक्ति।

—भाषा दशमस्कन्ध, ग्र०, पृष्ठ २१७।

६ 'ता करि पापन कौ फल जितौ, जरि बरि मरि मरि गयौ है तितौ'

—भागवत भाषा दशम स्कन्ध, अध्याय २९।

प्रकारसे रासलीला-वर्णनमें **सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य** मुक्तियोकी स्थितिको उदाहृत सा कर दिया है। 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी' में वे कहते है 'ब्रज-सुन्दरियो के साथ मिलकर कृष्ण उसी प्रकार शोभित है जिस प्रकार अपनी अनेक शक्तियो से आवृत्त होकर परमात्मा शोभित होते है'।[१] 'शक्ति' 'शक्तिमान्' से अलग नही हो सकती उसी प्रकार गोपियॉ कृष्णसे अलग स्थिति नही रखतीं। यह सायुज्य मोक्षकी स्थितिका ही वर्णन है। इस प्रकार नन्ददासजीके मोक्ष सम्बन्धी विचार भी वल्लभसम्प्रदायानुमोदित है।

नन्ददासजीके भक्ति-सिद्धान्त

नन्ददासजी पुष्टिमार्गीय भक्त थे। उन्होने साम्प्रदायिक आधारपर पुष्टिकी व्याख्या करते हुये कहा है कि भक्तोके दोषो पर ध्यान न देकर भगवानका अनुग्रह पूर्वक उनकी रक्षा करना ही 'पोषण' है।[२] यही नही उनकी भक्ति सम्बन्धी अन्य मान्यताये भी पुष्टिमार्गीय भक्तोकी परम्पराके अनुकूल है। उन्होने अन्य साधनाओकी तुलनामे 'भक्ति' की श्रेष्ठता स्वीकारकी है। भक्तिके अभावमे वे ज्ञानकी सार्थकता नही मानते।[३] भक्ति अमृत-सरोवर है। इसका आलम्बन, रसरूप परब्रह्म कृष्णका सगुण स्वरूप है। सगुण भगवान ही प्रेमगम्य है। ज्ञानकी ऑखोंसे योगीजन जिस ज्योतिरूप ब्रह्मका आभास पाते है, प्रेमके सरलमार्ग पर चलनेवाला भक्त उसकी अनुभूति नहीं कर पाता।[४] सारे भ्रमरगीतका प्रसग ही सगुण ईश्वरकी प्रेम-भक्तिकी स्थापना है। भक्तिके शास्त्रीय प्रकारोकी दृष्टिसे देखा जाय तो नन्ददासजीकी भक्ति 'रागानुगा' है। प्रेमकी अनुभूतिसे गोपियोके

---

१. पुनि ब्रज सुदरि सग मिलि सोहै सुन्दर वर यौं।
अनेक शक्ति करि आवृत्त सोहै परमातम ज्यौं॥ —नन्ददास ग्र०, पृष्ठ ४६।

२ जद्यपि भगत भरयो वहु दोषन। ताकी रच्छा कहियै पोषन।
—भागवत भाषा, प्रथम अध्याय, ग्र०, पृष्ठ २१७।

३. अब विधि कहत ग्यान है जोई। भक्ति बिना सोउ सिद्धि न होई। —वही, पृष्ठ २६९।

४ कौन ब्रह्म को जोति ग्यान कासों कहै ऊधौ?
हमरे सुन्दर स्याम प्रेमको मारग सूधो॥
—भ्रमरगीत, ग्र०, पृष्ठ १७५।

हृदयमे आनन्द उल्लसित होता है किन्तु अन्तत' वे कामना-रहित होकर रस-सागर कृष्णमे उसी प्रकार मिल जाती है जिस प्रकार नदी का स्रोत जलधिमे विलीन हो जाता है। इसी स्थिति मे उन्हे पूर्णशान्ति प्राप्ति होती है। यह साध्य-भक्ति या परा भक्ति है। श्रीमद्भागवतमे उल्लिखित नवधाभक्तिको वल्लभ-सम्प्रदायमे अनन्य प्रेमाभक्तिका साधन स्वीकार किया गया है। रास पचाध्यायीके पॉचवे अध्यायमे नन्ददासजीने श्रवण, कीर्तन, स्मरण, ज्ञान, ध्यान आदि साधनोके सार रूपमे प्रेमाभक्तिके मधुरभाव या उज्ज्वल रसको स्वीकार करके एक प्रकारसे नवधा भक्तिको साधन रूपमे ही ग्रहण किया है।[२] 'नारद-भक्ति-सूत्र'मे भगवान्के प्रति जिन ग्यारह प्रकारकी आसक्तियोका उल्लेख है, नन्ददासकी रचनाओमे उन सभीका रूप मिल जाता है। यही नही कान्तासक्तिके अन्तर्गत जार-भावकी भक्तिका उल्लेख भो नन्ददासजीने किया है।[३] यह सब होनेपर भी आपकी प्रवृत्ति '**प्रेमा-भक्ति**'के निरूपणमे ही अधिक रमी है। 'रासपचाध्यायी', 'सिद्धान्त-पचाध्यायी', 'रूपमञ्जरी' 'रसमञ्जरी', 'विरहमञ्जरी', 'भ्रमरगीत', आदि सभो कृतियोमे प्रकारान्तरसे 'प्रेमा-भक्ति'के ही किसी न किसी रूपका उल्लेख हुआ है।

नन्ददासकी प्रेमा-भक्ति—नन्ददासजीके अनुसार समस्त विश्वमे भासित होनेवाली सत्ता प्रेममयी है।[४] शुद्ध प्रेमके आधारपर इस सत्ताकी अनूभूति एव

---

१ आइ उमगि सो मिलीं रँगीली गोप-वधू अस।
नद-सुअन सागर सुन्दर सों प्रेम नदी जस॥

—रास पचाध्यायी, ग्र०, पृष्ठ २६।

२ यइ उज्ज्वल रस-माल कोटि जतनन कै पोई।
सावधान ह्वै पहिरौ यहि तोरौ जनि कोई॥
श्रवन कीर्तन सार-सार सुमिरन को है पुनि॥

—रास पञ्चाध्यायी, ग्र०, पृष्ठ २५।

३. जदपि जार-बुद्धि अनुसरी। परमानन्द-कद रस भरी।

—भाषा दशम स्कध, ग्र०, पृष्ठ ३१८।

४. प्रथमहि प्रनऊँ प्रेममय परम जोति जो आहि।
रूपउ पावन रूपनिधि, नित्य कहत कविताहि॥

—रूप मजरी, ग्र०, पृष्ठ ११७।

प्राप्ति हो सकती है। गोपियोको इसी प्रेम-पथपर चलनेसे परम प्रेममय रस-रूप विश्वव्यापी भगवान् कृष्णकी प्राप्ति हुई थी। जो उनकी प्रेम-लीलका गान करता है, सुनता है या सुनाता है उसे भी प्रेमा-भक्ति प्राप्त हो जाती है।[1] यह शुद्ध प्रेम सासारिक वासना-जन्य प्रेमसे भिन्न है। यह लोक मर्यादाके विधि-निषेधोसे परे है।[2] लौकिक शृगारकी आसक्तिमयी सीमासे परे है।[3] यह प्रेम काम-भावनापर जय प्राप्त कराता है।[4] जीवको मुक्त करता है। आश्रयरूप भक्तके हृदयमे जब आलम्बनरूप कृष्णके प्रति शुद्ध प्रेमका उदय होता है तो 'उज्ज्वलरस'की निष्पत्ति होती है।[5] वासनाजन्य-प्रेम और शुद्ध प्रेम एक-दूसरेसे उसी प्रकार मिले हुए है जिस प्रकार नीर-क्षीर। कोई विरला जन ही शुद्ध प्रेम को अलग करके उसके अलौकिक आनन्दकी अनुभूति कर सकता है।[6] शुद्ध प्रेमके सामने ज्ञान, योग और कर्म आदि साधनोकी स्थिति वैसी ही है जैसे हीरा की तुलनामे कॉच की।[7] यह प्रेम अतुल्ति है। ज्ञान, विज्ञान, यम, नियम तथा ससारकी अन्य सभी

---

१ जो यह लीला गावै चित दै सुनै सुनावै।
प्रेम-भगति सो पावै अरु सब कै मन भावै॥

—रासपञ्चाध्यायी, ग्र०, पृष्ठ २४।

२ लोक-वेदकी सुदृढ सिंखला तृन सम तोरी—वही, पृष्ठ ३१।

३ जो पढित शृगार ग्रथ मत यामैं सानै।
ते कछु भेद न जानैं हरिको विषई मानै॥

—सिद्धान्त पञ्चाध्यायी, ग्र०, पृष्ठ ४१।

४. हरि मन-मथ करि मथ्यौ उलटि वा मनमथ कौं मन। —रासपचाध्यायी प्रथम अध्याय।

५ यह उज्जल रस-माल कोटि जतनत कै पोई।

—वही, ग्र०, पृष्ठ २५।

६ गरल अमृत इकग करि राखै। भिन्न-भिन्न कै विरर्रै-चाखै।
छीर-नीर निरवारि पिवै जो। इहि मग प्रभु पदई पावै सो॥

—रूप मजरी, ग्र०, पृष्ठ ११८।

७ ग्यान जोग सब कर्म ते परे प्रेम ही सॉच।
हौं या पटतर देत हौ हीरा आगे काँच॥

—भ्रमरगीत, ग्र०, पृष्ठ १८७।

वस्तुओ की तुलना हो सकती है किन्तु प्रेमकी नही।[1] 'प्रेमा-भक्ति'को 'परम एकान्त' भक्ति भी कहते हैं।[2] विरह प्रेमकी कसौटी है। थोडा सा विरहका पुट प्रेम-भावनामे वृद्धि कर देता है।[3] विषय-वासनाको जलाकर प्रेमीके व्यक्तित्वको निष्कलुष कर देता है। वह तन्मय होकर प्रिय-स्वरूप हो जाता है। इसीलिए नन्ददासजीने प्रेमा-भक्तिके अन्तर्गत विरह-भावनाको महत्व प्रदान किया है। इस प्रेमा भक्तिका सच्चा स्वरूप गोपियोके व्यक्तित्वमे देखा जा सकता है। उनके व्यक्तित्वमे शुद्धप्रेमका चरम-विकास रासलीलाके प्रसगमे हुआ है। इसीलिये कविने 'रासपञ्चाध्यायी'मे 'रास'का सर्वोत्कृष्ट वर्णन किया है।

नन्ददास वर्णित रासका स्वरूप—विद्वानोने 'रास'की व्याख्या कई आधारो-पर की है। 'रसाना समूह रासः'[4] (रस समूह ही रास है) या 'बहुनर्तकी युक्तो नृत्यविशेषो रास.'[5] (बहुत-सी नर्तकियोसे युक्त नृत्यविशेषको रास कहते हैं) या 'नटैर्गृहीत कठेन अन्योन्यातर्काश्रियाम् नर्तकीना भवेत रासो मडलीभूय नर्तन.'[6] (जिसमे अनेक नट-नर्तकियॉ एक दूसरेके गलेमे हाथ डालकर मण्डलाकार नृत्य करते है वह रास है) अथवा 'नृत्यगीत-चुम्बनालिङ्गनादीना रसाना समूहो रासः तन्मयी या क्रीडा ताम् अनुव्रतैस्तादीना परस्परैकमत्येन स्वानुकूलै अन्योऽन्यम्

१. ग्यान तुलित, विग्यान पुनि, तुलित-तुलित जप-नेम।
   सबै वस्तु जग मैं तुलित, अतुलित एकै प्रेम॥

—भाषा दशम स्कध, ग्र०, पृष्ठ ३२१।

२. परम कात एकात भगति रस तौ भल पावै।

—राम पचाध्यायी, ग्र०, पृष्ठ ३७।

३ ज्यों पट पुटके दिये निपट ही रसहि परै रँग।
   तैसेहि रचक विरह प्रेमके पुज वढत अग॥

—रास पञ्चाध्यायी, ग्र०, पृष्ठ १४।

४. श्रीधर स्वामीकी व्याख्या, रास पचाध्यायी, डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ ३४ पर उद्धृत।

५ श्री वल्लभाचार्यकी व्याख्या, वही, पृष्ठ ३४ पर उद्धृत।

६. श्री चैतन्य सम्प्रदायके जीव गोस्वामीकी व्याख्या,
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ४९७ पर उद्धृत।

आबद्धः सग्रथिता बाहवो यैस्तैस्सह रास"[1] । (अर्थात् जिसमे नट-नटी एक दूसरेके अनुकूल, एकमत, अनुवत होकर परस्पर बाहोमे आबद्ध होकर चुम्बन आलिङ्गन आदि क्रियाओके साथ गान करते हुये नृत्य करते हैं, वह रास है) उपर्युक्त सभी व्याख्याओकी मूल भावना एक ही है। आनन्दकी चरम अभिव्यक्तिके लिये स्त्री-पुरुषोका उल्लसित होकर परस्पर मुक्त स्पर्श, गान और नृत्य करना ही रास है—'रास'के तीन रूप या स्थितियॉ मानी गई है। **नित्य रास, नैमित्तिक रास और अनुकरणात्मक रास**। अनुकरणात्मक रास भी दो प्रकारका होता है—**मानसिक और देहात्मक**।[2] रस-रूप कृष्ण गोलोकमे अपनी शक्तियोके साथ **नित्य रासलीला करते हैं, यही नित्य रास है**। अवतारी कृष्णने द्वापर युगमे गोपियोके साथ जो रास-लीला रचाई थी वही **नैमित्तिक रास** है। कृष्णके प्रेमी-भक्त अपनी मानसी कल्पनामे जिस रासलीलाका अनुभव कर आनन्दित होते रहते है वही **अनुकरणात्मक मानसिक रास** है। जो रासलीला भक्त लोग मण्डलियॉ बनाकर करते है वह अनुकरणात्मक दैहिक रास है।

नन्ददासजी वर्णित रासमे ये तीनो स्वरूप समन्वित है। वे स्पष्ट कहते है कि यह रासलीला नित्य है।[3] साथ ही भागवतके अनुकरणपर लिखी गई उनकी रास पञ्चाध्यायी द्वापर युगमे अवतरित कृष्णकी विशिष्ट रासलीलाका आख्यानक वर्णन है। अतः वह नैमित्तिक भी है। यही नही शिव, शुक, नारद आदि भक्त जन इसकी मानसिक कल्पनामे सदा मग्न रहते है, कविने इस ओर भी सकेत किया है।[4] स्वय नन्ददासजीने भी निश्चय ही अपने मानसलोकमें इस लीलाका काल्पनिक बिम्ब ग्रहण किया था अन्यथा उनके वर्णन इतने सजीव न हो पाते। इसलिए इसे अनुकरणात्मक मानसिक रास भी कह सकते हैं।

---

१. श्री विश्वनाथ चक्रवतीकी व्याख्या,

—रास पचाध्यायी, स० डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृष्ठ २५ पर उद्धृत।

२. अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ४९८।

३. नित्य रास रमनीय, नित्य गोपीजन-वल्लभ।

—रास पचाध्यायी, स० उमाशकर शुक्ल, पृष्ठ १८१, प्रथम सस्करण।

४. सिव सुक नारद-सारद तिनकौं इहै महानिधि।

—नन्ददास ग्र०, पृष्ठ ३७।

रासपञ्चाध्यायीमे प्रेमकी आध्यात्मिक भूमि

मध्ययुगीन प्रेममार्गी कवियोकी बहुत बडी विशेषता यह है कि उन्होने लौकिक प्रेमके माध्यमसे आध्यात्मिक प्रेमकी व्यञ्जना की है। लौकिक जीवनमे सबसे तीव्र स्थायी और उष्ण प्रेम दम्पतिके बीच होता है। इसीलिए दाम्पत्य प्रेमको ही ईश्वरोन्मुख करके उसके माध्यमसे आध्यात्मिक प्रेमकी ओर सकेत किया जाता है। दैन्य-भावापन्न-भक्तिसे इस प्रेम-मूलक भक्तिमे स्पष्ट अन्तर है। भक्तिके द्वारा भक्तका मानसिक उन्नयन होता है। किन्तु प्रेमके बलसे भगवान स्वय मानव जीवनके निकट खिच आते है।[1] रासपञ्चाध्यायीमे लौकिक अनुभूतियोंकी तीव्रताके आधारपर आध्यात्मिक प्रेमकी व्यञ्जना की गई है। कवि इस आध्यात्मिकताकी ओर सकेत करना नही भूलता। रासपञ्चाध्यायीमे वर्णित प्रेमके सारे उपकरण दिव्य है। आलम्बन कृष्ण साक्षात् रसरूप परब्रह्म है। आश्रय गोपियाँ उन्हीकी अश रूपा आत्माये है। प्रेमलीला-भूमि वृन्दावन भी दिव्य है। उद्दीपक प्रकृति—कुञ्ज, लता, वीरुध, तृन—काल-प्रभावसे परे शाश्वत शोभा-युक्त है। इन परिस्थितियोमे उत्पन्न होनेवाला प्रेम दिव्य, काम-नाशक और गर्वका शमन करनेवाला है। इस प्रेमकी अधिकारिणी व्रजबालाये ही है, जो पञ्चभूतोसे परे शुद्ध ज्योति-रूपा हैं।[2] स्वय रूपनिधि कृष्ण उनके आकर्षणके विषय है। आकृष्ट होनेका कारण भी दिव्य और आध्यात्मिक है। नाद ब्रह्म (शब्द-ब्रह्म) की जननी भुवनमोहिनो योगमायाकी प्रतीक रूपा मुरलीका निनाद सुनकर 'नाद-पथ'[3] का अनुसरण करती हुई गोपियाँ 'सावन-सरित'के समान अपार प्रेमोल्लास एव

---

१ Devotion wafts the mind above
But Heaven itself descends in love
—Byron

२ सुद्ध जोति-मय रूप पाँच भौतिक तें न्यारी।
तिनहिं कहा कोउ गहै जोति-सी जगत उज्यारी॥ नन्ददास ग्र०, पृष्ठ ९।

३ 'कर्णेन्द्रियमें सम्पूर्ण सम्वेदन शक्तिको केन्द्रितकर चित्तवृत्ति निरोधके साथ शब्द-ब्रह्ममें प्रवृत होना ही नादमार्ग है'—विस्तृत विवरणके लिए देखिये अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, दूसरा भाग, पृष्ठ ७९६।

अबाध गतिसे रस-सागर कृष्णसे मिलती है। यह उत्कट प्रेम जीवात्मा और परमात्माके नित्य और शाश्वत प्रेमकी ओर सकेत करता है।

काव्य-सोष्ठव

नन्ददासजीके काव्यकी भावभूमि विस्तृत नही है। पुष्टिमार्गीय भक्ति-सिद्धान्तको अधिकसे अधिक निरूपित करनेकी चेष्टामे अनिवार्यतः कवि 'प्रेम और सौन्दर्य'की सीमाओमे ही चक्कर काटता रह गया है। 'मानमञ्जरी', (नाममाला), 'रूपमञ्जरी', 'विरहमञ्जरी', 'भ्रमरगीत', 'श्याम-सगाई', 'रुक्मिणी मगल', सिद्धान्त पञ्चाध्यायी' और 'रास पञ्चाध्यायी' इन सभी कृतियोमे 'प्रेम और सौन्दर्य' वर्णनका ही प्राधान्य है। 'गोवर्द्धन लीला', 'सुदामा चरित' और 'भाषा दशम स्कन्ध', तथा स्फुट पदोमे कविका ध्यान प्रसगके अनुरोधसे अन्य भावोकी ओर भी गया है किन्तु उसकी प्रवृत्ति अन्यत्र रमती हुई नही जान पडती। 'प्रेम'के अन्तर्गत 'सयोग' और 'वियोग' वर्णनकी परम्परा रही है। 'विरह' प्रेमकी कसौटी है। आध्यात्मिक दृष्टिसे भी इसका विशेष महत्त्व है। विरहकी ज्वालामे प्रेमीके मनका कलुष दग्ध हो जाता है और उसका व्यक्तित्व शुद्ध-निर्मल होकर प्रिय-मिलनके योग्य बन जाता है। इसीलिये सभी प्रेमी कवियोने विरहकी तीव्रता और व्यापकताकी ओर अधिक ध्यान दिया है। नन्ददासजीने भी सयोगके क्षणोंको पूरी तन्मयतासे साकार करते हुये भी विरहकी व्यापकतापर अधिक बल दिया है। सयोगके चित्र विशद नही है। **मानमञ्जरीमें** सयोगका चित्र अन्तमे आता है किन्तु मिलनकी अनुभूतियोकी अभिव्यक्ति नहीं है। कविने 'यों राधा-माधव मिले परमप्रेम हरषाइ' कहकर बात समाप्त कर दी है। उसका लक्ष्य तो अमरकोषकी प्रणालीपर नाना नामोकी माला गूँथना था। **'श्याम सगाई'**मे भी अन्तमे राधाको कृष्णका दर्शनमात्र कराकर प्रसग समाप्त कर दिया गया है। लडैती राधा कृष्णके आगमनकी बात सुनकर नेत्र खोलती है। घनस्यामको देखकर लज्जावश बदनपर बिखरे हुए केशोको ठीक कर लेती है। माताको भी समीप देखकर मन्द-मन्द मुसकराकर मुखपर अञ्चल डाल लेती है। **विरहमञ्जरीमे** काल्पनिक विरहकी समाप्तिके बाद व्रजबालाको सयोगकी स्थितिमे 'प्रेममग्न' दिखाकर काव्य समाप्त कर दिया गया है। विरहिणी व्रजबाला

'निरवधि परम प्रेम रस'से सिक्त होकर आनन्द मग्न हो जाती है। **'रूपमञ्जरी'** मे सयोगका सक्षिप्त किन्तु सुन्दर चित्र मिलता है। कृष्ण रूपमञ्जरीसे मादक और मधुर बाते करते हुए उसे कुञ्जमे ले आते है। कुञ्ज क्या है मानो सुखपुञ्ज ही साकार हो गया है। उसमे पुष्पोके ही दीपक जगमगा रहे है। प्रथम समागमके कारण अतिशय लज्जावश रूपमञ्जरी अञ्चलकी वायुसे दीपकोको बुझाना चाहती है। पुष्पदीप क्यो बुझने लगे? अपनी इस भ्रान्तिपर वह और लज्जित होती है और हँसकर प्रियतमके हृदयसे लिपट जाती है। प्रेम-पुलकित होनेके कारण उसे रोमाञ्च हो जाता है। अकुरित रोम पूर्ण-मिलनमे बाधा पहुँचाते है। प्रेम-मुग्ध रूपमञ्जरीको यह अन्तर भी सह्य नही है। कवि और आगे बढता है। कृष्ण प्रियाके अधरोंका चुम्बन लेते है। इस क्रियामे नाककी बेसरिका मोती डोलने लगता है। कवि उत्प्रेक्षा करता है कि मानो वह मोती विवश अधरोको छुडानेके लिए हा-हा खा रहा है।[१] चित्र यही समाप्त हो जाता है। **'भाषा दशम स्कध'**के उन्तीसवे अध्यायमे भी गोपी-कृष्ण-मिलन दिखाया गया है। प्रेमोद्दीपक प्राकृतिक उपकरणोंकी रमणीयताकी पृष्ठभूमिमे गोपियाँ प्रियतम कृष्णसे मिलती है। कविने मिलनके समयकी उन सभी कल-केलियोका वर्णन सहज भावसे कर दिया है जिन्हे सामान्यत श्लील नही कहा जा सकता। इस मिलन-चित्रमे बाह्य क्रीडाओका ही उल्लेख है, आन्तरिक अनुभूतियोका नही। काव्य-सौष्ठवकी दृष्टिसे यह वर्णन अधिक महत्वपूर्ण नही है। **'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी'**मे रासलीला-वर्णनके प्रसगमे कृष्णका अनेक गोपियोके साथ मिलन दिखाया गया है। किन्तु यहाँ कविने पुष्टिमार्गीय मधुर भक्तिके सिद्धान्तोको निरूपित एव उदाहृत करनेमे ही अपनी पूरी

---

१ का कहिये तिहिं कुञ्ज निकाई। जनु सुखपुजन ही करि छाई।

× × ×

पुहपनिही के दीपक जहाँ। जगमग जोति लगी रहि तहाँ।

प्रथम समागम लज्जित तिया। अचल पवन सिरावति दिया।

दीप न बुझहिं बिहँसि बर बाला। लपटि गई पिय उरसि रसाला।

× × ×

प्रेम पुलक अतर तिहिं काला। सो अतर सहि सकति न बाला।

—रूपमञ्जरी।

शक्ति लगा दी है। वह लौकिक शृगार और उज्ज्वल रसका पार्थक्य समझानेमे ही लगा रह गया है। उसका उद्देश्य रासकी नित्यता, प्रेमकी आध्यात्मिकता, वृन्दावनकी दिव्यता, गोपियोकी प्रतीकरूपात्मकता और कृष्णकी निष्काम-शुद्ध रस-रूपता प्रमाणित करना ही प्रतीत होता है। इसीलिए इस रचनामे सिद्धान्त उभर आये है और काव्यानुभूति दब-सी गई है।

'रास पञ्चाध्यायी'मे सयोगका विशद चित्र मिलता है। कविने मिलनके पूर्व गोपियोकी आतुरता, उमग, उत्कट प्रेम पिपासा और सभ्रमात्मक मानसिक स्थितिका चित्रण किया है। गोपियोके आगमनकी सूचना कृष्णको उनके रुनुक-झुनुक नूपुर-निनादसे ही मिल जाती है। उत्सुकता वश उनका मन और नेत्र सिमटकर कानोमे ही आ जाते है। परम रूपवती गोपियोके सम्मुख आ जानेपर तो कृष्ण उन्हे निर्निमेष नेत्रोसे देखने लगते है। गोपियॉ उन्हे चतुर्दिक घेरकर खडी हो जाती है। लगता है बादल विद्युत्की आभासे आवृत होकर शोभित हो उठा हो। जब प्रेम-परीक्षा लेनेके लिए कृष्ण उन्हे घर लौट जानेको कहते है तब उनका सारा उल्लास **'चिन्ता'**मे परिवर्तित हो जाता है। वे सभ्रमित होकर पुतलीकी भॉति खडी रह जाती है। गोपियोके सच्चे प्रेमकी प्रतीति हो जाने पर कृष्णका हृदय द्रवीभूत होता है और कवि विपिन विहारकी सयोगावस्थाका मनोरम चित्राकन करता है। कृष्ण गोपियोके साथ कुजोमे डोलते हैं। यमुना तट-पर विचरण करते है। फूलोंकी माला बनाकर परस्पर पहनते और पहनाते है। कुछ क्षणोके लिए यमुनाके कर-तरगोसे निर्मित शुभ्र मृदु वालुका राशिपर बैठ जाते है। उनका हृदय आनन्दसे उल्लसित है आर वे प्रणय-सुलभ अनेक क्रीडायें आरम्भ कर देते है। चौथे अध्यायमे पुनर्मिलन दिखाकर कविने उत्कट प्रेम-लीलाकी विविध क्रियाओका विशद वर्णन किया है। कोई गोपी उनका पीताम्बर पकड लेती है, कोई उनकी भुजा पकड कर लटक जाती है, कोई अपने अधरोको दॉतोसे दबाकर किञ्चित रोष प्रकट करती है और कोई उन्हे निर्निमेष देखनेमे ही मग्न हो जाती है। पॉचवे अध्यायमे रासलीलाके माध्यमसे कृष्ण-गोपियोका महामिलन दिखलाया गया है। यह मिलनका चित्र बहुत ही सजीव है। कविने रास नृत्यको साकार कर दिया है। यहॉ भी कवि आन्तरिक अनुभूतियोकी अभि-व्यक्ति नहीं करता। नृत्यकी विविध स्थितियो, अनेक वाद्य-ध्वनियो, गोपियोकी

विविध नृत्य-मुद्राओ, कृष्ण की अग-भगियो और प्रणय-सूचक अनेक क्रिया-कलापोके सजीव चित्राकनमे ही उसकी• प्रवृत्ति अधिक रमी है। फिर भी यह निश्चित है कि रास-लीलाका ऐसा रमणीय, गतिमय, सजीव, नाद-सौन्दर्य-युक्त, विशद, भव्य और विविध-प्रणय-क्रिया-कलाप सकुल चित्र अष्टछापके अन्य किसी कविने उपस्थित नही किया है। एक चित्र देखिये—

नूपुर कंकन किंकिनि करतल मजुल-मुरली।
ताल, मृदग, उपग, चग एकहि सुर जुरली॥
मृदुल मुरज टकार, ताल झकार मिलि धुनि।
मधुर जत्र के तार भॅवर-गुजार रली पुनि॥
तैसिय मृदु-पद पटकनि-चटकनि करतारन की।
लटकनि मटकनि झलकनि कल कुण्डल हारनकी॥
सॉवरे पिय के सग लसत यौ ब्रज की बाला।
जनु घन मडल मजुल विलसति दामिनी माला॥[१]

नन्ददासजीके स्फुट पदोमे भी सयोग-शृगारके मोहक चित्र मिलते है। कवि ने सयोगका चित्र प्रायः 'हिंडोराझूलने' और 'होरीखेलने' के समयका ही अकित किया है। हिंडोरेका उल्लास वर्षाऋतुके मोहक प्रभावसे द्विगुणित हो उठा है। कभी यह हिंडोरा गोकुलनाथकी 'पोरि' मे रचा जाता है कभी कालिन्दी के तटपर और कभी सघन मधुबनकी कदम्ब-डालेपर। कभी मोहन राधाके साथ झूलते है और कभी अन्य सखियोके साथ। इस प्रसगमे भी कविने वर्षा ऋतुका उद्दीपक वातावरण, कृष्ण-गोपियोका सौन्दर्य, हिंडोरेकी सज्जा तथा सखियोंका हॅसना, किलकना, तारी देना, लपक कर गले लगना और रमक कर झूमना आदि प्रसगोकी ही उद्भावनाकी है। सूक्ष्म आन्तरिक भावानुभूतियोकी ओर उसका ध्यान नही गया है। यही स्थिति होरीके चित्रोकी भी है। कृष्ण सखाओके साथ और राधा सखियोके साथ कनक पिचकारी लेकर होरी खेलनेके लिए एक दूसरेके सम्मुख आते है। सखियोके नेत्र प्रियतम कृष्णके रूप लावण्य को देखनेमे उलझ जाते है। रग भरी पिचकारियॉ छूटने लगती है। आकाशमे

१. रास पञ्चाध्यायी, पाँचवाँ अध्याय, ग्र०, पृष्ठ २२।

गुलाल और अबीरका चँदोवा टँग जाता है। सखियोका 'दुरना', 'मुडना', 'भगना', 'अपनेको बचाना' और बीच-बीचमे कुटिल कटाक्ष-वाणोंसे कृष्णको घायल करना दर्शनीय है।[१]

नन्ददासजीकी विभिन्न कृतियोके आधारपर दिये गये उपर्युक्त सयोग-शृगार-चित्रोपर विचार करनेसे दो बाते स्पष्ट लक्षित होती है। एक तो यह कि इन चित्रोमे कविकी वृत्ति पूर्णतया नहीं रमी है। इसीलिये रासपञ्चाध्यायीके अतिरिक्त अन्य कृतियोंमे उसने इसका विशद-चित्र नही उपस्थित किया है। दूसरे, सयोग-शृगारके अन्तर्गत आश्रय-आलम्बनकी आन्तरिक अनुभूतियोकी ओर ध्यान न देकर उसने प्रायः प्रणय-क्रीडाके अनुकूल आगिक क्रियाकलापोपर ही अपनी दृष्टि केन्द्रित रखी है।

वियोग-वर्णनमे नन्ददासजी अधिक उत्साहसे प्रवृत्त हुये है। 'विरहमञ्जरी', 'रूपमञ्जरी' 'भ्रमरगीत' 'रुक्मिणीमगल' 'रासपञ्चाध्यायी', आदि सभी कृतियोमे वियोग-शृ गारका ही प्राधान्य है। विरहमञ्जरीमे कविने विरहकी नवीन स्थितियों की उद्भावना भी की है। उसने विरहके चार प्रकारोका उल्लेख किया है—१. प्रत्यक्ष, २. पलकान्तर, ३ बनान्तर, ४. देशान्तर। उत्कट प्रेमकी मनः स्थितिमे कभी-कभी प्रियके सम्मुख रहते हुए भी प्रेमीको उसके वियोगका भ्रम हो जाता है। यही प्रत्यक्ष विरह है। प्रियको निर्निमेष देखते हुये जब कभी पलके गिर जाती है तो एक प्रकारका अन्तराय हो जाता है। यही **पलकान्तर** वियोग है। प्रियके प्रवासी होनेपर **देशान्तर** वियोगकी स्थिति होती है। काव्य-शास्त्रके अनुसार विरहकी तीन स्थितियाँ—पूर्वराग, मान, प्रवास—मानी जाती है। नन्ददासजीका देशान्तर वियोग तो प्रवासवियोग ही है। शेष स्थितियोंकी कल्पना उनकी मौलिकता है। वैसे उन्होने 'रुक्मिणी मगल'मे पूर्वराग-जनित-वियोगका वर्णन भी किया है। 'मान-मञ्जरी' या 'नाममाला'मे राधाके मान-जनित वियोगका वर्णन है। नन्ददासजी काव्य रीतिके ज्ञाता थे। इसीलिये उन्होने मौलिक उद्भावनाके साथ ही काव्य-परम्परामे प्रचलित विरहकी स्थितियोंका भी वर्णन किया है। 'रूपमञ्जरी'मे छ ऋतुओके आधारपर रूपमञ्जरीका विरह वर्णित है। सभी

---

१ पदावली, (फागलीला) पद १७३, ग्र०, पृष्ठ ३८१।

ऋतुये अपने मोहक प्रभावसे विरह-वेदनाको तीव्रतर कर देती है। विरहकी अनुभूतियोका वर्णन परम्परागत ही है। विरहिणी रूपमञ्जरीके लिये पावसमे घनका उमडना, पवनका झकोरा देना, दादुर और झीगुरका शब्द करना, पापी पपीहेका पी-पी पुकारना यह सब दु:सह दु:ख देनेवाला प्रतीत होता है। शरदमे चन्द्रमा अग्नि-वर्षा करता हुआ जान पडता है। वह उन्मादिनी होकर दर्पणमे प्रतिबिम्बित चन्द्रमापर हथौडेकी चोट करनेकी बात कहती है।[१]

इसी प्रकार अन्य ऋतुये भी उसे मर्मान्तक पीडा पहुँचाती है। ग्रीष्मकी भीषण उष्णतामे उसकी विरहाग्नि सतगुनी अधिक हो जाती है। तापाधिक्यसे वक्षस्थलपर शोभित हारके मोती तच-तच कर तडकते है और लावा हो जाते हैं[२]। यहाँपर कविने ऊहात्मक शैलीका प्रयोग किया है। इसी कृतिमे कविने विरहका औचित्य सिद्ध करते हुये कहा है—

हौ जानौ पिय-मिलन ते, विरह अधिक सुख होय।
मिलतै मिलिये एक सौं, बिछुरे सब ठाँ सोय॥[३]

यह रूपमञ्जरीका विरह भी पूर्वराग-जनित ही है। 'भ्रमरगीत'मे विरह-विदग्ध गोपियोकी विवशता प्रियतमका निष्ठुर आचरण देखकर उपालम्भके रूपमे प्रकट हुई है, किन्तु यह उपालम्भ भी अधिक समय तक नही चल पाता। गोपियाँ हे नाथ! हे करुणामय! हे कृष्ण! हे मुरारि! कहकर एक साथ ही रो पडती है। उनका शुद्ध प्रेम उद्धव जैसे ज्ञानीको भी विचलित कर देता है। वे मथुरा लौटनेपर यही कह पाते है—

पुनि पुनि कहै हे स्याम जाय वृदावन रहिये।
परम प्रेम को पुज जहाँ गोपी सँग लहिये॥[४]

---

१ कै अटरनि पर धरि मुकुर, सुकर लोह घनु लेहि।
जबई आनि परै तहाँ, तबई ता सिर देहि॥
—रूपमञ्जरी, ग्र०, पृ० १३५।

२ हारके मुतिया उर झर माहीं। तचि-तचि तरकि लवा ह्वै जाहीं।
—रूपमञ्जरी, ग्र०, पृ० १४०।

३. वही, पृ० १३९।

४ भ्रमरगीत, ग्र०, पृ० १८९।

वदन विलोकनेमे बाधा पहुँची होगी। तब उस सौभाग्यवतीने मुकुर दिखाया होगा और उसमे प्रतिबिम्बित मुखश्रीको देखकर सन्तुष्ट हुई होगी। और आगे बढनेपर उन्हे वह सौभाग्यवती भी एकाकिनी महाविरहकी वेदनासे विह्वल दिखाई पडी। गोपियोने दौडकर उसे भुजाओमे भर लिया। सभी मिलकर यमुना तटपर आई। अत्यन्त कातर होकर वे कहने लगी कि हे नाथ! यदि इसी प्रकार मारना था तो व्रजपर आनेवाली अनेक आपत्तियोसे आपने हमारी रक्षा क्यो की थी? व्रजबालाओको अत्यधिक व्याकुल देखकर कृष्ण उन्हींमे-से निकलकर प्रकट हो जाते है।

उपर्युक्त सभी कृतियोमे विरह-वर्णन करते हुए कविने बराबर उसके आध्यात्मिक पक्षको स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है। वास्तवमे नन्ददास वर्णित प्रेम सर्वत्र आध्यात्मिक प्रेम है। वह जीवात्मा और परमात्माका प्रेम है। वह पुरुष और प्रकृतिकी आनन्दमयी लीलाकी अभिव्यक्ति है। सृष्टि-रचनाके लिये एक ही परब्रह्म द्विधा विभक्त हो गया। दक्षिण अग पुरुष और बाम अग प्रकृति कहलाया। इस प्रकृतिकी सहायताके बिना वह सृष्टि-रचनामे असमर्थ है। इसी प्रकृति या शक्तिसे युक्त होकर ही वह शक्तिमान् है। कृष्ण परब्रह्म है। राधा उनकी प्रकृति (आह्लादिका शक्ति) है। गोपियाँ भगवानकी आनन्द-प्रसारिणी शक्तिरूपा हैं। इन्हे भगवानका वियोग क्षणभरके लिये भी सह्य नही है। भला शक्ति, शक्तिमान्से अलग कैसे रह सकती है? जीवात्मा, परमात्माका वियोग कैसे सहन कर सकती है। इसीलिये तो नन्ददासजीने कहा है—

> जिनके नैन निमेष ओट कोटिक जुग जाहीं।
> तिनके गृह बन कुज ओट दुख अगनित आहीं॥

बार-बार आध्यात्मिकताकी ओर सकेत करते रहनेके कारण काव्यका स्वाभाविक सौन्दर्य कम हो गया है। ज्योही पाठकका मन सयोग-चित्रोकी रमणीयतामे मुग्ध होकर तन्मय होने लगता है, कवि उसे सतर्क करता हुआ कह उठता है—'नाहिन कछु सृगार कथा इहि पञ्चाध्याई'। आध्यात्मिकताके आग्रहसे ही कविने 'प्रत्यक्ष' और 'पलकान्तर' वियोगो की उद्भावना की है। यह वियोग-वर्णन परिस्थितिके अनुरोधसे नही किया गया है। आचार्य शुक्लका यह आक्षेप कि

'सूरका वियोग वर्णन, वियोग वर्णनके लिये ही है, परिस्थितिके अनुरोधसे नही',[1] वस्तुत' सभी अष्टछापी कवियोपर समान रूपसे लागू होता है। इस अस्वाभाविकताका एकमात्र कारण आध्यात्मिक प्रेमकी व्यञ्जनाका प्रयत्न ही है। नन्ददासजीमे प्रेमके उभय पक्षो—सयोग और वियोग—के चित्रणकी पूर्ण क्षमता थी। यदि उन्होंने लौकिक प्रेमके माध्यमसे आध्यात्मिक प्रेमकी व्यञ्जनाको अपना लक्ष्य न बनाया होता तो उनका काव्य अधिक मार्मिक सरस और प्रभावक हो सकता था।

प्रेमके अतिरिक्त अन्य भावोकी अभिव्यक्तिमे कविका मन रमता हुआ नहीं जान पडता। स्फुट पदोमें वात्सल्य वर्णन मिलता है किन्तु बहुत कम। कृष्णकी बाल्लीलाके पद अधिक नही है। कृष्णका पालना झूलना, माखन खाना, वनमे खेलने जाना, माताका सोये हुये कृष्णको आग्रहपूर्वक जगाना, कृष्णका गायोको खिलाना आदि थोडेसे चित्र ही अकित किये गये हैं। इसी प्रसगमे कृष्णके बालरूपका वर्णन भी किया गया है। माताके हृदयकी सूक्ष्म व्यञ्जना नहीं हुई है। दो एक पदोमे कविने इतना ही कह दिया है कि 'बालक कृष्णकी तोतली बोली सुनकर माता यशोदा हर्पित हो जाती है।'[2] 'सुदामा-चरित'मे 'सख्य-भाव' की अभिव्यक्ति हुई है किन्तु काव्यकी दृष्टिसे यह महत्त्वपूर्ण रचना नही है। **'गोबरधन-लीला'**मे 'भय' और 'आश्चर्य' भावोकी अभिव्यक्ति कथा-प्रसगके अनुरोधसे ही हुई है। **'भागवत भाषा दशम स्कन्ध'**मे 'धेनुक-मर्दन','काली-दमन' 'दावानल-पान', 'गोवर्द्धन-धारण' आदि लीलाओमे 'भय', 'आश्चर्य', 'क्रोध' आदि भावोकी व्यञ्जना हुई है किन्तु यह ग्रन्थ भी इतिवृत्तात्मक है और इन लीलाओको कवि चलताऊ ढगसे वर्णित करता गया है। अतः यह निर्विवाद रूपसे कहा जा सकता है कि भावनाओंकी दृष्टि नन्ददासजी केवल प्रम-भावनाके कवि हैं।

---

१. 'भ्रमरगीतसार'की भूमिका, पृष्ठ ७।

२ जननि वचन सुनि तुरत उठे हरि कहत बात तुतरानी।
'नन्ददास' प्रभु मैं बलिहारी जसुमति मन हरषानी॥
—पदावली, पद, ३१, ग्र०, पृष्ठ ३३७।

नन्ददासका सौन्दर्य-अंकन

प्रेम-वर्णनके बाद यदि किसी विषयमे कविकी रुचि अधिक रमी है तो वह है 'सौन्दर्यांकन'। 'कृष्ण', 'शुकदेव','राधा','रुक्मिणी','रूपमञ्जरी', 'गोपी' आदि-के रूप-वर्णनमे कविने पर्याप्त ध्यान दिया है। यह रूप-वर्णन 'नखशिख' परम्पराके अनुसार ही किया गया है। कविने क्रमश. मुख, अलक, भाल, नैन, नासिका, अधर, मसि, गण्ड-मण्डल, मुसकान, कण्ठ, उर, उदर, नाभि, त्रिबली, जानु, बाहु, आदि अगोंका आलकारिक वर्णन किया है। शुकदेव और कृष्णका रूप-वर्णन इसी पद्धतिपर किया गया है। नारी रूप वर्णनमे अगोके साथ उनके सौन्दर्य-वृद्धिमे सहायक अलकारोका भी उल्लेख है। 'रूपमञ्जरी' के सौन्दर्यांकन-में कविने स्फुट अगोके सौन्दर्य-चित्रणके साथ ही शरीरकी पूरी आभाको दृष्टिमे रखकर उसके विभिन्न छाया-बिम्बोका उल्लेख भो किया है। 'रूपमञ्जरी'की छवि-मे द्युति, लावण्य, रूप, माधुर्य, कान्ति, रमणीयता, सौन्दर्य, मृदुता, सुकुमारता सभी कुछ एकत्रित हो गया है। कविने इन छाया-बिम्बोकी व्याख्या भी की है। शरद-चन्द्रमासे विकीर्ण होनेवाली शुभ्र झलमलाहटके सदृश ही स्त्रीके शरीरसे जो आभा फूट पडती है वही द्युति है। मुक्ताफलके पानीकी झाईके सदृश ही ललनाके तनसे प्रकट होनेवाली लुनाई ही लावण्य है। भूषणोके अभावमे नारीके अगोका सहज सौन्दर्य ही रूप है। नारी-सौन्दर्यमे वह कुछ जिसे देखते हुए तृप्ति नहीं होती वही माधुर्य है। बार बार देखनेपर भी जो अनदेखी-सी प्रतीत होती है वही रमणीयता है। सब अगोकी सामञ्जस्यमयी सन्तुलित शोभा ही सौन्दर्य है। जिसे बार बार स्पर्श करनेपर भी मनमे यह भावना बनी ही रहे कि अभी तो कुछ भी स्पर्श नही किया है, वही प्रमदाके तनकी मृदुता है। अमल-कमल-दलोंकी शय्यापर सोनेमे भी जो स्त्री नाक भौ चढावे उसे सुकुमार कहना उचित है। रूपमञ्जरीका सौन्दर्य इन सभी गुणोसे समन्वित होकर अनुपम हो गया है।

कविने गतिशील सौन्दर्यका अकन भी किया है। गोपियाँ कृष्णसे मिलनेकी आतुरतामे सघन बनके बीचसे चली जा रही हैं। उनके श्रवणोमे कुण्डल झलक रहे हैं। उनके नेत्र चपल किन्तु शकित हैं। उनकी अलके विलुलित होकर ललित

छवि विकीर्ण कर रही हैं। गमन करती हुई सखियाँ कभी झलक जाती है कभी ओझल हो जाती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो मेघ-वनमे रह-रहकर बिजली कौंध जाती हो। चित्र देखिये—

> चलत अधिक छवि फबी स्रवनमें कुण्डल झलकैं।
> संकित लोचन चपल ललित छवि विलुलित अलकैं॥
> कहुँ दिखियत कहुँ नाहिं सखी बन बीच बनीयौं।
> बिजुरिनकी-सी छटा सघन बन माझ चली ज्यौं॥[१]

कृष्णके रूप-वर्णनमे कविने विविध अवस्थाओ—बाल, किशोर, युवा—और विविध स्थितियो—खिडकीपर खडे होनेकी स्थिति, गायको खिलानेकी स्थिति, सायकाल बनसे लौटनेकी स्थिति, झूला-झूलनेकी स्थिति, होरी खेलनेकी स्थिति, रास-रचानेकी स्थिति, गोवर्द्धन-धारण करनेकी स्थिति, कालीनागके फनपर नृत्य करनेकी स्थिति—आदि—के सौन्दर्यको उपस्थित करनेकी चेष्टा की है। इस प्रकार इन रूप-चित्रोमे विविधता आगई है। कही तो ये चित्र अपनी मृदुता सुकुमारता और कमनीयतामे अनुपम हैं और कही इनमे ओजस्विता और परुषताका सौन्दर्य साकार हो गया है। अवस्था और स्थिति-भेदके साथ कृष्णके वेश-विन्यासमे अन्तर पडता गया है और उनके रूपके प्रभावमें भी परिवर्तन होता गया है। कृष्णका बाल-रूप देखकर ठगौरी-सी लग जाती है। किशोरावस्था-का रूप देखकर भवन-गमन भूल जाता है, रात्रि और भोरका ध्यान नही रहता और चकचौंधी-सी लग जाती है। गोप-सभा रूपी सरोवरमे पुष्पित युवा कृष्णके रूप-कमलमे मधुसिक्त होनेके लिये गोपियोके दृग-अलि आकुल हो उठते हैं। इसी प्रकार नारी-सौन्दर्य-अकनमें भी चित्रोको विविध अवस्थाओंके अनुकूल बनाया गया है। वय.सन्धिकी स्थितिमे रूप-मञ्जरीके नेत्रोमे लज्जा है। उसके अकुरित कुच अञ्चलमे पूर्णत. नही छिप पाते। उसके उरोज अभी उल्लसित नहीं हैं परन्तु उनके बीच मोतियोकी माला शोभित है। उसके कान काम-कथामें रस लेने लगे हैं। वय:सन्धिकी स्थितिमें बालाका रूप क्या है मानो दीपककी

१. 'रासपञ्चाध्यायी'—ग्र०, पृष्ठ २६।
२. 'रूप-मञ्जरी'—ग्र०, पृष्ठ १२१।

ज्योति है जिसमे नर नारियोके पतग रूपी नेत्र बार-बार उड-उड कर गिर पडते हैं।[१] इस चित्रमे नवीनताका आकर्षण है किन्तु इसके विपरीत सद्यःविरहिणी राधाका मलीन रूप चित्र देखिये—

जनु घन तें बिछुरी बिजुरी, मानिनि-मन-काछे।
किधौ चद सौ रूसि चद्रिका रहि गई पाछे॥[२]

इन रूप-चित्रोंकी एक बडी विशेषता यह है कि कविने वर्ण्य-विशेषके लिये उत्प्रेक्षाके आधारपर सादृश्यमूलक उपमान ग्रहण करते समय अद्‌भुत कल्पना शक्तिका परिचय दिया है। प्रस्तुतके समानान्तर कल्पना-ग्रहीत अप्रस्तुत रूप-विधान इतना उचित सजीव और हृदयग्राही हुआ है कि पूरा चित्र अनुपम आभासे मण्डित होकर जगमगा उठा है। दो-एक उदाहरण अप्रासगिक न होगे। प्रियतम कृष्णकी भुजाओसे कोई नवयुवती गोपिका लिपट गई है, ऐसा प्रतीत होता है मानो शृगारके वृक्षमे छविकी वेलि लिपट गई हो।[३] गोपियोके चञ्चल दृगाञ्चल अञ्चलकी ओटमे इस प्रकार झलक रहे है, मानो स्वर्णकमलकी जालमे खजन उलझ गये हो।[४] यमुना-जल मे विहार करती हुई गोपियॉ कभी-कभी जलके भीतर-भीतर 'बुरि-मुरि' कर कलोल करती है, ऐसा लगता है नवीन मेघ-मण्डलके बीच दामिनी दमकती हुई डोल रही हो।[५] इस प्रकारके अनेक उदाहरण नन्ददासकी कृतियोमे पाये जा सकते है।

क्षण-क्षण नूतनता, भारतीय काव्य-परम्परामे, रूपकी रमणीयताका आधार

---

१. 'रूपमजरी'—ग्र० पृष्ठ १२१।

२. 'रास पञ्चाध्यायी'—ग्र० पृष्ठ १७।

३ कोउ पिय भुज लिपटाय रही नव नारि नवेली।
जनु सुन्दर सिंगार विटप लपटी छवि बली॥
× × —रासपचाध्यायी, ग्र०, पृ० ३०।

४. रुचिर दृगचल चचल अचल मैं झलकत अस।
सरस कनक के कजन खजन जाल परत जस॥
× × —वही, पृष्ठ ३५।

५. जमुना जल में 'बुरि-मुरि' कामिनि करत कलोलैं।
जनु नव-घन के मध्य दामिनि दमकति डोलें॥
—रासपञ्चाध्यायी, स० डॉ० उदयनारायण तिवारी, पृ० १२९।

माना गया है। राधा और कृष्णके सौदर्याकनमे इस प्रकारकी अनुभूतिका उल्लेख नन्ददासजीने भी किया है। वे—"छिनु छिनु बाढै छवि, कैसे कहैं कोऊ कवि" कहकर राधा और कृष्णके प्रत्येक अगमे 'झिलमिलाती हुई झाई' के वर्णनमे अपनी असमर्थता प्रकट करते है।[1]

इस प्रकार नन्ददासजीके रूप-चित्रोपर विचार करनेसे यह भलीभॉति प्रकट है कि वे भारतीय काव्य-परम्पराके अन्तर्गत रूप-वर्णनकी समस्त प्रणालियोसे भली-भॉति परिचित है। उनके सौन्दर्याकनमे विविधता है। उन्होने स्थिर और गतिशील दोनो प्रकारके चित्रोको उपस्थित किया है। रूप-वर्णनके लिए अप्रस्तुत दृश्य-विधान करनेमे वे अद्वितीय है। सौन्दर्य वर्णनमे उन्होने प्रायः 'नख-शिख' परम्पराका ही पालन किया है। सौदर्यके कोमल कमनीय और सुकुमार चित्रोमे उनका मन अधिक रमा है। परिस्थितिके अनुरोधसे उन्होंने परुष-रूप-चित्र भी प्रस्तुत किये है। राधा-कृष्ण का सौन्दर्य नित्य नवीन ओर विकसित होनेवाला है। अतः कवि बार-बार प्रयत्न करनेपर भी उसकी रमणीयताको ग्रहण करनेमे अपनेको असमर्थ पाता है।

वस्तुवर्णन—नन्ददासजीकी कृतियोमे वस्तुवर्णनका अभाव नही है। '**रूपमञ्जरी**'मे उन्होने 'निर्भयपुर' का वर्णन किया है। '**रुक्मिणी-मंगल**'मे 'द्वारिका नगरी'का वर्णन किया गया है। 'रासपञ्चाध्यायी'मे 'वृन्दावन' और 'शरदरजनी'-का वर्णन किया गया है। '**विरहमञ्जरी**' मे 'बारहमासा' और '**रूपमञ्जरी** मे षट्ऋतु वर्णन कवि-परम्परा के अनुसार प्रासगिक रूपमे हुआ है। इस प्रकार नन्ददासजीने वस्तुवर्णनके अन्तर्गत मुख्यत' नगर और प्रकृतिका वर्णन किया है।

नगर-वर्णन, कविने सादृश्यमूलक अलकारोंके आधारपर अतिशयोक्तिपूर्ण ढगसे किया है किन्तु कथाकी सीमाओका ध्यान रखकर अधिक विस्तार नहीं दिया है। नगरवर्णनके अन्तर्गत उपवन, सरोवर, अट्टालिका, भवनोके ऊपरकी पताकाओ, सिंह-पौरि, धौरहर आदिका ही उल्लेख किया है।

प्रकृति-वर्णन भी कवि-परम्पराके अनुसार उद्दीपन रूपमे ही हुआ है। सर्वा-

१ नन्ददास ग्र०, पृष्ठ ३७७।

धिक मोहक वर्णन 'शरद-रजनी' का है। रँगीली शरदके आगमनसे वृन्दावनका सौन्दर्य बढ गया है। शरद-रजनीके मुख (चन्द्रमा) को देखकर ललित-मालती मुकुलित हो गई है जैसे गुणवती बाला नवयौवन प्राप्तकर कमनीय हो उठती है। अनेक नवीन पुष्पोके विकसित हो जानेसे ऐसा प्रतीत होता है मानो छबीली शरद-रात्रि हँसती हुई आ गई हो। इसी समय चन्द्रमाका बिम्ब आकाशमे ऊपर उठ आता है। लगता है प्रियाका मुख है जिसे प्रियने कुमकुमसे मण्डित कर दिया है। चन्द्रमाकी कोमल किरणोकी अरुणिमा बनमे व्याप्त हो रही है, लगता है कामदेवने फाग खेला है इसीमे गुलालकी लालिमा चारो ओर फैल गई है। कुञ्ज-रन्ध्रो से छनकर स्फटिकके समान शुभ्र ज्योत्सना विकीर्ण हो रही है, मानो सुन्दर वितान तन गया हो। चन्द्रमाको 'रस-रास-सहायक' कहकर कविने इस सम्पूर्ण प्रकृति-सौन्दर्यके उद्दीपन रूपको ही महत्व दिया है।

'वृन्दावन वर्णन' मे कविने प्रकृतिकी नैसर्गिक शोभाका बिम्ब तो कम उपस्थित किया है उसकी महिमाका गान अधिक किया है। वृन्दावनके 'खग, मृग, कुज, लता, वीरुध, तृन' सभी सतत शोभायुक्त रहते है। उसमे निवास करनेवाले जीवोमे किसी प्रकारका विरोध नही है। वे काम-क्रोध-मद-लोभ-से रहित हैं। वहाँ नित्य वसन्त-श्री व्याप्त रहती है। त्रिभुवनके समस्त काननोका सौंदर्य वहाँ एक साथ ही बिखरा हुआ है। वहाँके सभी तरु, कल्पतरुके समान हैं, भूमि, चिन्तामणिके समान है। इस प्रकारकी दिव्य विभूतियोसे युक्त वृन्दावन चैतन्य स्वरूप ही है। केवल कृष्णकी ललित लीलाकी आधारभूमि बननेके लिये उसने जडता धारण कर ली है।

नन्ददासजीके प्रकृति-वर्णनकी तीन प्रमुख विशेषताएँ लक्ष्य की जा सकती है एक तो उनके वर्णनको कलात्मकता प्रदान करनेवाले सादृश्यमूलक अलकार हैं। ऐसा कदाचित् ही कोई दृश्य हो जिसके लिये कविने अप्रस्तुत विधान न किया हो। दूसरे, कविकी दृष्टिमे प्रकृति प्रभुकी नित्यलीलाकी आधारभूमि होनेके कारण उसका एक अभिन्न अग है। वह लीलाके मूलमे निहित आनन्द और आह्लादकी भावनाको उद्दीप्त करनेमे सहायकका कार्य करती है। तीसरे वह चेतन ब्रह्मका ही अविकृत परिणाम होनेके कारण स्वय भी तात्विक रूपसे चेतन ही है।

अभिव्यक्ति-सौन्दर्य (कला-पक्ष)—नन्ददासकी रचनाओमे भाव और कलाका अद्‌भुत समन्वय हुआ है। यद्यपि कविकी सभी रचनाओमे कलात्मक सौष्ठव नही मिलता किन्तु जिन दो एक कृतियोंमे इसका उत्कर्ष हुआ है उन्हे सरलतापूर्वक व्रजभाषाकी श्रेष्ठ कृतियोमे स्थान मिल सकता है। कविकी सर्वोत्कृष्ट रचना 'रासपञ्चाध्यायी' है। इस ग्रन्थमे भावोको व्यक्त करनेमे कविने उच्चतम कलात्मकताका परिचय दिया है। अभिव्यक्तिको सुन्दर बनानेके लिये कविगण 'रीति' 'गुण', 'अलकार' 'वक्रोक्ति' तथा शब्द-शक्तिके विविध रूपोंका आधार लेते है। काव्यमे मूलवस्तु अनुभूति है। अनुभूत तत्वका व्यक्त करनेमे उसके स्वरूपके अनुसार अभिव्यक्तिकी जो विशिष्ट प्रणाली ग्रहण करनी पडती है वही 'रीति' है। नन्ददासजीका अनुभूत विषय 'प्रेम' है। प्रेम विश्वव्यापक होनेपर भी बडा ही मधुर, सलज्ज और सुकुमार पदार्थ है। इसलिये नन्ददासजीने उसकी अभिव्यक्तिमे 'पाञ्चाली रीति' का प्रयोग किया है। क्योंकि—"मधुरा सुकुमाराञ्च पाञ्चालीम् कवयो विदु." । 'गुण', रीतिको प्रशस्त करते है। इसलिये नन्ददासजीने 'माधुर्य' और 'प्रसाद' गुणोको ही ग्रहण किया है। रासपञ्चाध्यायीमे तो सर्वत्र इनकी स्थिति देखी जा सकती है। अनुभूतिको व्यक्त करनेमे भाषागत शब्द-विधान ही प्रधान साधन है। शब्द-विधानको 'सुष्ठु' 'प्रभावोत्पादक' 'रमणीय' और 'आकर्षक' बनानेके लिये अनेक प्रकारके चमत्कारवर्द्धक प्रयोगोका आधार लेना पडता है। यही अलकार हैं। नन्ददासजीने अनुभूतिको उत्कर्ष देनेके लिये ही अलकारोंका प्रयोग किया है। प्रस्तुत विषय (अनुभूत तत्त्व) को प्रभावोत्पादक बनानेके लिये उसके समानान्तर रूप, गुण, धर्म, प्रभाव आदिकी समताके आधारपर अप्रस्तुत-विधान करना पडता है। उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, भ्रम, सन्देह आदि अलकार साम्यमूलक अप्रस्तुत विधानपर ही आधृत है। नन्ददास-जीने उपर्युक्त अलकारोका प्रयोग ही अधिक किया है। उनका सर्वप्रिय अलकार उत्प्रेक्षा है। कही-कही 'प्रतीप', 'दृष्टान्त', 'अतिशयोक्ति', 'असगति', 'विभावना' आदि अलकार भी प्रयुक्त हुए हैं। इन अलकारोका प्रयोग कोरी कलाबाजीके लिये नहीं किया गया है। उचित स्थानपर प्रयुक्त होनेके कारण इनसे वर्ण्य वस्तुके सौन्दर्यमें वृद्धि हुई है। उदाहरणके लिये कुछ अलकारोका उदाहरण नीचे प्रस्तुत किया जा रहा है—

उत्प्रेक्षा—सुन्दर पियका बदन निरखि को सो जु न भूल्यौ।
रूप सरोवर मॉहि सरद अबुज जनु फूल्यो॥

—रासपञ्चाध्यायी

× × ×

नव मर्कत-मनि स्याम कनक-मनिगन ब्रज बाला।
वृन्दाबन कों रीझि मनहुँ पहिराई माला।

—रासपञ्चाध्यायी

रूपक—तिय-तन-सर बालापन पानी। जोबन-तरनि-किरनि अधिकानी।

—रूपमञ्जरी

उपमा—सुनि उमगीं अनुराग भरी सावन-सरिता-जस।

—सिद्धान्तपञ्चाध्यायी

प्रतीप—मृगज लजे खंजन लजे, कंज लजे छवि छीन।
दृगन देखि दुख दीन है, मीन भये जल लीन॥

—रूपमञ्जरी

सामान्यतः कविने परम्परागत उपमानोका ही प्रयोग किया है किन्तु वर्ण्य-वस्तुको ध्यानमे रखकर उनकी योजना इतने सुन्दर ढगसे की है कि सारा वर्णन अनुपम कान्तिसे मण्डित हो गया है। उसकी उत्प्रेक्षाएँ बेजोड हैं। उपर्युक्त प्रथम उत्प्रेक्षापर विचार कीजिये। कवि कृष्णका सौन्दर्य चित्रित करना चाहता है, यों तो प्रियके पूरे शरीरमे रूपकी आभा है किन्तु उसमे उद्भासित मुखमण्डलकी द्युति ऐसी है मानो सरोवरमे शरदकालीन कमलपुष्प उत्फुल्ल हो रहा हो। उत्प्रेक्षाका दूसरा उदाहरण कविकी अद्भुत कल्पना-शक्तिका परिचायक है। मण्डलाकार नृत्य हो रहा है। चारो ओर स्वर्ण-सी कान्ति विखेरती हुई गोपियॉ मणिखचित स्वर्णमाला-सी प्रतीत हो रही हैं। उनके बीचमे श्यामवर्ण कृष्ण नीलमणिकी-सी आभा विकीर्ण कर रहे हैं। कवि कल्पना करता है कि कनक मणिगणके बीच मरकत मणि डालकर निर्मित यह माला वृन्दावनके अद्भुत सौन्दर्यपर रीझकर उसे पहना दी गई है। इस प्रकारकी उत्प्रेक्षाएँ 'रासपञ्चाध्यायी' मे अनेक हैं। अन्य अलकारोका प्रयोग भी काव्य-सौन्दर्यकी वृद्धिमे सहायता पहुँचानेके लिये ही

किया गया है किन्तु यह निःसकोच भाव कहा जा सकता है कि नन्ददासजीकी कालात्मकताका श्रेय उनकी उत्प्रेक्षाओको ही है। भ्रमरगीतमे कविकी उक्ति-वक्रता देखते बनती है। गोपियोने बडे ही सहज ढगसे वक्र उक्तियॉ कही हैं। उनके तर्क सीधे किन्तु प्रभावक है। वे कहती है—

जो मुख नाहिन हुतो कहौ किन माखन खायौ ?
पायन बिन गो सग कहो को बन-बन धायौ ?

भला उद्धव इसका क्या उत्तर देते ? कुब्जा और कृष्णके सम्बन्धको लेकर उन्होने बडा ही चुभता हुआ व्यग्य किया है। कृष्ण त्रिभगी लाल है। भला गोकुलमे उनकी जोडी कहॉ मिलती ? मथुरामे उन्हे अपने रूप गुण-शीलके अनु-रूप अच्छी जोडी मिल गई है—

गोकुल में जोरी कोऊ पावत नाहिं मुरारि।
मनो त्रिभंगी आपु है करी त्रिभंगी नारि॥

इस प्रकार नन्ददासजीने 'पाञ्चाली रीति'की सुकुमारता, 'माधुर्य और प्रसाद' गुणोकी प्राञ्जल्ता, 'साम्यमूलक अलकारो'की चमत्कारिता, और सहज तर्क-व्यग्य प्रधान 'वक्र उक्तियो'की मार्मिकताके आधारपर अपनी रचनाओमे कलात्मकता लानेकी चेष्टा की है।

भाषा और शैली—नन्ददासजीकी सभी रचनाएँ ब्रज भाषामे ही लिखी गई हैं। ब्रजभाषापर उनका पूर्ण अधिकार है। ब्रज भाषाके साथ ही कहीं-कही पूर्वी हिन्दीके प्रयोग भी मिल जाते हैं। उसमे अरबी, फारसीके भी शब्द कहीं-कहीं प्रयुक्त हुये हैं। ऐसा मध्ययुगके प्रायः सभी कवियोने किया है। उनकी कृतियोंमे कहावतों, मुहावरों और लाक्षणिक प्रयोगोकी भी कमी नही है। उनकी काव्य-भाषाके पूरे स्वरूपपर ध्यान दिया जाय तो उसके तीन रूप लक्ष्य किये जा सकते है। (क) स्तुतियोकी सस्कृत गर्भित भाषा (ख) गतिशील चित्रोकी नाद सौन्दर्य-युक्त प्रवाहमयी भाषा (ग) ब्रजके घरेलू शब्दोसे युक्त सरस मधुर भाषा। श्री गुरु विट्ठलनाथकी स्तुतियोंमें कविने सस्कृत गर्भित भाषाका प्रयोग किया है—

जयति रुक्मिनी नाथ, पद्मावति पति, विप्रकुल-छत्र आनन्दकारी।
दीप वल्लभ वस, जगत निस्तार करन, कोटि उडुराज सम ताप हारी।

मुक्तिकाछीय जन भक्तिदायक प्रभू सकल सामर्थ गुन गनन भारी।
जयति पति भक्त-जन, पतित-पावन करन, कामिजन कामना पूर्नचारी।

इस प्रकारके छन्दोमे सस्कृतकी पदावलीका प्रयोग करते हुये भी कविने शब्दोका उच्चारण प्रायः व्रज भाषाके अनुकूल ही रखा है। 'क्षत्र'के स्थानपर 'छत्र', 'वश'के स्थानपर 'बस', 'काक्षी'के स्थानपर 'काछी', 'पूर्ण'के स्थानपर 'पूर्न' प्रयोग इसी नियमके अनुसार हुये है।

गतिशील चित्रोकी भाषामे अद्भुत प्रवाह, शब्द-चयन, प्राञ्जलता, नाद-सौन्दर्य, सजीवता एव चित्रण-क्षमता है। 'रास-नृत्य'का पूरा चित्र इसी प्रकारकी भाषामे उपस्थित किया गया है—

साँवरे पिय सँग निरतत चचल व्रज की बाला।
मनु घन-मडल खेलत मजुल चपला माला॥
चचल रूप लतनि सँग डोलति जनु अलि-सैनी।
छबिली तियनके पाछें आछें विलुलित बेनी॥
मोहन पियकी मलकनि ढलकनि मोर मुकुट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की॥

एक अन्य चित्र देखिये—

देखो री नागर नट निरतत कलिंदी-तट गोपिनके मध्य राजै मुखकी लटक।
काछनी किंकनी कटि पीताम्बरकी चटक (मटक) कुंडल-किरन रवि-रथकी अटक॥
तत थेई तत थेई सबद सकल घट उरप तिरप मानो पदकी पटक।
रास मध्य राधे राधे मुरलीमें येई रट 'नंददास' गावै तहाँ निपट निकट॥

इन चित्रोको देखकर यही प्रतीत होता है कि सचमुच कवि कही समीपसे ही पूरी रासलीला देख रहा था और अब वह उन अनुभूत चित्रोके कल्पनात्मक बिम्बोको मानसी छायाको ही व्यक्त कर रहा है।

व्रज-बोलीके घरेलू शब्दोसे युक्त होकर कही-कही नन्ददासजीकी काव्य-भाषा बडी ही मधुर हो गई है। 'बीर', 'लरिका', 'पूत', 'रुख', 'रूसि' आदि शब्द

ब्रज-बोलीके घरेलू शब्द है।[1] इन शब्दोंका प्रयोग कविने भाषाको जीवनके निकट लानेके लिये किया है—

'अरी बीर। चलि जाउ कहौ इहि विनती मेरी'
जो जीवैगी कुँवरि, बीर मैं, करिहौ तेरी॥'

—स्यामसगाई, ग्र०, पृ० १९७

× × ×

'नँद-टोटा लगरमहा, दधि माखन कौ चोर।
कहत सुनत लज्जा नहीं करत और ही और कि लरिका अचपलौं'

—स्यामसगाई, ग्र०, पृ० १९५

× × ×

'किधौ चद सों रूसि चन्द्रिका रहि गई पाछे'

—रासपञ्चाध्यायी, ग्र०, पृ० १७

नन्ददासजीके सभी ग्रन्थोकी भाषामे समान सौष्ठव नही है। 'गोवर्द्धनलीला', 'सुदामाचरित', 'भाषा दशम स्कन्ध', 'विरहमञ्जरी', 'रसमञ्जरी' आदि ग्रन्थोमे भाषाका प्राञ्जल प्रवाहमय प्रौढ रूप नही मिलता। 'स्याम सगाई'की भाषामें सरलता, मार्दव, और घरेलूपन अधिक है। 'भ्रमरगीत'की भाषामे तर्कशक्ति, सगीत, और प्रवाह सभी कुछ मिलता है। पदोकी भाषामे सगीत तत्त्वका प्राधान्य है। 'सिद्धान्तपञ्चाध्यायी' और 'रासपञ्चाध्यायी' की भाषाका एक-एक शब्द अपने स्थानपर जडा हुआ है। प्रवाह, अलकृति, सगीतात्मकता, मधुरता, प्राञ्जलता और प्रौढता सभी दृष्टियोसे इन कृतियोकी भाषा श्रेष्ठ है।

शैली—नन्ददासजीकी सभी कृतियोको लेकर देखा जाय तो उनमें कुल चार प्रकारकी शैलियाँ मिलती है। प्रबन्धशैली, गीतिमुक्तक शैली, लक्षण-लक्ष्य निरूपक मुक्तक शैली और कोष-शैली। अधिकाश रचनाएँ प्रबन्धशैलीमें हैं। 'सुदामाचरित' और 'गोवर्धन लीला' चौपाई छन्दमे लिखे गये लघु आख्यानक प्रबन्ध हैं। 'अनेकार्थमजरी' और 'मानमजरी' (नाममाला) दोहा छन्दमें लिखी हुई कोश-शैलीकी रचनाएँ है। 'मानमजरी' के अन्तर्गत राधाके मानकी

---

१ अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय, पृष्ठ ८७९।

साकेतिक कहानी भी चलती रहती है। अतः इसमे एक प्रकारकी प्रबन्धात्मकता भी आ गई है। 'विरहमजरी' और 'रूपमजरी' दोहा-चौपाई छन्दोमे विरचित आख्यानक प्रबन्ध है। 'रूपमजरी' भारतीय पद्धतिकी प्रेमकथा है। 'विरहमजरी' एक प्रकारका दूत-काव्य है। इसमे चन्द्रमाको दूत बनाकर विरहिणी व्रज-बालाने प्रियतम (कृष्ण) के पास भेजा है। 'रसमजरी' नायिकाभेदका ग्रन्थ है। इसमे भी दोहा-चौपाई छन्दोका प्रयोग किया गया है। इसे लक्षण-लक्ष्य-निरूपक मुक्तक शैलीकी रचना कह सकते है। 'भाषा दशम स्कन्ध' की रचना भी प्रबन्ध शैलीमे हुई है। इसमे भी दोहा चौपाईका ही प्रयोग किया गया है। इसमे भागवतके आधारपर अनेक प्रासगिक आख्यानोको निबद्ध किया गया है। 'रुक्मिणी मगल' रोला छन्दमे लिखित प्रबन्धात्मक रचना है। 'रासपञ्चाध्यायी' और 'सिद्धान्त पञ्चाध्यायी' भी प्रबन्धशैलीमे ही लिखी गई है। वैसे इनकी कथात्मक सरसता देखते हुये यही कहना पडता है कि मिलन विरहकी मधुचर्यासे भरे हुए ये आख्यान सर्वथा गीतिमुक्तकोचित है। 'श्यामसगाई' एक लघु प्रबन्ध है। इसमे रोला दोहाके साथ अन्तमे दस मात्राकी टेक ‹ गाकर सगीता-त्मकताका भी समावेश कर दिया गया है। 'भ्रमरगीत' की रचना सवाद शैलीमे हुई है किन्तु यह सम्वाद किसी बृहत् आख्यानका अग न होकर स्फुट उक्तियो-पर आधृत है। अत. इसे मुक्तक काव्य ही कहा जायगा। इसमे भी रोला दोहाके साथ दस मात्राकी टेक प्रयुक्त हुई है। इन सुनियोजित रचनाओके अतिरिक्त नन्ददासजीके अनेक स्फुट पद हैं जिनकी रचना नित्य कीर्तनके लिये की गई है। ये सभी पद (जिनकी सख्या २०० के लगभग है) गीति मुक्तक शैलीमे लिखे गए है। नन्ददासजीका प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकारकी काव्य-शैलियोपर अच्छा अधिकार था, इसमे सन्देह नहीं।

नन्ददासजीके विषयमें नाभादासकी उक्ति—

लीलापद रस रीति ग्रन्थ रचनामें नागर।
सरस उक्ति रस जुक्ति, भक्ति रस ज्ञान उजागर॥
प्रचुर पयधि लौ सुजसु रामपुर ग्राम निवासी।
सकल सुकुल सवलित, भक्त-पद-रेनु-उपासी॥

चन्द्रहास अग्रज सुहृद, परम प्रेम पथमें पगे ।
श्री नन्ददास आनन्द निधि रसिक सुप्रभुहित रँगमँगे ॥

पठनीय सामग्री

अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय भाग १–२	डॉ० दीनदयालु गुप्त
अष्टछाप परिचय	श्री प्रभुदयाल मीतल
नन्ददास ग्रन्थावली	श्री व्रजरत्नदास
रास पञ्चाध्यायी	स० डॉ० उदयनारायण तिवारी
नन्ददास, प्र० भाग, द्वि० भाग	स० श्री उमाशंकर शुक्ल
हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा
श्री राधा-माधव-चिन्तन	श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार

तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदासजी हिन्दी काव्याकाशके उज्ज्वलतम नक्षत्रके रूपमे मान्य हैं। मध्ययुगमे भारतीय सस्कृतिके उदात्त रूपको उसकी समग्रतामे व्यक्त करनेवाले ये अकेले महात्मा है। आपकी रचनाओमे भारतीय जीवन-मर्यादाका उत्कृष्टतम रूप साकार हुआ है। अध्यात्म, दर्शन, धर्म, नीति, लोक-मर्यादा, काव्य रीति आदि मानव-चेतनाके विविध रूपोंका समन्वित उत्कर्ष आपकी काव्य-साधनाकी प्रमुख विशेषता है। आपकी कृतियोका अध्ययन भारतीय जनताके मस्तिष्क, हृदय और प्राणोंका अध्ययन है। जन जीवनपर इतना व्यापक प्रभाव किसी अन्य कवि, भक्त या महात्माका नहीं है। आचार्य शुक्ल जैसे विवेकशील द्रष्टाने 'काव्यके प्रत्येक क्षेत्र मे इन्हे उस स्थानपर देखा, जिस स्थान पर उस क्षेत्रका सबसे बडा कवि है।'[1] ऐसे महिमामय व्यक्तित्वकी सृजनात्मक प्रतिभाके शुभ्र प्रकाशमे अपनी लघुमतिको विमल कर लेनेका लोभ भला कौन सवरण कर सकता है! अस्तु—

तुलसीदासके दार्शनिक सिद्धान्त

तुलसीदासजी तर्कके बलपर जीवन और जगत्‌के सत्यका उद्घाटन करनेवाले आचार्य या पण्डित नही थे। उन्हे तो कलि-मलका शमन करना था। इसके लिए विधि-निषेध-मय रामकथाका गान ही उनका लक्ष्य था। वे जानते थे कि कोरा पाण्डित्य वाक्य ज्ञान मात्र है, इसमे अत्यन्त निपुण होनेपर भी ससार-सागरको पार नहीं किया जा सकता।[2] 'भव तरनेके लिए' दास्य-रति (सेवक-सेव्य-भाव) ही एक मात्र श्रेष्ठ साधन है।[3] किन्तु रति या प्रीतिका आधार

१. तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड, प्रस्तावना, पृष्ठ २४०।

२. 'वाक्य ज्ञान अत्यन्त निपुन भव-पार न पावै कोई।'

—विनयपत्रिका, पद १२३, ग्रथ पृष्ठ ५१९।

३. 'सेवक-सेव्य भाव बिनु भव न तरिय उरगारि।'

—मानस।

प्रतीति (विश्वास) है और प्रतीति, पूरी जानकारी (ज्ञान) के अभावमे स्थायी नहीं हो सकती। इसीलिए रामसे प्रीति करनेके पहले उन्होने 'राम-तत्त्व' को समझा था। उनकी कृतियोमे उनके दार्शनिक सिद्धान्त भी बिखरे हुए मिलते है और उनके अध्ययनके आधारपर इन दार्शनिक मान्यताओंको स्पष्ट किया जा सकता है—

तुलसीदासजीके सिद्धान्तोपर विचार करनेवाले विद्वानोमे मतैक्य नही है। कुछ विद्वान् उन्हे शाकरमतानुयायी अद्वैतवादी मानते है और कुछ उन्हे रामानुजाचार्यानुयायी विशिष्टाद्वैतवादी समझते है। तीसरा मत कुछ इस प्रकार व्यक्त किया गया है—"परमार्थ दृष्टि से—शुद्ध ज्ञानकी दृष्टिसे—तो अद्वैत मत गोस्वामीजीको मान्य है, परन्तु भक्तिके व्यावहारिक सिद्धान्तके अनुसार भेद करके चलना वे अच्छा समझते है।[1] इन विवादोमे न पडकर यदि तुलसीदासजीके कथनोको तत्कालीन ऐतिहासिक और सामाजिक पृष्ठभूमिमे रखकर देखा जाय तो उनके सिद्धान्तोको समझनेमे सरलता होगी। आठवी शतीमे ही आचार्य शकर अद्वैत-तत्त्वका निरूपण कर चुके थे। उनके अनुसार 'एक शुद्ध-बुद्ध नित्य मुक्त परब्रह्मके सिवा दूसरी कोई भी स्वतन्त्र और सत्य वस्तु नही है। दृष्टिगोचर भिन्नता मानवीय दृष्टिका भ्रम या मायाकी उपाधिसे होनेवाला आभास है'। शकराचार्यने यह व्याख्या मूलत. बौद्धदर्शनके 'शून्यवाद'को आत्मसात् करनेके लिये की थी। शून्यवादियोके अनुसार 'शून्य' ही परमार्थिक सत्य है। सत्ता दो ही प्रकारकी हो सकती है। भावात्मक (जो सतत रूपसे विद्यमान रहती है) और अभावात्मक (जो विद्यमान् नही रहती) परमार्थिक सत्य न तो भावात्मक है और न अभावात्मक। इसलिए वह 'शून्य' है। जगत्की सत्ता तो अज्ञानके कारण है। यह साव्रतिक (मायाजन्य) सत्ता है।[2] आचार्य शकरने 'ब्रह्मवाद'की प्रतिष्ठा इसी आधारपर की है। उन्होने जगत्को साव्रतिक सत्य ही माना। सव्रतिके स्थानपर उन्होने 'माया' शब्दका प्रयोग किया। 'शून्य'के स्थानपर उन्होने 'ब्रह्म'की प्रतिष्ठा की। 'शून्य'मे नास्तिकताकी गन्ध है। 'ब्रह्म' भावात्मक सत्ता है।

१ तुलसी ग्रन्थावली, तीसरा भाग, प्रस्तावना, पृष्ठ १४५। देखिये, आचार्य शुक्लका निबन्ध।
२ भारतीय दर्शन, पृष्ठ २२०।

वास्तवमें वह 'शून्य'की ही आस्तिक दर्शनके अनुकूल की गई व्याख्या है। इस प्रकार आचार्य शकरने बडे कौशलसे नास्तिक दर्शनके स्थानपर वेदान्तमूलक आस्तिक दर्शनकी प्रतिष्ठा की। किन्तु यह व्याख्या बुद्धि-वैभवका परिणाम है। यह सत्यको शुद्ध ज्ञानके आधारपर निरूपित करनेकी चेष्टाका फल है। यह लोक-दृष्टिसे जीवन और जगत्के रहस्यको सुलझानेकी चेष्टाका परिणाम नही है। बौद्धोने जगत्को दु खमय माननेके कारण उसके अस्तित्वको ही सावृतिक सिद्ध कर दिया था। बौद्धमत मूलतः निवृत्तिमूलक है। अत उनके लिये यह व्याख्या ठीक ही थी। शाकरमत क्रमश· निवृत्तिकी ओर ले जाता है। पूर्ण ज्ञानकी अवस्थामे ही आचार्य शकर जगत्की सत्ताका बाध मानते है। आचार्य शकरके बाद दसवी शतीमे तमिल प्रान्तमे भक्ति-भावनाका अभ्युदय हुआ। भक्ति-मार्ग लोक-कल्याण या जनसाधारणको शान्ति प्रदान करनेवाला मार्ग है। यह जनताका धर्म है। इसमे उपासक-उपास्य; भक्त-भगवान् या आश्रय-आलम्बन दोनोको स्वीकार करके चलना पडता है। यह प्रवृत्तिमूलक धर्म है। जगत्की समस्याओको झेलते हुए जीवमात्रको परमशान्ति कैसे प्राप्त हो? इसका उत्तर एकमात्र भक्ति-मार्ग ही देता है। भारत-भूमिमें वेद-विरोधी मत नही पनप सकते। इसीलिये समय-समयपर आचार्योंको अनेक धर्मोंकी वेद-मूलकता सिद्ध करनी पडी है। भक्ति-मार्गको भी वैष्णव आचार्योंने वेद-मूलक सिद्ध किया। इस प्रयत्नमे आचार्य शकरके 'केवलाद्वैत' से उन्हे थोडा-बहुत अपनेको अलग करना पडा। इसीलिए आचार्य शकरके परवर्ती भक्तो और आचार्योंने उनसे भिन्न मतोकी स्थापना की। तुलसी-दासजीका सारा प्रयत्न जीवनकी समस्याओका सरलतम समाधान प्राप्त करना था। इसके लिये भक्ति ही श्रेष्ठ-साधन है। भक्ति-मार्ग सेवक-सेव्यके व्यावहारिक अन्तरको स्वीकार करके ही चलेगा। तुलसीदासजी भी तत्त्वतः द्वैत-बुद्धि या द्वैत-भावनाको स्वीकार नहीं करते। उन्होने अनेक स्थलोपर राम-भक्तिके विमल जलमे चित्तको प्रक्षालित करके 'द्वैत-जनित-ससृति-दुःख' को दूर करनेकी बात कही है।[१] 'द्वैत-रूप तमकूप' से उद्धार करनेके लिये भगवानसे प्रार्थना की है[२]।

१. विनय पत्रिका, पद-सख्या १२४।

२ विनय पत्रिका, पद-सख्या, ११३।

साधु-सेवाको 'द्वैत-भय' दूर करनेका साधन कहा है[1]। 'द्वैत-भावना' को घोर अज्ञानका परिणाम बताया है[2]। यही-नही वे जड-चेतनके भेदको भी मृषा मानते है[3]। किन्तु अद्वैतकी स्थितितक मनके समस्त विकारोको त्याग करके ही पहुँचा जा सकता है। मानसिक विकारोका शमन एकमात्र भक्तिके आधारपर ही सम्भव है। जोग, जप, ज्ञान, विज्ञान, सबसे श्रेष्ठ सबसे सरल और सबसे सुगम मार्ग भक्तिका ही है।[4] सेवक और सेव्य या भक्त और भगवान्‌के व्यावहारिक भेदको स्वीकार करके चलनेवाला भक्तिमार्ग भी अन्तत. अद्वैतता की स्थितितक पहुँचा देता है।

ससारके दु खोसे त्राण पानेके लिये 'जीव' को भक्ति-मार्गका अनुसरण करना होगा। क्योंकि 'जीव' जड है। वह मायाके आधीन है।[5] जबसे वह हरिसे अलग हुआ है तभीसे उसने शरीरको ही अपना वास्तविक निवास मान लिया है।[6] तात्त्विक रूपमे जीव ईश्वरका अश है। वह चेतन, अमल, अवि-नाशी और सहजानन्द रूप है किन्तु माया-वश होनेके कारण ही उसे सासारिक दु ख सहन करने पडते है। यदि सबमे एकरस ज्ञानका उदय हो जाय तो ईश्वर

१ विनय पत्रिका, पद सख्या, १३६।

२ क्रोधकि द्वेत-बुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अग्यान

—मानस, उत्तरकाण्ड।

३ जड चेतनहिं ग्रन्थि पडि गई, यदपि मृषा छूटत कठिनई।

—मानस, उत्तरकाण्ड।

४ जोग जप ज्ञान विज्ञान तें अधिक अति,
अमल दृढ भगति दै परम सुख भरहुगे।

—विनय पत्रिका, पद २११।

५ हौं जड जीव, ईस रघुराया।
तुम माया पति, हौं बस माया॥

—विनय पत्रिका, पद १७७।

६ जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो, तब ते देह गेह निज जान्यो।

—विनय-पत्रिका, पद १३६।

७ ईश्वर अश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। —मानस।

और जीवमे किसी प्रकारका भेद न रह जाय।[१] यह भेद तो माया-जनित है। मायासे भ्रमित जीव न मायाको जानता है न अपनेको और न ईश्वरको ही।[२] हर्ष-विषाद, ज्ञान-अज्ञान आदि द्वन्द्वात्मक अनुभूतियाँ तथा अहकार-अभिमान ये सब जीवके धर्म है[३]।

'मै-मेरा तू-तेरा' यह भावना ही माया है।[४] अर्थात् 'अहबुद्धि', 'ममबुद्धि' और 'भेद-बुद्धि' ये सब मायाके ही परिणाम है। इन्द्रियो और मनके समस्त विषय मायाके विस्तारके अन्तर्गत ही है।[५] यह माया दो प्रकारकी है। एक **विद्या**, दूसरी **अविद्या**। अविद्या माया अति दुष्टा और दु खरूपा है। इसीके वशमे आकर जीव ससाररूपी कूपमे पडा रहता है। दूसरी (अर्थात् 'विद्या') ससारकी रचना करती है। वह त्रिगुणात्मिका है। (सत, रज, तम) इसके पास अपनी शक्ति नही है। यह प्रभुकी प्रेरणासे ही ससार-रचनामे समर्थ है।[६] माया स्वय जड है। यह तो रामकी (ब्रह्म) सत्यतासे ही सत्य प्रतीत होती है।[७] यह रामकी दासी है। विचार करनेपर यह भी मिथ्या है।[८] यह माया ही ब्रह्मकी

---

१. जौ सबके रह ग्यान एक रस। ईश्वर जीवहिं भेद कहहु कस।

—मानस, उत्तरकाण्ड।

२ माया ईस न आपु कहँ जान कहिअ सो जीव।

—मानस, अरण्यकाण्ड।

३. हरष विषाद ग्यान अग्याना। जीव धरम अहमिति अभिमाना।

—मानस, बालकाण्ड ११३।

४ मैं अरु मोर तोर तैं माया। —मानस, अरण्यकाण्ड।

५ गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई।

६ तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥
एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव पडा भव-कूपा॥
एक रचै जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥

—मानस, अरण्यकाण्ड।

७ जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

—मानस, बालकाण्ड।

८ सो दासी रघुवीर कै समुझे मिथ्या सोऽपि।

—मानस, उत्तरकाण्ड।

है ? ऐसी शका होनेपर भी मृगवारिको सत्य (तत्त्वत.) तो नही कह सकते ? इसलिये सच्ची बात तो यह है कि सारा ससृति-दुख भ्रमके कारण है।[1]

इस प्रकार तात्त्विक दृष्टिसे तुलसीदासजीके विचार भी 'अद्वैत'का ही समर्थन करते है। वस्तुत' सभी विचारकोकी दृष्टिमे मूल सत्ता तो एक ही है। भौतिक वादी 'पदार्थ' अर्थात् 'जड'-सत्ताको ही मूलरूपमे स्वीकार करता है और 'चेतना' को द्वन्द्वात्मक प्रक्रियाके आधारपर जडता (पदार्थ) से ही उद्भूत मानता है। अध्यात्मवादी 'चेतना'को ही मूल और आदि सत्ता स्वीकार करता है और पदार्थ (जड सत्ता) को उसका परिणाम, विवर्त या प्रतिबिम्ब मानता है। तुलसी अध्यात्मवादी है। अत उन्हे भी एक ही चेतन तत्त्व मान्य है। किन्तु यह निष्कर्ष शुद्ध ज्ञान-दृष्टिका परिणाम है। व्यवहार-दृष्टि इससे भिन्न है। सत्ताकी प्रतीति स्वरूपके आधारपर ही होती है। आत्मा, देहके माध्यमसे ही प्रकट होती है। इसलिये सत्ताको स्वरूपसे, ब्रह्मको ब्रह्माण्ड (विश्व)से, पुरुषको प्रकृतिसे, शक्तिमान्को शक्तिसे अलग करके नही देखा जा सकता। शुद्ध चेतन तत्त्व अव्यक्त है। जो व्यक्त, साकार और सीमित है, वह जड सत्ता है। चेतन और जडकी एक सग्रथित सत्ता भी है, वह जीव है। व्यवहार दृष्टि इन तीनोको स्वीकार करके चलेगी। शुद्ध ज्ञान-बल से अद्वैत तत्त्व को समझ लेने और अपने को उससे अभिन्न मान लेने से ही जीवके सासारिक दु.खो का शमन नही हो सकता। उसके जड अश—देह, प्राण, इन्द्रियॉ, मन—उसे ससारमे ही प्रवृत्त करेगे। अत. वास्तविक शान्ति उसी मार्गसे प्राप्त हो सकती है जो सासारिक सबधोको ही ईश्वरोन्मुख करके रागात्मक आधारपर जीवको ब्रह्मसे अभिन्नकर दे। भक्ति-साधना ऐसा ही मार्ग है। ज्ञाता और ज्ञेय ही एक नही होते आश्रय और आलम्बन भी एक होते है। 'भक्ति भक्त भगवन्त गुरु' सभीको भावनाके आधार पर एक कर देना ही भक्ति मार्गका चरम प्रतिपाद्य है। जीवमे चेतन तत्त्व होनेके कारण उसे परमचेतनतत्त्व (ब्रह्म)से अभिन्न कह देने और जगतमे जड तत्त्व होनेके कारण ही उसे भ्रमात्मक सिद्ध कर देने से व्यावहारिक कठिनाइयॉ नही मिटती।

---

१ जौ मृग मृषा, ताप-त्रय अनुभव होहिं कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृगबारि सत्य, भ्रम तें दुख होइ बिसेखे।
—विनयपत्रिका, पद १२१।

इसीलिये तुल्सी दूसरी ही व्यवस्था देते है। वे श्रवणोसे हरिकथा सुनने, मुखसे उनका नाम लेने, हृदय मे उनका ध्यान करने, शिर से उन्हे प्रणाम करने, नेत्रो से देखने और शरीरसे सेवा करनेकी बात कहते है।[1] रामको परमतत्त्व ब्रह्म, विष्णुरूप चतुर्भुज और दशरथ-पुत्र कोशलाधीश मानने का भी ठोस सामाजिक कारण है। तुल्सीने अपने समयके समाजको प्रमुखत. राजा और प्रजा, सेव्य और सेवकमे द्विधा विभक्त देखा। राजा-रहित समाजकी कल्पना वे नही कर सकते थे। प्रजाकी शान्ति राजाकी कृपा और आदर्श चरित्र (शील) पर ही निर्भर है। उसकी कृपा प्राप्तिके लिये प्रेम और सेवाका मार्ग ही श्रेयस्कर है। इस जीवन-सत्यको उन्होने आध्यात्मिक आधारपर व्यक्त किया। आदर्श-चरित्र राजाको उन्होने प्रजा-वत्सल (भक्त-वत्सल) भगवान् (सेव्य) के रूपमे चित्रित किया और प्रताडित-पीडित प्रजाको उन्होने भक्त (सेवक) की भूमिकामे उपस्थित किया। प्रजा-वत्सल दशरथ सुत कोशलेश राम जगत-पोषक-रक्षक भगवान् विष्णुके रूपमे मान्य हुए। जगतकी स्थिति और पोषणके लिये आशिक या सीमित शक्ति पर्याप्त नही है इसलिए रामके रूपमे ही उन्होने जगतके आदि कारण परम-चेतन ब्रह्मको भी देखा। इस प्रकार परब्रह्म, विष्णु और दशरथसुत राममे उन्होने अभेद स्थापित किया। अत तुल्सीके दार्शनिक विचार तज्जुगीन सामाजिक परिस्थितियोकी उपज है। सत्य तो यह है कि प्रत्येक युगकी दार्शनिक विचार-पद्धति उस युगकी ऐतिहासिक आवश्यकता और सामाजिक आकाक्षापर ही आधृत होती है। दर्शन और अध्यात्मको जीवनसे अलग करके नहीं देखा जा सकता। सामाजिक परिस्थितियोमे होनेवाले परिवर्तनोके अनुसार युग-मनमे परिवर्तन हो जाता है। इसलिए पूर्व युग-सत्यकी नई व्याख्या अनिवार्य हो जाती है। शकरके अद्वैतवाद और तुल्सीके अद्वैतवादके बीचमे साढे सात सौ (७५०) वर्षोकी अवधिमे परिवर्तित होनेवाली ऐतिहासिक परिस्थितियाँ हैं।

---

१ स्रवन कथा, मुख नाम हृदय हरि, सिर प्रनाम मेवा कर अनुसरु।
नयनन निरखि कृपा-समूह हरि अग-जग-रूप 'भूप सीतावरु॥
इहै भगति वैराग्य ज्ञान यह हरि तोषन यह सुभ व्रत आचरु।
तुलसीदास सिवमत मारग यहि चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु॥
—विनय पत्रिका, पद २०५।

इस सत्यको ध्यानमे रखकर ही तुलसीके सिद्धान्तोके सम्बन्धमे हमे अन्तिम निर्णय देना चाहिये।

तुलसीकी भक्ति-पद्धति

तुलसीकी भक्ति व्यक्ति और समाज दोनोका कल्याण करनेवाली है। व्यक्तित्वका परिष्कार अहकारके शमनसे होता है। इसीलिये सारी विनय-पत्रिकामे तुलसीने अहकारके शमनपर बल दिया है। वे अपनेको दीन, सर्वांगक्षीण, अघी, मलीन, गरीब, अनाथ, आर्त्त, गुन-विहीन, छली, हीन, अपराध-सिन्धु, पराधीन, दोष-कोष, आलसी आदि दैन्य बोधक विशेषणोसे युक्त करके ऐसे व्यक्तिकी भूमिकामे उपस्थित करते है जिसे प्रभुकी महत्ता और अपनी तुच्छताकी अनुभूति हो चुकी है। अपनी हीनताका अनुमान उच्चतम आदर्शको सामने रखकर अपनेको देखनेसे ही भली प्रकार हो सकता है। सम्पूर्ण विनय-पत्रिकामे इसी विषयका प्रतिपादन किया गया है। राम पतित-पावन है, सरल है, शीलनिधान है, कृपानिधि है, कारुणीक है, गरीबनिवाज है, प्रनतपाल है, सर्वज्ञ और सुजान-शिरोमणि है। अपने समस्त दोषोको स्वीकार करके ऐसे राम पर अनन्य भावसे विश्वास करके ही भक्त मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकता है।[1] शास्त्रीय शब्दावलीमे इसी भावनाको 'न्यास', 'प्रपत्ति' और 'शरणागति' भी कहते है।[2] शरणागतिके अन्तर्गत छ प्रकारकी भावनाये आती है। १—'आनुकूल्स्य सकल्प·' २—'प्रतिकूल्स्य वर्जनम्' ३—'रक्षिष्यति इति विश्वास' ४—'गोप्तृत्वावर्णनम्' ५—'आत्मनिक्षेप' और ६—कार्पण्य। विनय-पत्रिकामे इन सभी भावनाओका समावेश हुआ है। तुल्सीने स्थल-स्थल पर भगवानके अनुकूल रहनेका सकल्प किया है।[3] उन विषयोको त्यागनेके

---

१ तुलसीदास प्रभु कृपा करहु अब मैं निज दोष कछु नहिं गोयो।

—विनयपत्रिका, पद २४५।

२ अहमस्मि अपराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगति·।
त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थनामतिः।
शरणागतिरित्युक्ता सादेवेऽस्मिम् प्रयुज्यताम्॥

—भारतीय दर्शन, पृष्ठ ७७० पर उद्धृत।

३· 'हौं सब विधि राम राउरो चाहत भयो चेरो' —विनयपत्रिका, पद १४६।

लिये मनको दृढ किया है जो राम-भक्तिके प्रतिकूल पडते है।[१] 'राम निश्चय ही भक्त की रक्षा करेंगे' यह विश्वास प्रकट किया है।[२] भगवान रामको ही अपना रक्षक माना है।[३] अपनेको निश्छल भावसे रामके प्रति अर्पित किया है।[४] और अनेक प्रकारसे अपनी कृपणता (दीनता) का प्रकाशन किया है।[५] इनके अतिरिक्त विनयके अन्तर्गत 'दीनता', 'मान-मर्षण', 'भयदर्शन', 'भर्त्सना', 'आश्वासन', 'मनोराज्य', और 'विचारण' की जो सात स्थितियाँ मानी गई है, तुल्सीके विनय-गीतोमे उन्हे भी सरल्तासे प्राप्त किया जा सकता है। 'दीनता' सम्बन्धी पद तो अनेक है। 'माधव जू मो सम मद न कोऊ', (पद सख्या ९२) 'है प्रभु मेरोई सब दोसु' (पद सख्या १५९), 'तुम सम दीनबधु न दीन कोउ मोसम सुनहु नृपति रघुराई' (पद स० २४२), आदि गीतोमे दैन्यकी ही अभिव्यक्ति हुई है। 'मानमर्षण' के पद भी कम नही है। अभिमान का शमन करके इष्टदेवकी शरणमे जाना ही दैन्य भावकी भक्तिका मूल आधार है। 'पाहि पाहि ! राम पाहि ! राम भद्र रामचन्द्र सुजस स्रवन सुनि आयो हौ सरन (पद संख्या २४८)' जैसी पक्तियोमे यही भावना व्यक्त हुई है। 'जीव' को भय दिखाकर भगवानकी ओर उन्मुख करने की भावना ही भय-दर्शन' है। राम राम राम जीव जौलो तू न जपि है। तो लौ तू कहूँ जाय तिहूँ ताप तपि है।' (पद स० ६८), या 'राम जपु, राम जपु, राम जपु बावरे। घोर भव-नीर-निधि नाम निजु नाव रे।' (पद सख्या ६६), इन पदोमे जीवको सासारिक दु खोसे

---

१ कुपथ, कुचाल, कुमति, कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै।

—विनयपत्रिका, पद २२४।

२ विश्वास एक राम नामको।

—वही, पद ११५,।

३ तुलसी सुखी निसोच राज ज्यो बालक माय बबाके।

—वही, पद २२५,।

४. अब तजि रोष करहु करुना हरि तुलसिदास सरनागत आयो।

—वही, पद २४३।

५ माधव ! मो समान जगमाहीं।
सबविधि हीन, मलीन, दीन अति लीन-विषय कोउ नाही।

—वही, पद ११४।

भय दिखाकर राम की ओर प्रवृत्त करनेकी चेष्टाकी गई है। चचल मन बार-बार सासारिक विषयोमे रम जाता है। भक्त साधकको इसके लिये उसे फटकारना पडता है। उसकी भर्त्सना करनी पडती है। 'सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबही ते। अतहुँ तोहि तजेगे पामर! तू न तजै अबहीते' (पद स० १९८) या 'तौ तू पछितैहै मन मीजि हाथ' (पद स० ८४) अथवा 'सुनु मन मूढ, सिखावन मेरो।' (पद स० ८७) जैसे पदोमे तुलसीदासजीने अनेक प्रकारसे मनकी भर्त्सनाकी है। भक्तको प्रभुके गुणोपर पूर्ण विश्वास रहता है और इसीके बल पर वह अपने मनको आश्वासन देता है। 'ऐसी कौन प्रभु की रीति' (पद २१४) 'श्री रघुबीर की यह बानि' (पद २१५) या 'हरिसम आपदाहरन। नहि कोउ सहज कृपालु दुसह-दुखसागर-तरन' (पद २१३) जैसे गीतोको 'आश्वासन' की भावनाका सुन्दर उदाहरण माना जा सकता है। कभी-कभी भक्त इसी विश्वासके बल पर अनेक प्रकारकी अभिलाषाये करता हुआ 'मनोराज्य' की भूमिकामे प्रवेश कर जाता है। तुल्सीकी तो एक ही अभिलाष थी कि—'ज्यो सुभाय प्रिय लगति नागरी नागर नवीन को। त्यो मेरे मन लाल्सा करिए करुनाकर पावन प्रेम पीन को' (पद स० २६९)। कभी-कभी ससारकी जटिलता और विचित्रता देखकर भक्त 'विचारण' की मन स्थितिमे हो जाता है। 'केशव कहि न जाइ का कहिए? देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये।' (पद १११) तुल्सी का यह छन्द 'विचारण' की स्थितिका सुन्दर उदाहरण है। उपर्युक्त शास्त्र-विहित भावनाओके अतिरिक्त तुल्सीने दैन्यके अन्तर्गत अन्य अनेक प्रकारके मानसिक उद्गार प्रकट किये है जो उनके हृदयकी शुद्धता प्रमाणित करते है। अहमन्यताको त्यागकर विश्वास पूर्वक जब हम भगवान्मे दृढ अनुराग करते है तो वे द्रवीभूत होते है।[1] भगवान्को द्रवीभूत करदेने वाला साधन भक्ति है।[2] इसीलिये तुल्सी ने विनयपत्रिकामे बार-बार रामसे द्रवीभूत होने के लिये प्रार्थनाकी है। कभी वे कहते है—'जो न द्रवहु, रघुबीर धीर!

---

१ बिनु विश्वास भगति नहि, तेहिं बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह विश्राम॥

२ जातें बेगि द्रवउँ मे भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई।

काहे न दुख लागे' ।[१] कभी कहते है—'माधव, अब न द्रवहु केहि लेखे ।'[२] कभी सोचते है कि सतो की सगति के बिना भक्ति सभव नही है और वह तभी मिल सकती है जब भगवान् द्रवीभूत हो—'ते तब मिलै द्रवै जब सोई ।'[३] कभी भगवान् रामकी उदारताका स्मरण होनेपर विश्वासपूर्वक कहते है—'विनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही ।'[४] यह विश्वास ही उन्हे अनन्य भावसे रामके चरणोमे प्रीति करनेके लिये प्रेरित करता है । तुलसीकी भक्तिकी यह विशिष्ट पद्धति वैयक्तिक साधनाके रूपमे ग्रहण की जा सकती है । इसका ध्येय व्यक्तिका मानसिक उन्नयन करके उसे राग-द्वेषोकी सकीर्णतासे ऊपर उठाना है ।

सामाजिक कल्याण या लोक-हितके लिये उन्होने जिस भक्तिका उल्लेख किया है वह एक प्रकार का पूर्ण जीवन-दर्शन है । वे कहते है—'श्रुति सम्मत हरि भक्ति पथ सयुत विरति विवेक' इस कथनमे केवल भक्तिकी बात न कहकर 'भक्ति-पथ'की बात कही गई है । इस पथमे भक्ति (अनुरक्ति) के अतिरिक्त विरति (अनासक्ति) और विवेक (ज्ञान) का भी समन्वय हो गया है । इसकी व्याख्या करते हुये डाक्टर बलदेवप्रसाद मिश्रने लिखा है—"जो सच्चे तत्त्वदर्शी आचार्य है उन्होने साम्प्रदायिकताका दुराग्रह छोडकर ज्ञान, कर्म और भक्तिके समन्वयको ही विकासका सम्यक् मार्ग बताया है" ।[५] समन्वित न होने पर 'कर्म, ज्ञान और भक्ति' तीनो लक्ष्य भ्रष्ट हो सकते है । आचार्य शुक्लने इस ओर सकेत करते हुए कहा है—"'कर्म' अर्थ-शून्य विधि-विधानोसे निकम्मा हो सकता है, 'ज्ञान' रहस्य और गुह्यकी भावनासे पाखड-पूर्ण हो सकता है और 'भक्ति' इन्द्रियोपभोगकी वासनासे कलुषित हो सकती है ।"[६] तुलसीकी भक्ति-पद्धतिमे इसीलिये उपर्युक्त तीनो साधनाओका समन्वय हुआ है । यह भक्ति सभी सुखोकी खानि मणि-रूपा है जिसके शाश्वत प्रकाशमे जीवनका पथ आलोकित हो सकता है । जब व्यक्ति सुमतिकी

१ विनयपत्रिका, पद सख्या ११० ।
२. वही, 　„ „ ११३ ।
३ वही, 　„ „ १३६ ।
४ वही, 　„ „ १६२ ।
५ तुलसी दर्शन, पृष्ठ २४३ ।
६. हिन्दी-साहित्यका इतिहास, आचार्य शुक्ल, पृष्ठ ६५, स० २००५ वि० सस्करण ।

कुदारी लेकर ज्ञान और वैराग्य के नेत्रोसे देखता हुआ भावपूर्वक (प्रेम और श्रद्धा के साथ) वेद-पुराण रूपी पर्वतोमे स्थित राम-कथा रूपी खानको खोदनेका प्रयत्न करता है तभी यह भक्ति-मणि प्राप्त हो सकती है।[१] इस रूपकके द्वारा भी तुलसीने भक्तिके ज्ञान और कर्म (अनासक्ति, वैराग्य) समन्वित स्वरूपकी ओर ही सकेत किया है। भक्तिका यह पथ किस प्रकार पूर्ण जीवन दर्शन हो सकता है? इसे कविने 'मानस'मे रामके जीवन-विकासके साथ दिखानेकी चेष्टाकी है। रामके व्यक्तित्वमे भक्ति, ज्ञान और कर्म तीनोंका समन्वित उत्कर्ष हुआ है। वे शिवके भक्त है। लकामे प्रवेश करनेके पहले वे श्रद्धापूर्वक शिवलिगकी स्थापना करते है। वे तत्त्वज्ञानी है। लक्ष्मणके प्रश्न करने पर वे उन्हे तत्त्वज्ञानका बोध कराते है। वे अनासक्त है। इसीलिये अयोध्या का राज्य सहज भावसे त्याग देते है। इसी जीवन-दृष्टिके बलपर वे रावण जैसे शत्रुका सहार करके श्रद्धाविहीन समाजका अन्त करते हैं और अन्तत विषमताहीन रामराज्यकी स्थापना करते है। 'मानस' के अन्य पात्र (जो राम के सच्चे भक्त हैं) भी भक्ति और कर्तव्यनिष्ठाके साथ-साथ तत्त्वज्ञान-को समझनेवाले है। हनुमान जानते है कि वे उस रामके दूत है—'जाके बल बिरचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।'[२] जामवत बन्दरोंको समझाते हुये कहते है—'तात राम कहुँ नर जनि जानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज मानहु।'[३] लक्ष्मणजी निषादराजको उपदेश देते है—'राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।'[४] जनकजी रामको भलीभाँति पहचानते है—'व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानदु निरगुन गुन रासी'।[५] इसीलिये इन पात्रोको जीवनकी भीषणतम प्रतिकूल परिस्थितियोमे भी कभी व्यामोह नही होता और वे सदैव दृढतापूर्वक जीवन-पथमे अग्रसर होते हैं।

---

१. सरमी सज्जन सुमति कुदारी। ग्यान विराग नयन उरगारी।
भाव सहित खोदइ जो प्रानी। पाव भगति-मणि सब सुख खानी।
—मानस, उत्तरकाण्ड।

२ मानस, सुन्दरकाण्ड।

३ मानस, किष्किन्धाकाण्ड।

४ मानस, अयोध्याकाण्ड।

५ मानस, बालकाण्ड।

'विरति-विवेक सयुक्त भक्ति' के साधन रूपमे तुल्सीदासजीने जप, तप, नियम, योग, मख, सम, दम, व्रत, दान, तीर्थाटन, विद्या, विनय, विज्ञान आदि सभी सत्कार्योंकी गणना की है। स्वयं राम द्वारा लक्ष्मणके प्रति भक्तिके साधनो का उल्लेख कराते हुए उन्होने 'विप्रके चरणोंमे प्रीति, सन्तोके प्रति प्रेम-भाव, भगवद्लीलामे रति, भगवद्गुणगान, भगवद्सेवा, भगवद्भजन, अहकार-त्याग, निष्कामता, गुरु-पिता-माता-बन्धु-पति आदिके सम्बन्धोको भगवान्के प्रति ही केन्द्रित कर देना, मन वचन और कर्मसे भगवान्की शरणमें जाना आदि सभी सद्गुणो-को भक्तिके साधनोमे सम्मिलित कर लिया है। शबरीको उपदेश देते समय भी भगवान् रामने भक्तिके प्रकारोका उल्लेख करते हुए 'सत्सग, कथामे रति, मान-रहित गुरु-भक्ति, कीर्तन, जप, सन्तवृत्ति, अनन्यवृत्ति, सन्तोषवृत्ति और भगवद-वलम्ब आदि नवधा भक्तिकी चर्चा की है। यह नवधा भक्ति अध्यात्म रामायणके आधारपर ही वर्णित है। भागवत् म्हापुराणमे 'श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन' को नवधा भक्तिके रूपमें स्वीकार किया गया है। तुल्सीदासजीने इनको भी 'स्रवनादिक नव-भगति दृढाही' कहकर अन्य साधनोके साथ ही उल्लिखित कर दिया है। तात्पर्य यह कि भागवत् पुराणकी 'नवधाभक्ति' और अध्यात्म रामायणकी 'नवधाभक्ति' दोनोको तुलसीने अपनी विशिष्ट भक्तिका साधन ही स्वीकार किया है। इसके अतिरिक्त अन्य देवी-देवताओकी भक्तिको भी वे राम-भक्तिकी भूमिका ही मानते हैं। गणेशसे प्रार्थना करते हुए वे कहते है—'मॉगत तुलसिदास कर जोरे। बसहिं राम सिय मानस मोरे'।[१] भगवान् शकरसे भी उनकी यही विनय है—'देहु कामरिपु रामचरन रति तुलसिदास कहँ कृपानिधान'।[२] पार्वतीसे भी वे यही याचना करते हैं—'रघुपति-पद परम-प्रेम तुलसी यह अचल नेम, देहि है प्रसन्न, पाहि प्रणत पालिका।'[३] इससे प्रकट है कि जीवनकी सभी समस्याओका समाधान तुलसीने 'राम-भक्ति' मे ही देखा है। मानव-समाजके समस्त नैतिक

---

१ विनय पत्रिका, पद सख्या १।

२. वही ,, ,, ३।

३ वही ,, ,, १६।

कायोका परिणाम और मानव-जीवनमे पूज्य समस्त देवी-देवताओकी भक्तिका अन्तिम फल वे राम-भक्तिकी प्राप्ति ही मानते है।

इस भक्तिका अधिकारी व्यक्तिविशेष, जातिविशेष, वा वर्गविशेष नही है। पुरुष, स्त्री, नपुसक, चर-अचर सभी यदि निष्कपट भाव से राम-भजनमे प्रवृत्त हो तो वे भगवान्को परमप्रिय हो सकते है।[१] उन्हे तो केवल 'प्रेम' का नाता मान्य है। प्रेम करनेवाला कोई भी क्यो न हो उसे राम-कृपा सुलभ है। वे तो यहॉ तक कह देते है—'भगतिवत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय अस मम बानी॥'[२] इस क्षेत्रमे नीच-ऊँचका प्रश्न ही नही उठता। ससारके समस्त जीव—चर, अचर, नर, सुर, असुर सभी तो एक ही भगवान्की सृष्टि है। भगवानकी निगाहोमे सभी समान है। वे तो सभी पर समान कृपा करते है।[३] उनके दरबारमे तो दीनोको अधिक सम्मान मिलता है। पितासे अधिक वे गृद्धराज पर ममता दिखाते है। सखा सुग्रीवके दु खोको देखकर प्राण-प्रिया सीताको भी विस्मृत कर देते है। रणमे लक्ष्मणके घायल होने पर उन्हे विभीषण का ही सोच सन्तप्त करता है। शबरीके फलोके स्वादके सामने ससुरालकी पहुनाई भूल जाती है। वे केवटको मीत मानते है। बानरोको बधुवत् सम्मान देते हैं। श्वानके कहने पर यतीको भी नगरसे बाहर निकाल देते है।[४] ऐसे रामकी भक्तिका पथ तो राजमार्ग है जो सबके लिये प्रशस्त है।[५]

इस भक्तिका आलम्बन भगवानका सगुण रूप ही है। तुल्सीने यो तो सगुण-निर्गुणमे अभेद मानकर राममे इन उभय स्वरूपोकी स्थिति स्वीकारकी

---

१ पुरुष नपुसक नारि नर जीव चराचर कोइ।
भगति भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥
—मानस, उत्तरकाण्ड।

२ मानस, उत्तरकाण्ड,

३. एहि विधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।
अखिल विस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबर दाया।
—मानस, उत्तरकाण्ड।

४ विनय पत्रिका, पद सख्या—१६४, १६५।

५. 'गुरु कह्यो राम भजन नीको मोहिं लगत राज-डगरो सो'।
—विनयपत्रिका, पद १७३।

है और अनेक स्थलो पर रामकी वन्दना करते हुये उन्हे 'जय सगुन निर्गुण रूप रूप-अनूप भूप सिरोमने' कहकर सम्बोधित किया है किन्तु उनका मानसिक झुकाव सगुण साकार भगवानकी ओर ही है। रावण-विजयके उपरान्त रामकी स्तुति करते हुए इन्द्र कहते है—

कोउ ब्रह्म निर्गुण ध्याव। अव्यक्त जेहि श्रुति गाव।
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन-सरूप॥

लोमस का निर्गुण मतका उपदेश काकभुशुण्डिको नही भाता। वे कहते है—'विविध भाँति मुनि मोहिं समुझावा। निर्गुन-मत मम हृदय न आवा॥' इसके अतिरिक्त जिस भक्तिको तुलसीने मुक्तिसे भी श्रेष्ठ माना है, वह सगुण-भक्ति ही है। वे कहते है—'सगुनोपासक मोच्छ न लेही। तिन्ह कहँ राम भगति निज देही।' स्वय भगवान शकर रामके 'पद-सरोज' मे ही शाश्वत भक्तिका वरदान माँगते है। राम भी विभीपणसे यही कहते है।

सगुन-उपासक परमहित निरत नीति दृढ नेम।
ते नर प्रान-समान मम जिन्हके द्विज पद प्रेम॥
(मानस, सुन्दरकाण्ड)

वस्तुतः भक्तोके भगवान् तो सुख-निधान, करुणा भवन, भाव-गाहक है। वे निर्गुण-निराकार कैसे हो सकते है? तुलसीकी गोपियोने तो स्पष्ट ही कह दिया था—

जेहि उर बसत स्याम सुन्दर घन तेहि निर्गुन कस आवै।
तुलसिदास सो भजन बहाओ जाहि दूसरो भावै॥[१]

तुलसीकी भक्ति उपास्यदेवोका पार्थक्य नही स्वीकार करती। राम, शकरके भक्त है। शिव-द्रोही उनकी भक्ति नही प्राप्त कर सकता।[२] शकर, रामके भक्त है। उन्होने भी रामके चरण-कमलोकी सेवा करके ही सिद्धि प्राप्त की है।[३]

---

१ कृष्ण गीतावली, पद सख्या ३३।

२ सकर विमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ मति थोरी।
—मानस, लकाकाण्ड।

३ जाके चरन सरोज सेइ सिधि पाई सकर हू।
—विनय पत्रिका।

सीता रामको पतिरूपमे प्राप्त करनेके लिये गौरी (शक्ति) की प्रार्थना करती है।[1] तुल्सीके प्रभु राम ही नही है, ब्रज-जन-हितकारी कृष्ण भी है।[2] विनय-पत्रिकामे वे 'गणेश', 'शकर', 'पार्वती', 'गगा', 'हनुमान' आदि सभी उपास्य-देवोकी श्रद्धापूर्वक विनय करते है। ऐसा करके तुल्सीने न केवल अपनी भक्ति-पद्धतिको एक व्यापक आधारभूमि पर प्रतिष्ठित किया वरन् तत्कालीन शैव-शाक्त-वैष्णव भक्तोके पारस्परिक वैमनस्यको भी दूर कर दिया तथा वैष्णवोमे भी राम और कृष्ण-भक्तिके नाम पर विभक्त भक्तजनोको एक दूसरेके समीप लाकर खडा कर दिया।

तुल्सीकी भक्तिको समझनेके लिये उन प्रतीकोकी निष्ठाको भी समझना आवश्यक है जिन्हे अपना आदर्श स्वीकार करके उन्होंने वार-बार स्मरण किया है। भक्तिके क्षेत्रमे तुल्सीके दो आदर्श है—चातक और मीन। चातककी भक्तिमे अनन्यता, निष्कामता तथा आलम्बनके महत्त्वकी आनन्दमयी स्वीकृति है। वह जानता है कि उसका मेघ लोक-उपकारी है, महिमामय है। इसलिये वह अपनी याचनाको लोक-याचनाके रूपमे उपस्थित करता है। तुल्सीकी याचना भी लोक-याचना है। वे जानते है कि उनके राम लोक-रक्षक है। रामके महत्त्वको आनन्दपूर्वक स्वीकार करके ही वे अपनी दीनता प्रकट करते हैं। चातकका मेघके प्रति और तुलसीका रामके प्रति व्यक्त दैन्य एक ही आधार पर स्थित है। तुलसीरूपी चातकको भी राम श्याम घनको ही आशा है—

तुलसी-चातक-आस राम-स्याम घनकी।

—विनयपत्रिका, पद ७५।

और मीनके प्रेमका क्या कहना! जलसे अलग तो वह जी ही नही सकती। तुल्सीकी दृष्टिमे—'तुलसी एकै मीनको है साँचलो सनेह'—एक मीनका ही प्रेम सच्चा है। इसीलिये वे 'राम-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता' की कामना करते है—

---

१ नहिं तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाव वेद नहि जाना।

—मानस, बालकाण्ड।

२. तुलसी प्रभु प्रेम बस्य मनुज-रूप धारी।
बाल केलि लीलारस ब्रज जन हितकारी॥

—श्री कृष्णगीतावली, पद १।
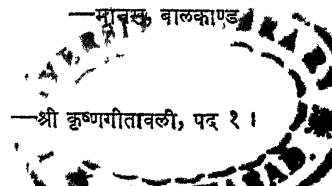
करुनानिधान बरदान तुलसी चहत
सीतापति-भक्ति-सुरसरि-नीर-मीनता

—विनयपत्रिका, पद १६२ ।

भक्तिका मार्ग अन्य सभी साधनाओसे सुगम और श्रेष्ठ है। योग, मख, ज्ञान, वैराग्य आदि वेद-विहित कर्म सुननेमे भले मधुर हो, करनेमे निश्चय ही कठिन है ।[1] व्रत, तीर्थाटन, तप आदिकी बात सुनकर तुलसीका मन सहम जाता है, सोचते है इनमे पडकर कौन अपना शरीर क्षीण करे ?[2] तत्त्वत. 'ज्ञान' और 'भक्ति'म भेद नही है। दोनो 'भव मभव-खेद'को दूर करनेमे समर्थ है। किन्तु 'ज्ञान'के साथ एक कठिनाई है। ज्ञान ही क्या ? वैराग्य, योग और विज्ञानके साथ भी यह कठिनाई है कि ये सब पुरुष है। अविद्या (माया) स्त्री है। पुरुपो-का स्त्रियोके प्रति सहज आकर्षण होता है। अतः इन साधनोको स्वीकार करके जीवन-पथपर अग्रसर होनेवाला व्यक्ति मायाके फन्देमे सरलतासे पड सकता है। इसके विपरीत भक्ति स्वय नारी है। नारी, नारीके रूपसे प्रभावित नही होती। अत' भक्तिपर मायाका कोई प्रभाव नही पड सकता। इतनाही नही, स्वय भगवान् रामको भक्ति प्यारी है। इसलिए भी माया डरती रहती है। इसीलिये मुनि और विज्ञानी भी भक्तिकी ही याचना करते है। ज्ञानका पन्थ तो कृपाणकी धारके समान है। ज्ञान-ज्याति प्रज्वलित करनेमे ही अनेक कठिनाइयॉ है। यदि वह प्रज्वलित भी हो गई तो विपयोकी वायुका एकही झोका उसे बुझा सकता हैं। भक्ति तो चिन्तामणिके समान है। जिसका प्रकाश दिन-रात प्रस्फुटित होता रहता है। इससे अविद्याका अधकार सहज ही मिट जाता है। इसलिये तुलसीका निश्चित मत है कि जल-मन्थनसे भले ही घृत निकल आवे, सैकत-कणोसे भले

१ जोग मख विवेक बिरति वेद बिहित करम।
करिवे कहँ कटु कठोर सुनत मधुर नरम॥

—विनयपत्रिका, पद १३१ ।

२. व्रत, तीरथ, तप सुनि सहमत, पचि मरै करै तन छामको ?

—वही, पद १५५ ।

ही तेल स्रवित हो जाय, किन्तु बिना हरि-भजनके ससार-सागरका सतरण सम्भव नही है।[1]

उपर्युक्त विवेचनके आधारपर यह कहा जा सकता है कि तुलसीने अपने युगकी परिस्थितियोका गहन अध्ययन करनेके बाद 'भक्ति'के रूपमे एक ऐसे जीवन दर्शनकी उपलब्धिकी थी जो व्यक्ति और समाज दोनोका उन्नयन करनेमे समर्थ है। जो व्यापक आधारपर प्रतिष्ठित है। जिसमे लक्ष्य-च्युत होनेकी सम्भावना बहुत ही कम है। जो व्यक्तिकी श्रेष्ठतामे विश्वास और जीवनमे आस्था उत्पन्न करनेमे समर्थ है। जो प्रवृत्तिकी ओर प्रेरित करनेवाला है, ससारके सघर्षोसे पलायनकी प्रेरणा देनेवाला नही। जो समता और समन्वयकी भावनापर आधृत है और जिसकी उपादेयता आज भी निर्विवाद है।

काव्य-सौष्ठव

तुलसी.ी काव्य-सुषमाका अनुभव करनेके लिये हृदयकी विशालता, बुद्धिकी विमलता, वाग्देवीकी अनुकम्पा, विचारोकी श्रेष्ठता और लोक मगलकी भावना अपेक्षित है[2]। जो केवल भणिति वैचित्र्यको ही सब कुछ मानते है, तुलसीके काव्यमे उन्हे कदाचित् कुछ भी प्राप्त न हो। उन्होने तो केवल वस्तु सौन्दर्यपर ध्यान दिया था[3]। तुलसी ऐसे काव्य-विवेकको दूरसे ही नमस्कार करते है जिसका उपयोग प्राकृत जन-गुण-गानमे किया जाता है[4], जिसे बेचकर वर्ण-

---

१. बारि मथे घृत होइ बरु मिकता तें बरु तेल।
बिनु हरि-भजन न भव तरहिं यह मिद्धान्त अपेल॥
—मानस, उत्तरकाण्ड।

२. हृदय सिंधु मति सीप समाना। स्वाति सारदा कहहिं सुजाना।
जौं बरसइ बर बारि बिचारू। होइ कवित मुक्ता मनि चारू।
× × ×
भगत हेतु विधि-भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई।
× × ×
कीरति भणिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित होई।

३. भणिति भदेस वस्तु भलि बरिनी।

४ कीन्हें प्राकृत जन गुण गाना। सिर धुनि गिरा लागि पछिताना।

वर्णपर सुवर्ण प्राप्त किया जाता है और जिसमे कविकी आत्म-निष्ठाका प्रश्न ही नही उठता वरन् आश्रयदाताकी रुचि-प्रतिष्ठाका ही प्राधान्य होता है। वे ऐसी बाल-कविताको भी व्यर्थ मानते है जो पण्डित मण्डलीमे आदर नही प्राप्त करती[१]। जब कवि युग-युगकी लोक-व्यापी समस्याओका समाधान किसी ऐसी आत्मनिष्ठ आदर्श भावनामे प्राप्त कर लेता है जिसे राष्ट्रकी सास्कृतिक परम्पराका समर्थन भी प्राप्त होता है तो उसका हृदय आनन्दसे उल्लसित हो उठता है, उसकी बुद्धि विमल हो जाती है, उसका हृदयस्थ राग-स्रोत फूट पडता है और काव्य-सरिताका अजस्र स्रोत प्रवाहित होने लगता है। 'राम-चरित' के रूपमे तुलसीने ऐसा ही समाधान प्राप्त कर लिया था[२]। फिर तो काव्यके सभी उपादान स्वयमेव उसका अनुगमन करते है। मूल वस्तु है—लोक मगलकारी आदर्शोकी उपलब्धि। 'रामचरितमानस' इन्ही आदर्शोकी प्रतिष्ठा का परिणाम है। यह आदर्श प्रतिष्ठा ही तुलसीके काव्यका मर्म है। काव्यके तथाकथित उपादान इसकी सौदर्यवृद्धिमे सहायक मात्र है। कवि तुलसीके विमल मानसमे जिस चरित-मानसकी कल्पना साकार हुई थी उसकी सार्थकता जन-मानसका मल प्रक्षालन करनेमे थी। यह कार्य 'रामसीय जस-सलिल-सुधा' से ही सम्पादित हो सकता था। जलमे तरग-भगिमा सहज सम्भाव्य है। यही स्थिति काव्यके वस्तु-तत्त्वमे आलकारिक सौदर्यकी है।[३] जिस प्रकार जल-पूर्ण सरोवरकी पारिभाषिक पूर्णता विविध प्रकारकी मछलियोके अभाव मे अधूरी रह जाती है, उसी प्रकार काव्य-सरोवर ध्वनि, वक्रोक्ति, काव्य-गुण और रीतिके अभावमे पूर्ण रमणीयता नही प्राप्त कर सकता[४]। सरोवरका निर्माण

१ जे कवित्त बुध नहिं आदरहीं। सो श्रम बादि बाल कवि करही।

२. अस मानस मानस चष चाही। भइ कवि बुद्धि बिमल अवगाही।
भयेउ हृदय आनन्द उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू।
चली सुभग कविता-सरिता सी। राम विमल जस जल-भरिता सी।

—रामचरितमानस, बालकाड।

३ राम सीय जस सलिल सुधा सम। उपमा बीचि बिलास मनोरम।

—मानस बालकांड।

४ धुनि, अवरेब कवित गुन जाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती।

—मानस, बालकाड।

मछलियोके लिये नही होता। उसका अनिवार्य तत्त्व जल है। मत्स्य-विहीन जलपूर्ण सरोवर देखा जा सकता है किन्तु जलके अभावमे मछलियोकी स्थितिकी कल्पना नहीकी जा सकती। जिन कवि पुगवोका काव्य विवेक 'रीति', 'ध्वनि', 'वक्रोक्ति', 'अलकार' और 'गुण' को ही काव्यका सर्वस्व मानकर चलता है, तुलसी अपनेको उनकी परम्परासे पृथक् कर लेते है। छन्द भी काव्यका अनिवार्य तत्त्व नहीं है। छन्द काव्य-सरोवरके कमल पुष्प है।[1] सरोवरका सौंदर्य कमल-पुष्पोसे बढ जाता है। कभी-कभी पत्रयुक्त कमल-पुष्पोकी सघनता सामान्य दर्शककी दृष्टिसे जलकी विमलताको ओझल कर देती है। इसी प्रकार छन्दोको अधिक महत्त्व देने स काव्यका भाव-सौदर्य समाप्त हो जाता है। जो छन्द-योजनामे ही अपने श्रमकी सार्थकता देखते है वे काव्यके मर्मको नही जानते।[2] तुलसीका काव्य-सौंदर्य रामकी चारित्रिक पूर्णतामे ही देखा जा सकता है। चारित्रिक पूर्णताके लिये 'भावो' के विशिष्ट सघटनकी आवश्यकता होती है। तुलसीके काव्यमे मानव जीवनमे व्याप्त सभी भावोका चित्रण किया गया है। 'रति', 'हास्य', 'शोक', 'क्रोध', 'उत्साह', 'भय', 'आश्चर्य', 'जुगुप्सा', 'निर्वेद', 'वात्सल्य' आदि सभी स्थायी भावोको हम उनके सजातीय भावोके साथ तुलसीकी कृतियोमे देख सकते है। तुलसीके भाव-चित्रणकी सबसे बडी विशेषता यह है कि उन्होने भावको शील के उत्कर्षका साधन माना है। तुलसीके आदर्श-पात्र लोक-मर्यादाका उल्लघन नही करते। इसलिये जब कभी वे आश्रय या आलम्बन रूपमे भावोकी स्थिति और विकासके आधार बनते है तो भाव-सत्ताको भी लोक-मर्यादाका बन्धन स्वीकार करना पडता है। सबसे पहिले 'रति'को लेकर विचार कीजिये। प्रसग जनक वाटिकाका है। बाटिकामे राम और लक्ष्मण प्रसून-चयन करने आये है। सीता सखियोके साथ गौरी-पूजनके लिये आई है।

---

१. छद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरग कमल कुल सोहा।
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मजु मनि सीप सुहाई।

—मानस, बालकाड।

२. पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिए जैसे निर्गुन ब्रह्म॥

—मानस, अरण्यकाड।

सीताकी एक सखी अलग होकर वाटिकाका सौंदर्य देख रही थी। उसने राम लक्ष्मणके अनुपम रूप लावण्यको देखा। उसका हृदय प्रेमसे स्निग्ध हो गया। उसे रोमाञ्च हो आया। नेत्र अश्रु पूर्ण हो गये। इसी विह्वल स्थितिमे वह सीताके पास आई। सखियोके आग्रह पर वह इतना ही कह सकी—

श्याम गौर किमि कहउँ बखानी, गिरा अनयन नयन बिनु बानी।

सीताके हृदयमे राम-दर्शनकी उत्कण्ठा हुई। सीताकी परम रूपवती सखियोमेसे एक जिसके रूपको देखकर विह्वल हो उठे उसके दर्शनकी उत्कण्ठा सीताकी मर्यादाके विरुद्ध नही है। उनकी यह उत्कण्ठा आकुलतामे तब परिणत होती है जब दूसरी सखी पूर्व सखाका समर्थन करते हुये कहती है—

बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहि देखन जोगू॥
जिन्ह निज रूप मोहिनी डारी। कीन्हें स्वबस नगर नर-नारी॥

जिसका सोंदर्य सामान्य चर्चाका विषय बन जाय, जिसके रूपमे मोहिनी शक्ति हो, जो नगरकी नर-नारियोको वशीभूत कर ले, उसे देखनेके लिये नेत्रोका आकुल होना स्वाभाविक है। अभी भी सीताके हृदयमे 'रति' का उदय नही हुआ है। यह स्थिति तब आती है, जब उन्हे नारदके पूर्व कथित बचनोका स्मरण हो आता है—

सुमिरि सीय नारद बचन उपजी प्रीति पुनीत।
चकित बिलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत॥

नारदके बचन याद आनेसे रामके प्रति निजत्व भावनाका उदय होना है। वे सामान्य नायकमात्र नही रह जाते। 'वे वही होगे' की सम्भावनासे ही पुनीत प्रीतिका उदय होता है। रामको प्रत्यक्ष देखकर वे जडवत् हो जाती है।

थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहू परिहरीं निमेखे।

कुछ क्षणोंके लिये उनकी कार्य करनेकी योग्यता खो जाती है। नेत्रोके माध्यमसे रामका रूप बिम्ब हृदय मन्दिरमे लाकर वे पलकोका कपाट लगा देती हैं। सखी व्यग्य करती है—

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किशोर देखि किन लेहू।

सीताको सकोच होता है। यह सकोच अपनी स्थितिके बोधके कारण ही है। कदाचित् अब वे मर्यादाकी सीमा-रेखाके समीप पहुँच चुकी थी। लोक-दृष्टिमे राम अभी उनकी 'निधि' नही बन पाये थे किन्तु रामका भुवन-मोहन सौन्दर्य उन्हे विचलित कर रहा था। ठीक अवसर था जब कवि उनके सामने मर्यादा का सबसे प्रबल अकुश उपस्थित करता। यह अकुश है जनककी प्रतिज्ञा। सीताकी प्रीतिका अधिकारी कोई भी व्यक्ति केवल सौन्दर्यके आकर्षणसे नही हो सकता। उसे सारे ससारके सामने अपनी शक्तिका प्रमाण देना होगा। पिताके प्रणका स्मरण कर सीता अधीर हो उठी—'नख-सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पन मन अति छोभा'। सीताकी यह मन.स्थिति अधिक देर तक न रह सकी। एक अन्य सखीके व्यग्य, पुनि आउब एहि बेरियाँ काली—सभी सखियो द्वारा बिलम्ब होनेकी चर्चा ओर माताके भयने उन्हे सयम रखनेके लिये विवश किया। उन्होने धैर्य धारण किया। रामके रूपका आकर्षण उन्हे विवश कर रहा था किन्तु सखियोका सकोच भी कम न था। इसलिए रामको देखनेके लिए अब उन्हे मृगो, विहगो और तरुओके देखनेका बहाना लेना पडा—

> देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि-बहोरि।
> निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढइ प्रीति न थोरि।

यह सहज स्वच्छन्द प्रेम पर मर्यादाके विजयका प्रमाण है। अन्ततः रामकी श्याममूर्तिका ध्यान करती हुई सीता लौट पडी।

पूरे प्रसगमे 'रति' ओर उसकी परिधिमे आनेवाले—'उत्कण्ठा' (औत्सुक्य), 'आकुलता', 'जडता', 'सकोच' (व्रीडा), 'अधीरता', 'अवहित्था' आदि सचारी भावोकी स्थितिका चित्रण किया गया है। ये सभी भाव सीताके मर्यादित व्यक्तित्व को सजीव करनेमे सहायक हुए है। प्रत्येक भावपूर्ण मन स्थितिको सामाजिक मर्यादाके नियन्त्रणमे रखकर उपस्थित किया गया है। सखियोका सकोच, उनके द्वारा किये जानेवाले व्यग्य, पिताका प्रण और माताका भय, इन सबके बीचमे सीताकी पुनीत प्रीति, उनका औत्सुक्य, आकुलता, अधीरता, सकोच, जडता आदि भाव इस प्रकार दमक उठे है जैसे अवगुण्ठनके भीतरसे रमणीके आननकी कान्ति रह-रहकर विभिन्न छाया-बिम्बोकी सृष्टि करती हुई प्रतीत होती है।

'रति' भावका एक अन्य चित्र देखिये। राम-सीता-लक्ष्मण बन-पथ पर आगे बढ रहे हैं। मानो तीन सौन्दर्य विन्दुओंसे निमित एक रेखा उभरती जा रही हो। भोली-भाली ग्राम-वधुएँ आश्चर्य, उत्सुकता, स्नेह, सकोच और आनन्दमग्न होकर इस अद्भुत दृश्यको देखती रह जाती हैं। स्त्री कदाचित् अन्य स्त्रीका नैकट्य शीघ्र प्राप्त कर लेती है। एक भोली ग्राम-वधू विनयपूर्वक सीतासे पूछ बैठती है—

राज कुमारि विनय हम करहीं। तिय सुभाय कछु पूछत डरहीं।
काटि-मनाज-लजावनि हारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे॥

प्रश्न करनेवाली ग्राम-वधू निरी भोली न थी। सभवत. उसने सीता और रामके सम्बन्धका अनुमान कर लिया था। प्रश्न तो उसने सीताके मुखसे अपने अनुमानकी पुष्टि करानेके लिए ही किया था। सीताका असमजसमे पडना स्वाभाविक था। कविने जिस कौशलसे सीताके सकोच, गूढ प्रीति एव रति-जन्य अनुभावोका चित्रण किया है वह समस्त हिन्दी-साहित्यमे अद्वितीय है—

तिन्हहि बिलोकि, बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति बर बरनी।
सकुचि सप्रेम बाल मृगनयनी। बाली मधुर बचन पिक बयनी।
सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नाम लखनु लघु देवर मोरे॥
बहुरि बदन विधु अचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौंह करि बाँकी॥
खजन मजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सियँ सयननि॥

कविने चित्र-कल्पना 'हनुमन्नाटक' से ली है—

पथि पथिक वधूभि सादर पृच्छ्यमाना कुवलयदलनील कोऽय आर्ये तवेति।
स्मितविकसितगण्ड व्रीडविभ्रान्तनेत्र मुखमवनमयन्ती स्पष्टमाचष्ट सीता।

किन्तु हनुमन्नाटककी तुलनामे तुलसीका भावचित्र अधिक विशद, स्वाभाविक, सजीव और व्यञ्जक है। इसके द्वारा भी सीताका शील ही व्यक्त हुआ है। ग्राम-वधूके आग्रहकी रक्षामे उनकी सरलता, प्रश्नका स्पष्ट उत्तर न देनेमें उनकी स्वभावगत लज्जा, पहले लक्ष्मणके प्रति अपने सम्बन्धकी व्यञ्जनामे उनकी लोकमर्यादा और अन्ततः मात्र अनुभावोके आधारपर रामके प्रति सकेतित दाम्पत्य-भावनामे उनका स्त्रीत्व साकार हुआ है।

उनकी व्यक्तिगत साधना का आधार बन सकती है किन्तु इसमे माधुर्यभावकी भक्तिका सकेत कही नहीं मिलता। प्रस्तुत प्रसगमे इतना ही विचारणीय है कि 'गोतावली' के उपर्युक्त चित्रमे मर्यादाका ह्रास हुआ है या नही? जहाँतक मै समझता हूँ, उपर्युक्त चित्रमे रामके दाम्पत्य जीवनकी मर्यादा सुरक्षित है। इसके अभावमे रामका दाम्पत्य जीवन अपूर्ण रह जाता। तुलसीके हृदयमे जहाँ शत्रुजयी, धनुर्धारी रामका परुष रूप अकित था वही सीता-रामकी मधुरमूर्ति भी विराजमान थी। जिस तुलसीने आराध्य युग्मके 'माधुरी-बिलास-हास'का चित्रण किया उसीने यह भी लिखा—

राजत राम काम-सत सुन्दर।
रिपु रन जीति अनुज सग सामित, फेरत चाप-विसिष बनरुह-कर।
स्याम सरीर रुचिर श्रम-सीकर, सानित-कन बिच बीच मनोहर।
तुलसिदास यह रूप अनूपम हिय-सराज बसि दुसह बिपति हर॥

आराध्यके विविध रूपोकी चित्र-कल्पना तुलसीने की है किन्तु कही मर्यादाका उल्लघन नही हुआ है। गीतावलीमे 'बसन्त-विहार'का वर्णन करते हुए भी तुलसीने जहाँ राम और उनके सखाओ तथा सीता और उनकी सखियोको एक साथ उपस्थित किया है वहाँ राम के व्यक्तित्वमे शीलच्युतिकी गध नही आती। वसन्त-विहारमे नगरकी स्त्रियाँ ऋतुके अनुकूल मनोहर गीत गाती है और कही नर-नारी परस्पर गारी देते है। भगवान् राम इन्हे सुनकर हॅस देते हे। कवि इससे अधिक कुछ नही कहता। इस प्रकार राम और सीता के मधुर सम्बन्धोंके चित्रणमे भी तुलसीकी दृष्टि मर्यादा-सापेक्ष ही है।

दाम्पत्य-रतिके वियाग-पक्षका चित्रण भी राम-सीताके शीलके अनुकूल ही हुआ है। राम और सोता का प्रेम सभी स्थितियोमे सम है। सीताके वियोगमे रामको विरहोन्माद हो जाता है। वे पक्षियो, पशुओं और भौरोसे सीताका पता पूछते हैं। कभी यही पशु-पक्षी उनका उपहास करते हुए-से प्रतीत होते है। सीताके अभावमे उनके विविध अगोके प्राकृतिक उपमान रामको हर्षमग्न दिखाई देते है। यह स्थिति तभीतक रहती है जबतक सीताका पता नही लगता। गृद्धराज जटायुसे सोता-हरणका समाचार मिलनेपर यह विरह रामका पौरुष बनकर क्षात्रदर्पके रूपमे प्रकट होता है—

सीता हरन तात जनि कहहु पिता सन जाइ।
जो मै राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ॥

रामका वियोग परिस्थितिगत विवशताके कारण सीताको दैन्य और विषादकी मूर्ति बना देता है। हनुमानके शब्दोमे सीताका चित्र देखिये—

तुम्हरे बिरह भई गति जौन।
चित दै सुनहु, राम करुना निधि! जानौ कछु पै सकौ कहि हौ न।
लोचन-नीर कृपिन के धन ज्यौ रहत निरन्तर लोचन-कोन।
'हा धुनि'-खगी लाज-पिंजरी महँ राखि हिये बडे बधिक हठि मौन।

जिस सीताने बन-गमनके समय कहा था—

राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत न जनिअहिं प्रान।

वह यदि रामसे वियुक्त होनेपर दीन, मलीन, क्षीण होकर साक्षात् करुणाकी छाया-मूर्ति न बन गई होती तो अनुसुइयाके निम्नलिखित कथनकी सार्थकता कैसे प्रमाणित होती?—

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं।
तोहि प्रान प्रिय राम कहिउँ कथा ससार हित॥

'शोक' का चित्रण भी तुलसीकी कृतियोमे कम नही हुआ है। राम-बन-गमनका पूरा प्रसग शोक-सरिताकी विविध लहरियोसे पूर्ण है। कैकेयी द्वारा रामके बन-निष्कासनका वरदान माँगनेपर दशरथ शोक-सन्तप्त हो जाते हैं। वे इस आकस्मिक घटनासे सहम जाते है। कुछ भी कहनेमे असमर्थ हो जाते है। उनके शरीरका रग बदल जाता है। वे माथेपर हाथ रखकर नेत्र बन्द कर लेते है मानो स्वय शोक साकार होकर चिन्तामग्न हो गया हो[1]। पुत्र-निर्वासनका समाचार ज्ञात होनेपर माता कौशल्या विषादमग्न हो जाती है।

---

१ सुनि मृदु वचन भूप हियँ सोकू। ससि कर छुअत विकल जिमि कोकू।
गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा।
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनी हनेउ मनहुँ तरु तालू।
माथें हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन।
—मानस, अयो० का०, ३५८।

वे सहमकर सूख सी जाती है। नेत्रोमे अश्रु आ जाते है। शरीर थर-थर कॉपने लगता है[1]। रामको बनमे छोडकर अयोध्या लौटते हुए सुमन्त्रकी स्थिति तो और भी दयनीय है। उनके नेत्रोमे जल भरा है, दृष्टि मन्द हो गई है, कानोसे सुनाई नही पडता, ओठ सूख गये है, मुँह लट गया है, मुखका रग बदल गया है। ऐसा प्रतीत होता है मानो उन्होने अपने माता-पिताकी हत्या कर दी हो[2]। दशरथकी मृत्युपर तो सारी अयोध्या शोक-मग्न हो जाती है। रानियाँ, दास-दासी नगर-निवासी सभी विलाप करने लगते है।[3] युद्ध स्थलमे लक्ष्मणके मूर्छित होनेपर रामका करुण विलाप बडा ही मार्मिक है—

> मोपै तौ न कछू ह्वै भाई।
> ओर निबाहि भली बिधि भायप चल्यौ लषन-सो भाई।
> पुर पितु-मातु सकल सुख परिहरि जेहि बन-बिपति बॅटाई।
> ता सग हौ सुरलोक साक तजि सक्यौ न प्रान पठाई।[4]

'वात्सल्य'का सुन्दरतम चित्र 'गीतावली'मे देखा जा सकता है। तुलसीने वात्सल्यके उभय-पक्षो—'सयोग' एव 'वियोग'—को पूरी तन्मयतासे साकार किया है। छोटे-छोटे चरणो और नन्ही-नन्ही उँगलियो वाले भगवान् राम ठुमुक-

---

१ कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू।
नयन सजल तन थर-थर कॉपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी।
धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी।
—मानस, अयो० का०, ३७८।

२ लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी।
सूखहिं अधर लागि मुहुँ लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी।
बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी।
—मानस, अयो० का०, ४४९।

३ सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूपु सीलु बल तेजु बखानी।
करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा।
बिलपहिं बिकल दास अरु दासी। घर-घर रुदनु करहिं पुरवासी।
—मानस, अयो० का०, ४५८।

४ गीतावली-लकाकाण्ड, पद ६।

ठुमुक कर चल रहे है। पैरोमें पैजनियोका झुन-झुन रव मुखर हो रहा है। वे किलकारी मार कर हँसते है। उनके दूधके दाँत शोभायमान हो रहे है। वे कभी-कभी तोतली बोलीमे कुछ कह देते है। माता कौसल्या चुटकी बजा-बजा कर उन्हे नचाती है। उनकी बाल-लीलाओका गान करती है और दुलारती हैं।

छोटि छोटि गोडियाँ, अँगुरियाँ छबलीं छोटी,
नख-जाति मोती मानो कमल दलनि पर।
ललित आँगन खेलै, ठुमुकु ठुमुकु चलै।
झुँझुनु झुँझुनु पाँय पैजनी मृदु मुखर॥

× × ×

चुटकी बजावती नचावती कौसल्या माता,
बाल केलि गावति मल्हावती सुप्रेम-भर।
किलकि किलकि हँसै, द्वै-द्वै दँतुरियाँ लसै।
तुलसीके मन बसै तोतरे वचन बर॥[1]

तुल्सीके सयोग वात्सल्यके इन चित्रोमे कही-कही उनकी व्यक्तिगत दास्य-भावनाने वत्सलताको दबा दिया है। ऐसे स्थलोपर स्पष्टतः भाव-चित्रण मे कलात्मक सौष्ठवका ह्रास हुआ है। एक ऐसा ही चित्र देखिये—माता कौशल्या कहती है कि हे लाल! तुम पाल्नेमे पौढ जाओ, मै तुम्हे झुलाऊँ। यहाँसे आरभ करके अन्तमे कवि कौशल्या मातासे ही कहलाता है—'हे रघुश्रेष्ठ! मै कविता कामिनीके साथ मिलकर तुम्हारे पवित्र चरित्र गाकर तुम्हारे ही चरणोमे चित्त लगाऊँ।'[2] यहाँ माताका स्थान तुलसीने ले लिया है और वात्सल्यके स्थानपर दास्य भावकी प्रतीति होने लगा है। वियोग वात्सल्यका एक अनुपम चित्र 'गीतावली'मे अकित हुआ है। माता कौशल्या सान्त्वना देने वाली किसी सखीसे कहती है—

---

१ गीतावली, बालकाण्ड, पद ३३।

२ पौढिये लालन, पालने हौं झुलावौं।

× × ×

चारु चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि गाइ चरन चितु लावौं।

—गीतावली, बालकाण्ड, पद १८।

जिनके विरह-विषाद बॅटावन खग-मृग- जीव दुखारी ।
मोहि कहा सजनी समुझावति, हौ तिन्हको महतारी ॥[१]

'हौ तिन्हकी महतारी' मे जो व्यञ्जना है वह मातृ हृदयकी विरह-कातरता व्यक्त करनेवाली अनेक पक्तियोमे भी व्यञ्जित नही हो सकती थी। अपनोके अभावका दु'ख ही विरह व्यथाकी सृष्टि करता है। जिसे खग-मृग सभी अपना समझकर विषादमग्न है उसके वियोगमे उसकी माताकी व्यथा क्या सान्त्वनाके शब्दोसे कम हो सकती है ?

'उत्साह' का चित्रण 'मानस' 'कवितावली' और 'गीतावली' इन तीनो कृतियोमे सफलता पूर्वक किया गया है। इसके आश्रय लक्ष्मण, निषाद राज, राम अगद, हनुमान, मेघनाद आदि पात्र है। चित्रकूटमे भरतको ससैन्य आता हुआ सुनकर उग्रताकी मूर्ति लक्ष्मण वीररस की मूर्ति बन जाते है। भरत के साथ अपार सेना देखकर गगातट पर निषाद राज उत्साह पूर्वक राम के लिये युद्धभूमि मे प्राण निछावर करनेका निश्चय करते है। वर्षाऋतु व्यतीत होने पर सीताकी खोज के लिये भगवान् राम पौरुषमय उत्साह प्रदर्शित करते है। इसी प्रकार परिस्थिति और प्रसगके अनुसार उपर्युक्तपात्रोमेसे प्रत्येकमे उत्साह का स्थिति दिखाई गई है। 'उत्साह'का एक अच्छा चित्र 'गीतावली'मे लक्ष्मण शक्तिके अवसरपर हनुमानके शब्दोमे चित्रित हुआ है—

जौ हों अब अनुसासन पावौ ।
तौ चद्रमहि निचोरि चैल-ज्यौ आनि सुधा सिर नावौ ।
कै पाताल दलौ व्यालावलि अमृत-कुण्ड मँहि लावौ ॥
भेदि भुवन, करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौ ।
विबुध वैद बरबस आनौं धरि, तौ प्रभु अनुग कहावौ ॥
पटकौ मीच नीच मूषक-ज्यों, सबहि का पापु बहावौं ।
तुम्हरिहि कृपा, प्रताप तिहारहि नेकु बिलब न लावौ ।
दीजै साइ आयसु तुलसी-प्रभु, जेहि तुम्हरे मन भावौ ॥[२]

'भय' का सर्वोत्कृष्ट रूप 'कवितावली' मे लकादहनके समय देखा जा सकता

१. गीतावली, अयोध्याकाण्ड, पद ८५ ।
२ गीतावली, लकाकाण्ड, पद ८ ।

है। लकाके कनक-कोट विकराल ज्वाल-जालमे दग्ध हो रहे है। चारो ओर हा हाकार मच गया है। भीषण आतकसे निशाचर-राज रावण भी 'धरो-धरो', और 'धाओ-धाओ' कहनेके अतिरिक्त और कुछ नही कर पा रहा है। मन्त्री लोग उसे ठेलकर अलग करते हुए कहते है—"नाथ न चलैगो बल अनल भयावनो।" राक्षसिनियाँ कातर स्वरमे कहती है—"बार-बार कह्यो पिय कपि सो न लागि रे।" दशो दिशाओमे अग्निकी कराल लपटे छा गई है। सभी लोग धूम्रसे व्याकुल हो गये है। कोई किसीको पहचानता नही। लोग पानीके लिये ललकते है। विललाते है। शरीर जला जा रहा है। भाग-दौडमे पैरो तले रौंदे जा रहे है। एक-दूसरेको भगाने और बचानेके लिये आर्तस्वरमे पुकारते है—

लपट कराल ज्वाल जाल माल दहूँ दिसि,
धूम अकुलाने पहिचानै कौन काहि रे ?
पानी को ललात, बिललात, जरे गात जात,
परे पाइमाल जात, 'भ्रात ! तू निबाहि रे ॥
प्रिया तू पराहि, नाथ नाथ ! तू पराहि, बाप,
बाप तू पराहि पूत पूत तू पराहि रे" ॥
तुलसी बिलोकि लोग व्याकुल बिहाल कहैं,
"लेहि दससीस अब बीस चख चाहि रे" ॥[1]

'क्रोध' का चित्रण कुछ पात्रोके शील-वैशिष्ट्यको व्यक्त करनेके लिये किया गया है। परशुराम स्वभावसे क्रोधी है। लक्ष्मणमे भी सहज उग्रता है। इन्ही पात्रोमे 'क्रोध' की व्यञ्जना अधिक हुई है। मानव-जीवनमे भी क्रोधकी स्थिति इसी रूपमे देखी जाती है। एक ही परिस्थितिमे पडे हुए दो व्यक्तियोमे समान रूपसे क्रोधका उदय आवश्यक नही है। जनकका यह कथन—'यदि मै जानता कि पृथ्वी वीरोसे शून्य है, तो प्रण करके उपहासका पात्र न बनता'—सुनकर लक्ष्मण क्रोधाभिभूत हो जाते है किन्तु राम शान्त रहते है। कैकेयीका 'कोप' 'क्रोध' नही है। स्वाभाविक क्रोध इतना अवसर नही देता कि विशेष प्रकार की वेशभूषामे किसी निश्चित स्थानपर किन्ही

१. तुलसी ग्र०, सभा सस्करण, पृष्ठ २७४।

विशेष परिस्थितियोमे उसे नाटकीय ढग से व्यक्त किया जाय। कैकेयी ने क्रोधका अभिनय अधिक किया है। इसीलिये स्वय कविने उसके लिये 'रूठने' और 'कोहाने' शब्दोंका प्रयोग किया है।[१] अगद-रावण सवादमे रावण द्वारा रामकी निन्दाकी जानेपर अगद क्रोधसे तमतमा जाते है—

जब तेहिंकीन्ह राम कै निन्दा। क्रोधवत अति भयउ कपिंदा।
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गो घात समाना॥
कट कटान कपि-कुञ्जर भारी। दुहुँ भुज दड तमकि महि मारी।

'हास्य'का चित्र मानसमे तीन अवसरोपर प्रस्तुत हुआ है। 'नारद-मोह, 'शिव विवाह' और 'केवट राम-सवाद'। 'नारद-मोह' के प्रसगमे उद्देश्य गर्भित हास्य है। भगवान् नारदका 'परम हित' करना चाहते है। नारद भी भगवान्से यही चाहते है किन्तु नारद मोहान्ध है। उनकी स्थिति रोग-ग्रस्त व्यक्ति की है। रोगी कुपथ्य मे ही अपना हित समझता है। वैद्य कुपथ्य नही दे सकता। इस प्रसगमे प्रस्तुत हास्य-योजना 'नारद' के उरमे अकुरित गर्व-तरुको विनष्ट करनेके लिये की गई है। शिव-विवाह प्रकरणमे 'हास्य' का आधार विष्णुका व्यग्य है। केवट-राम-सवादमे केवटकी प्रेम-गर्भित ढिठाई और टेकने सुन्दर हास्यकी सृष्टि-की है। 'कवितावली'मे भी केवट-राम-सवादमे इन्ही आधारोपर 'हास्य' और 'भक्ति' का सुन्दर सामञ्जस्य दिखाया गया है। विन्ध्य-निवासी तपस्वियोकी इस कल्पनामे कि भगवान्के चरण-कमलोके स्पर्शसे बनके सभी शिला-खड चन्द्रमुखियोके रूपमे परिणत हो जायँगे—हास्य का छीटा दिखाई पडता है।

'जुगुप्सा' का चित्रण 'कवितावली' मे लका-दहन के भयानक दृश्यके साथ ही किया गया है।[३] 'जुगुप्सा' और 'भय' का परस्पर सम्बन्ध शास्त्रीय दृष्टिसे भी मान्य

---

१ जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहि 'कोहाब' परम प्रिय अहई।
—अयोध्या० काण्ड, पृ० ३५७।

२ रामचरितमानस, लका काण्ड, पृष्ठ ७६८।

३ हाटबाट हाटक पिघिलि चलो घी सो घनो,
कनक कराही लक तलफति ताय सों।
नाना पकवान जातुधान बलवान सब,
पागि-पागि ढेरी कीन्हीं भली भाँति भाय सों।
—तु० ग्र०, पृ० १७७।

है। 'निर्वेद'का सुन्दरतम उदाहरण 'विनयपत्रिका' मे देखा जा सकता है। यह 'निर्वेद' किसी क्षणिक मानसिक क्षोभकी प्रतिक्रियाके रूपमे न होकर जीवन के समस्त क्रिया-कलापोपर शुद्ध ज्ञान-दृष्टिसे किये गये विचारपर आधृत है—

जनम गयौ बादिहि बर बीति।
परमारथ पाले न परयो कछु, अनुदिन अधिक अनीति।
खेलत खात लरिकपन गो चलि, जौबन जुवतिंन लियो जीति॥
रोग-वियोग-सोक-स्रम-सकुल बडि बय बृथहि अतीति।
राग-रोष-इरषा-बिमाह बस रुची न साधु-समीति॥
× × ×
तुलसी प्रभु तें हाइ सो कींजिय समुझि बिरद की रीति॥[१]

तुल्मी-साहित्यमे उपर्युक्त स्थायी भावोके अतिरिक्त काव्यशास्त्रमे वर्णित सभी सञ्चारियो की स्थिति देखी जा सकती है। वस्तुत' प्रत्यक्ष जगत्की प्रत्येक क्रिया मानव-मनपर प्रभाव डाल्तो है। प्रत्येक परिस्थिति मनको उद्वेल्ति करती है। मानव-जीवनमे आनेवाली परिस्थितियोकी गणना सभव नही है। अत मनो-वेगो और भावोकी सख्याका निर्धारण भी असभव है। अकेले तुल्सीके रामचरित मानस मे जीवनयात्राकी असख्य स्थितियाँ चित्रित है। इसलिये इस ग्रन्थमे ऐसी अनेक मन'स्थितियाँ भी अकित है जिन्हे नाम नही दिया जा सकता। पिछले पृष्ठोमे जिन भाव-चित्रोको उपस्थित किया गया है उनके आधारपर तुल्सीके काव्य-सौष्ठव (भाव-चित्रणकी दृष्टिसे) की झलक मिल जाती है। उनका भाव-चित्रण शीलनिरूपणका अग बन गया है। 'मानस'मे तो सर्वत्र ऐसा ही हुआ है। अन्यकृतियोमे भी राम-कथाका क्षीण आधार वर्तमान है, अत. वहाँ भी भावोकी उपस्थिति पात्र विशेषके परिचित शीलके अनुकूल ही है। भावोकी विविधता होनेपर भी उनके चित्रणमे पूरी तन्यमता और गहराई है। कविने ऐसे भावोका सामञ्जस्य भी उपस्थित किया है जो सामान्यतः परस्पर विरोधी प्रतीत होते है। 'मानस'मे कविका ध्यान कथाके सन्तुलनपर अधिक रहा है। इसलिए किसी भी भावको आवश्यकतासे अधिक विस्तार नही दिया जा सका है। कथा-धाराको प्रभावित करनेवाली जो घटना जितनी ही महत्त्वपूर्ण है उससे उद्भूत भाव-धारा

१ विनयपत्रिका, पद सख्या २३४।

भी उतनी ही विशद, व्यापक और गम्भीर है। अन्य कृतियोमे इस क्रमका निर्वाह नही हुआ है। 'गीतावली'मे कोमल भावनाओको ही महत्त्व दिया गया है। इसीलिए उत्तरकाण्डको अधिक विस्तार देना पडा है। क्योकि उसमे रामकी मधुचर्याका प्राधान्य है। 'कवितावली' मे कथाकी दृष्टिसे 'सुन्दर' और 'लकाकाण्ड' को महत्त्व दिया गया है। अतः इसमे परुष भावनाओके चित्र अधिक सजीव है। 'उत्तरकाण्ड'मे छन्दोकी सख्या अन्य काण्डोकी तुलनामे अधिक है किन्तु इसमे रामकी महिमाका गान ही अधिक है। कही-कही कवि के व्यक्तिगत जीवनके सकेत मिल जाते है। भाव-चित्रणकी दृष्टि से कवितावलीका उत्तरकाण्ड अधिक महत्त्वपूर्ण नही है। 'विनयपत्रिका'मे 'दैन्य' और 'निर्वेद'का ही प्राधान्य है। इन दोनो भावनाओको इतना अधिक विस्तार समस्त हिन्दी साहित्यमे अन्यत्र कही नही मिला है।

अभिव्यक्ति-सौदर्य

तुलसीने 'वस्तु-तत्त्व'की सुन्दरता पर अधिक ध्यान दिया है। 'भणिति'के 'भदेस' होनेकी चिन्ता उन्हे नही थी, किन्तु 'वस्तु' और 'रूप' दोनो की स्थिति अन्योन्याश्रित है। तुलसीके काव्यका वस्तु-तत्त्व (राम चरित) जितना रमणीय है उसका रूप-तत्त्व या अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही कलात्मक है। काव्य-शैली, अलकरण, शब्द-सघटन, छन्द-योजना आदि उपकरण अभिव्यक्ति सोन्दर्यके सहायक उपादान है। अतः इनपर अलग-अलग विचार किया जायगा।

शैली—'रामचरितमानस' प्रबन्ध काव्य है। रामके जीवनकी विशद गाथा प्रबन्ध शैलीमे ही सुन्दरतम रूपमें प्रस्तुतकी जा सकती थी। प्रबन्धशैलीमे लिखे गये काव्योके मुख्यतः दो रूप मान्य है—महाकाव्य और खडकाव्य। 'मानस' महाकाव्य है। महाकाव्यके लिये जिन लक्षणोको भारतीय एव पाश्चात्य काव्य-शास्त्रमे आवश्यक माना गया है, वे सभी 'मानस' मे विद्यमान है। यह सर्ग वद्ध है। इसका आरम्भ सरस्वती और गणेशकी वन्दनासे किया गया है। इसके बाद क्रमशः पार्वती, शकर, गुरु, वाल्मीकि, हनुमान, सीता, राम आदिकी वन्दनाकी गई है। इसके प्रत्येक सर्ग (काण्ड) मे एक ही प्रकारके छन्द (दोहा-चौपाई) प्रयुक्त हुए है। सर्गान्तमे 'हरिगीतिका' छन्दका प्रयोग करके 'वृत्त-परिवर्त्तन'के नियमकी रक्षाकी गई है। इसका आधार रामका जीवन-वृत्त है जो समस्त

भारतीय समाजमे प्रचलित है। कथा-सघटनमे नाटक की सभी सन्धियाँ मिल जाती है। इसके नायक धीरोदात्त गुणयुक्त भगवान् राम है, जो क्षत्रिय कुमार भी है, विष्णुके अवतार भी है और ब्रह्म भी है। इसमे शान्तरस का प्राधान्य है। अन्य सभी रस भी प्रसगानुसार प्रवाहित है। इसका लक्ष्य भगवान् रामके चरणोमे प्रीति प्राप्त कराना और कलियुगके समस्त पापोका शमन करना है। इसमे सध्या, प्रात., सूर्य, वर्षा, शरद, पर्वत, नगर, युद्ध, नदी, सरोवर आदिका वर्णन भी किया गया है। इन वस्तुओके वर्णनसे मानवकी विकास-यात्राके साथ विकसित सभ्यताके स्तरोका बोध होता है। इसमे खलोकी निन्दा और सज्जनोकी प्रशसा भी की गई है। इसका नामकरण कथा नायक भगवान् रामकी जीवन-लीलाको ध्यानमे रखकर किया गया है। महाकाव्योको मर्यादाके भीतर आने-वाली केवल दो बाते 'मानस'मे नही है। एक तो इसकी सर्ग (काण्ड) सख्या सात ही है। दूसरे इसमे ऐसा कोई सर्ग नही है जिसमे विविध वृत्तो का प्रयोग किया गया हो।

उपर्युक्त बाह्य लक्षणोके अतिरिक्त 'मानस'मे महाकाव्यकी मर्यादाकी रक्षा करनेवाले अन्य आन्तरिक विशिष्ट तत्त्व भी है। महाकाव्य 'महत्'की काव्यात्मक उपलब्धि है। 'मानस'का सब कुछ महान् है। भारतीय धर्म, दर्शन, सस्कृति, जीवन-मर्यादा, सभ्यता, कला, साधना आदिका सुन्दरतम रूप 'मानस'मे सुर-क्षित है। 'मानस'का अध्ययन भारतवर्षकी महानतम उपलब्धियोका अध्ययन है। मानव-कल्याणके लिये युग-युगमे जिन तत्त्वोकी आवश्यकता हो सकती है, उन्हे हम इसमे एकत्र समन्वित पाते हैं। 'पूर्णमानव'की उपलब्धिके लिये हम युग-युगसे प्रयत्न करते आये है। 'रामत्व' उसी पूर्णताका पर्याय है।

'मानस'के अतिरिक्त 'रामललानहछू', 'जानकी मगल' और 'पार्वती-मगल'की शैली भी प्रबन्धात्मक है। इन्हे खण्डकाव्य कह सकते है। इनमे 'मानस'की तुलनामे प्रौढता की कमी है।

तुलसीकी शेष कृतियाँ मुक्तक काव्यकी सीमामें आती है 'गीतावली', 'कृष्ण-गीतावली' और 'विनयपत्रिका' गीति मुक्तक रचनाएँ मानी गई है। गीतिकाव्य-की सबसे बडी कसौटी है—'वैयक्तिकता'। सगीतात्मकता, तन्मयता, सक्षिप्तता, भावोकी एकरूपता, अनुभूतिकी तीव्रता, पद-रचनाकी कोमलता, सहज

उच्छ्वसितता आदि विशेषताएँ तो वैयक्तिकताके अनुसारी परिणाम है। इस कसौटीपर एकमात्र 'विनयपत्रिका' ही शुद्ध गीतिकाव्य मानी जा सकती है। 'गीतावली'की रचना राग-रागिनियोमे हुई है किन्तु इसमे कविके निजी रूपके दर्शन नही होते। इसमे भी राम कथाका ही गान किया गया है। डॉ० माताप्रसाद गुप्तके शब्दोमे 'वह तो मूलत 'पदावली रामायण' या 'पद बन्ध रामायण' थी, 'गीतावली' नाम तो बादकी कल्पना है।'[१] यही स्थिति 'कृष्णगीतावली'की है। कृष्णके 'लीला-रस' के साथ तुलसीका मानसिक तादात्म्य कम ही कम था। इन दोनो कृतियोमे कविको विविध पात्रोकी भूमिकामे स्वयको रखकर उपस्थित होना पडा है।

'विनय-पत्रिका' सच्चे अर्थोमे एक पत्रिका है। पत्र लिखते समय हम अपनेको व्यक्त करते है। जिसके लिये पत्र लिखा जाता है उससे हमारी मानसिक दूरी कमसे कम रहती है। 'विनयपत्रिका' के भी सभी पद शुद्ध गीतिकी सीमामे नही आते। प्रारम्भमे गणेश, शिव, दुर्गा, गगा, यमुना, काशी, चित्रकूट, हनुमान, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता और रामकी महिमाका गान किया गया है। इसमे कविकी निजी मन.स्थितिके चित्र नही है। विनय पत्रिकाके अन्तिम पदोमे तुलसीका व्यक्तित्व कुछ अधिक निखरा है। तुलसीके समय तक दास्य-भक्तिके भी शास्त्रीय विधि-निपेध बन चुके थे। 'विनय-पत्रिका' का पर्याप्त अश दास्य-भक्तिकी शास्त्रीय मर्यादाकी रक्षामे लग गया है। यहाँ भी कविने अपनेको कलिमल-ग्रसित जीवकी भूमिकामे प्रस्तुत किया है। कही-कही यह भूमिका यथार्थताके अति निकट पहुँच गई है और कविकी धूमिल छाया उभर आई है। "कैसे देउँ नाथहिं खोरि", "है प्रभु, मेरोई सब दोसु", "कहाँ जाउँ ? कासो कहो ? को सुनै दीन की ?", "मै तोहिं अब जान्यो ससार।", "गरैगी जीह जो कहौ और को हो।" "मोहि मूढ मन बहुत बिगोयो", "कहा न कियो, कहाँ न गयो, सीस काहि न नायो ?" आदि पदोमे तुलसीका सघर्षरत व्यक्तित्व झाँक रहा है। तात्पर्य यह कि वैयक्तिकताकी दृष्टिसे 'विनय-पत्रिका' का गीतिकाव्यत्व भी सापेक्षिक दृष्टिसे ही मान्य है।

१ तुलसीदास, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, पृ० १७२।

'कवितावली' मुक्तक-रचना है। इसमे भी राम-कथाका आधार लिया गया है। इसकी रचना पर्याप्त लम्बी अवधिमे हुई होगी। इसके उत्तरकाण्डमे राम-कथाके वर्णनपर ध्यान नही दिया गया है। राम-महिमाका गान ही कविका प्रधान लक्ष्य रहा है। इस काण्ड की दूसरी विशेषता कविकी आत्म व्यञ्जना है। आत्म-व्यञ्जना और सामयिक परिस्थिति-चित्रोकी दृष्टिसे कवितावलीके उत्तरकाण्डका महत्त्व पूरे तुलसी-साहित्यमे सर्वाधिक है। उत्तरकाण्डमे १८३ छन्द है। शेष सभी काण्डोकी सम्मिलित छन्द सख्या भी इससे कम है। सन्तुलनका यह अभाव सिद्ध करता है कि यह एक सग्रह ग्रन्थ है। इसमे राम-कथासे सम्बद्ध परुष-भावोको ही अधिक महत्त्व दिया गया है।

'दोहावली','वैराग्य-सन्दीपिनी','बरवै रामायण', और 'रामाज्ञाप्रश्न' ये सभी रचनाये मुक्तक शैलीमे ही है। दाहावलीमे नाम-माहात्म्य, धर्मोपदेश, नीति-कथन आदिका प्राधान्य है। वैराग्यसदीपिनीमे सन्त-स्वभाव और सन्त-महिमाका वर्णन किया गया है। 'रामाज्ञा प्रश्न' मे रामकथाके साथ ही शकुन विचारकी सामग्री भी प्रस्तुत की गई है। इसका उद्देश्य शकुन विचार ही है। काव्य-कला-की दृष्टिसे 'बरवै रामायण' का विशेष महत्त्व है। यह रचना भी स्फुट छन्दाका सग्रह मात्र है। भाव और कलाका इतना सुन्दर सयोग अन्यत्र दुर्लभ है।

अलकरण—तुलसीकी प्रवृत्ति चमत्कार प्रधान नही थी। इसीलिये अल-कारोंके प्रति उनका आग्रह अधिक नही था, फिर भी काव्यमे उनकी स्थिति उन्हे मान्य है। यदि उनका काव्य-विषय 'राम-सीय-जस-सलिल' है तो 'उपमा' (अलकरण) उस सलिलमे 'मनोरम बीचि-विलास' है[1]। 'उपमा'का प्रयोग कविने व्यापक अर्थमे किया है। वह सभी प्रकारके अलकारोका उपलक्षण है। उपमाका आधार सादृश्य है। अल्कारोकी कल्पनाके मूलमे सादृश्य-भावना प्रधान रही है। इसलिए उपमाको 'अलकारशिरोरत्न' कहा गया है। यो तो तुलसीकी रचनाओमे सभी अल्कार प्राप्त होते है किन्तु 'उपमा', 'रूपक', 'उत्प्रेक्षा','उदाहरण','प्रतीप', 'उल्लेख', 'व्यतिरेक','अपह्नुति', 'मीलित', 'सभावना','सन्देह' आदि अलकारोका प्रयोग सर्वाधिक हुआ है। तुलसीका सर्वप्रिय अल्कार (रूपक) है। 'रूपक'का

---

१ रामसीय जल सलित सुधासम। उहमा विचिविलास मनोरम।

—मानस, बालकाड, ७९।

प्रयोग वे वही करते है जहॉ कोई गम्भीर बात विशद और प्रभावोत्पादक ढगसे कहनी होती है। सादृश्य-मूलक अलकारोका महत्त्व ही इसी बातमे है कि वे कथ्यको एक सर्वविदित वस्तुके बिम्बका आधार लेकर सर्व-सुलभ बना देते है। 'मानस'का सबसे बडा रूपक स्वय रामचरित-मानस रूपक है। 'रामचरितमानस' (रामायण)के विविध वर्ण्य-विषयोको सरोवरके विविध उपादानोके साथ रखकर देखा गया है। सरोवर और उसके उपादान सर्वविदित है। उनके माध्यमसे कवि 'चरित-सरोवर'की कल्पनाको अधिक सरलतासे ग्राह्य बना सका है।

तुलसीने किसी अलकारका प्रयोग मात्र प्रदर्शनके लिये नही किया है। कही किसी पात्रके स्वभावकी व्यञ्जनाके लिए, कही किसी भावकी पूर्ण उद्दीप्तिके लिए, कही किसी चित्रको आकार देनेके लिये, कही किसी सूक्ष्म-भावनाको स्थूल रूपमे मूर्त करनेके लिये, कभी किसी परिस्थितिके महत्त्वको उभारनेके लिये और कभी किसी एक ही व्यक्तिके प्रति विभिन्न व्यक्तियोकी मन-स्थितियोको व्यक्त करनेके लिये उन्होने विभिन्न अलकारोका आधार लिया है। कुछ उदाहरणोसे इस कथन-की सत्यता सिद्ध हो जायगी। 'दृष्टान्त' और 'उदाहरण' अलकारोका प्रयोग प्रायः पात्रविशेषकी सूक्ष्म स्वभावगत विशेषताओके चित्रणके लिये किया गया है—

सहज सहल रघुबर बचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोंक जल वक्रगति जद्यपि सलिल समान॥

—दृष्टान्त

उपर्युक्त दोहेमे कैकेयीकी कुटिलता व्यक्त करना ही कविको अभीष्ट है। इसीलिए जोककी वक्रगतिका उदाहरण दिया दया है।

सखिन सहित हरषीं अति रानी। सूखत धान परा जनु पानी॥
सीय सुखहिं वरनिय केहि भॉती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती॥

—उत्प्रेक्षा

उर्युक्त चौपाइयोमे 'हर्ष' और 'सुख'की व्यञ्जनाके लिये 'उत्प्रेक्षा'का आधार लिया गया है।

बालधी बिसाल विकराल ज्वाल-जाल मानौ
लक लीलिबे को काल रसना पसारी है।

× × ×

तुलसी सुरेस-चाप कैधौ दामिनी कलाप,
कैधौ चली मेरु तें कृसानु-सरि भारी है।
—सन्देह-गर्भित उत्प्रेक्षा

यहाँ ज्वाल-जाल युक्त विशाल बालधीकी चित्र-कल्पनाको साकार करनेके लिये ही सन्देहगर्भित उत्प्रेक्षाका प्रयोग किया गया है।

कामिहिं नारि पियारि जिम, लाभिहि प्रिय जिमि दाम।
त्यो रघुनाथ निरन्तर प्रिय लागहु मोहि राम॥
—उपमा

उपर्युक्त दोहेमे रामके प्रति तुलसीकी उष्ण और उत्कट प्रेम-भावनाको मूर्त करनेके लिए ही 'उपमा'का आधर लिया गया है। यहाँ 'धर्म'की समताका औचित्य उसकी उत्कटताके आधारपर ही सिद्ध किया जा सकता है।

"पुनि आउब एहि बेरियाँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली।"

उपयुक्त चौपाईमे 'काकुवक्रोक्ति'का प्रयोग किया गया है। यहाँ कविका लक्ष्य एक विशिष्ट क्षणके महत्त्वको उभारना है। रामके भुवनमोहन सौन्दर्यके गम्भीर प्रभाव के कारण सीता आत्म-विस्मृतिकी स्थितिमे हो गई है। परिस्थितिकी यह गम्भीरता चतुर सखीकी उक्तिवक्रतासे व्यञ्जित की गई है।

देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहुँ बीर रसु धरें सरीरा।
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहु भयानक मूरति भारी॥
रहे असुर छल छोनिप बेषा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा।
पुरबासिन्ह देखे दोउ भाई। नर भूषन लोचन सुख दाई॥
—उल्लेख

उपर्युक्त चौपाइयोमे उल्लेख अलकारका अच्छा उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इसके द्वारा 'राम'के प्रति विभिन्न व्यक्तियो की धारणा स्पष्ट हुई है।

उपर्युक्त विवेचनसे प्रकट है कि तुलसी ने अलकारोका प्रयोग परिस्थिति-गत औचित्यको ध्यानमे रखकर किया है। 'बरवै रामायण'मे उनकी मनोवृत्ति कुछ अधिक कलात्मक हो गई है। इसलिये उसके दो-एक छन्दोमे चमत्कार प्रियता

झलकती है।[१] कदाचित् ऐसा इसलिये हुआ कि 'बरवै रामायण'का कोई गम्भीर उद्देश्य नहीं था। उसकी रचना अलकारोको उदाहृत करनेके लिये ही हुई होगी।

शब्द-सघटन—(पद-रचना) भावानुभूतिको सुन्दर ढगसे व्यक्त करनेके लिये शब्द-सघटनपर ध्यान देना आवश्यक है। विशिष्ट पद-रचनाका भाव-सौन्दर्यसे अनिवार्य सम्बन्ध है। 'रीति'को काव्यकी आत्मा माननेका यही रहस्य है। तुलसीका काव्य-विषय व्यापक, गम्भीर तथा पूर्ण जीवनको व्यक्त करनेमे समर्थ है। अतः अनिवार्यत उनका शब्द-सघटन व्यापक आधारपर प्रतिष्ठित है। आचार्य भिखारीदासने तुलसी-साहित्यमे विविध-भाषा-शब्दोकी स्थितिको उनके गौरवके अनुकूल माना है।[२] राजशेखरने काव्यमीमासामे काव्यपुरुषकी कल्पना करत हुये 'सस्कृत'को उसका मुख, 'प्राकृत'को बाहु, 'अपभ्रश'को जघन, 'पैशाची' को पैर तथा भाषाके मिश्र रूपको उसका उरु बताया है[३]। इससे प्रकट है कि काव्य-पुरुषकी कल्पनामे भाषाकी विविधताका महत्त्वपूर्ण स्थान मान्य है। इस दृष्टिसे 'तुलसी' का महत्त्व हिन्दी-कवियोमे अधिक बढ जाता है। उनके काव्योमे 'शुद्ध सस्कृत', 'प्राकृत, 'अपभ्र श', 'ब्रजी', 'अवधी' 'बुन्देलखण्डी', 'राजस्थानी', 'भोजपुरी' और 'खडीबोली' आदिके साथ ही अरबी-फारसी जैसे विदेशी भाषा-शब्दोका प्रयोग भी हुआ है। आज भी हिन्दी-भाषाके कोश-निर्माणमे उपर्युक्त सभी भाषाओसे शब्द ग्रहण करना ही समीचीन माना गया है।

विषयके अनुकूल भाषाको समृद्ध करनेके साथ ही भावानुकूल-शब्द-सौष्ठवपर भी तुलसीने पर्याप्त ध्यान दिया है। 'शृगार'रसकी निष्पत्तिमे माधुर्य गुण विशेष सहायक होता है। 'करुण' और 'शान्त'रसो की अभिव्यक्तिमे भी यह उपकारक होता है। माधुर्य गुणके लिये 'टवर्ग'के वर्ण, 'र'के सयोगसे बने शब्द तथा समास

---

१ बिबिध बाहिनी बिलसति सहित अनन्त।
जलधि सरिस को कहै राम भगवन्त॥ —बरवै रामायण।

२ तुलसी गग दुवौ भए सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन में मिली भाषा विविध प्रकार॥ —भिखारीदास।

३ "शब्दार्थौ ते शरीर, सस्कृत मुख, प्राकृत बाहु, जघनमपभ्रश, पैशाच पादौ, उरो मिश्रम्"।
—काव्यमीमासा, ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बडौदा, पृष्ठ ६।

बहुल पदावली वर्जित है। गीतावलीमे कोमल भावोंको ही प्रधानता दी गई है। इसीलिये इस कृतिमे माधुर्य गुण-युक्त पदावलीका ही प्रयोग किया गया है। ओज गुण-युक्त पदावली 'वीर' 'रौद्र' और 'बीभत्स' रसोके अनुकूल पडती है। 'कवितावली' परुष भावोसे युक्त रचना है। अत. इसमे ओज गुणका प्राधान्य है। 'प्रसाद गुण' सामान्यत सभी रसोका उपकारक है। 'मानस' मे प्रसाद गुणपर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। यौ, इस महान् कृतिकी भाषामे सभी गुण मिल जाते है क्योकि इसमे सभी रसोकी निष्पत्ति हुई है।

डॉ० रामकुमार वर्माने तुलसीकी पदरचना-सम्बन्धी एक अन्य विशेषताकी ओर भी ध्यान आकृष्ट किया है। वे वर्ण मैत्रीके आधारपर अर्थ-चमत्कार उत्पन्न करनेकी बात कहते है। उदाहरणके लिये—

जौ पटतरिय तीय महुँ सीया। जग अस जुबति कहाँ कमनीया।
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी॥

इन चौपाइयोमे कवि सरस्वती पार्वती, और रति तीनोको सीतासे हीन (लघु) प्रदर्शित करना चाहता है। अत उसने तीनोके साथ लघु वर्णोंकी योजना की है।[1] वर्ण-मैत्रीका यह स्वरूप साभिप्राय प्रस्तुत किया गया होगा ऐसा नही कहा जा सकता। अन्यत्र भी उपमानोको हीन दिखाया गया है किन्तु सर्वत्र ऐसी विशेषता नही लाई गई है। जो कुछ भी हो, यह तो मानना ही होगा कि तुलसीको भाषापर अपार अधिकार है। मध्ययुगका अन्य कोई कवि भाषाकी इतनी शक्ति लेकर काव्य-क्षेत्रमे अवतीर्ण नही हुआ था। शब्द-भाण्डारकी विशालताके साथ ही कथ्यके अनुकूल वाक्य विन्यास, शब्द-चयन, लोकोक्तियों और मुहावरोका उचित प्रयोग, नाद सौन्दर्य एव चित्रमयता तुलसीकी भाषाकी प्रमुख विशेषतायें है।

---

१ गिरा = **मुखर** (मुखर शब्दमें सभी अक्षर लघु हैं।)
भवानी = **तनु अरध** (इसमें भी सभी अक्षर लघु हैं।)
रति = अति दुखित अतनु पति जानी (तुकान्तको छोडकर सभी अक्षर लघु हैं)
—हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ ४६१।

कुछ उदाहरण लीजिए—

सहज वाक्य-विन्यास—अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।

—कवितावली

मुहावरोंका प्रयोग—रेख खँचाइ कहउँ बलु भाषी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी।

—मानस

शब्द-चयन—फटिक सिला मृदु विसाल, सकुल सुरतरु तमाल

ललित-लता-जाल हरति छवि वितान की।

—गीतावली

नाद-सौंदर्य—कंकन किंकिन नूपुर धुनि सुनि।

—मानस

चित्रमयता—सुभग सरासन सायक जोरे।

खेलत राम फिरत मृगया बन बसति सो मृदु मूरति मन मोरे।
पीत बसन कटि, चारु चारि सर, चलत काटि नट सो तृन-तोरे।
स्यामल तनु स्रम-कन राजत ज्यों नव घन सुधा-सरोवर खोरे।
ललित कंध, बर भुज, बिसाल उर, लेहि कंठ-रेखैं चित चोरे।
अवलोकत मुख देत परम सुख लेत सरद-ससि की छवि छोरे।
जटा मुकुट सिर सारस-नयननि गौंहै तकत सुभौंह सकोरे।
सोभा अमित समाति न कानन, उमगि चली चहुँ दिसि मिति फोरे।
चितवत चकित कुरंग कुरंगिनि सब भए मगन मदन के भोरे।
तुलसिदास प्रभु बान न मोचत, सहज सुभाय प्रेम बस थोरे।

—गीतावली

छन्द-योजना

तुलसीने अपनी कृतियोमे विविध प्रकारके मात्रिक और वर्णिक वृत्तोका प्रयोग किया है। यद्यपि उनकी प्रवृत्ति छन्दोके ज्ञान-प्रदर्शनकी नही थी, किन्तु उनकी सभी रचनाओमे कुल मिलाकर लगभग २८ प्रकारके छन्द प्रयुक्त हुये है।

रामचरितमानसमे—दोहा, सोरठा, चौपाई, चौपैया, तोमर, डिल्ला, त्रिभङ्गी, हरिगीतिका आदि मात्रिक तथा अनुष्टुप (श्लोक) इन्द्रवज्रा, तोटक,

नगस्वरूपिणी, भुजगप्रयात, मालिनी, रथोद्धता, वसततिलका, वशस्थ, शार्दूल-विक्रीडित, स्रग्धरा आदि वर्णिक वृत्तोका प्रयोग हुआ है।

कवितावलीमे—कवित्त, छप्पय, सवैया, झूलनाका प्रयोग किया गया है।

बाहुकमे—घनाक्षरी, छप्पय, मत्तगयन्द और झूलनाका प्रयोग किया गया है।

बरवैरामायणमे—'बरवै' छन्द प्रयुक्त है।

जानकीमगल और पार्वतीमगलमे 'अरुण' और 'हरिगीतिक'का प्रयोग हुआ है। रामलल्लानहछूमे 'सोहर' छन्द प्रयुक्त है।

रामाज्ञाप्रश्न, सतसई और दोहावलीमे 'दोहा' छन्द प्रयुक्त है।

वैराग्यसदीपनीमे 'दोहा' 'सोरठा' और 'चौपाई'का प्रयोग हुआ है। गीतावली, श्रीकृष्णगीतावली, और विनयपत्रिका पदशैलीमे लिखी गई है। इनकी रचना राग-रागिनियोके आधारपर हुई है। छन्द-शास्त्रकी दृष्टिसे देखा जाय तो इन पदोमे कई प्रकारके छन्दोका आभास हो सकता है। इस प्रकार यह तो निर्विवाद है कि तुलसीको छन्द-शास्त्रका अच्छा ज्ञान था। उन्होने कुछ सोच-समझकर ही कहा था—

> आखर अरथ अलकृत नाना। छद प्रबध अनेक बखाना॥
> भाव-भेद रस-भेद अपारा। कबित दोष गुन विविध प्रकारा॥

उन्हे काव्य-शास्त्रके विविध अगोका पूर्ण ज्ञान था किन्तु इनका प्रदर्शन उनका ध्येय नही था। उन्होने वर्ण्य-विषयको दृष्टिमे रखकर उसके अनुकूल ही छन्दो का प्रयोग किया है। उनका एकमात्र उद्देश्य अभिव्यक्तिकी पूर्णता है। भाषा, शैली, छन्द, गुण, रीति, अलकार, उक्तिवैचित्र्य ये सभी उसकी पूर्णतामे सहायक है। इसलिये समर्थ कविकी रचनामे ये स्वत' साधन बनकर उपस्थित होते है। रससिद्ध कवि तुलसीकी रामभ्रमर-भूषित कवितामञ्जरीमे भी ये सभी उपकरण अभिव्यक्तिको पूर्ण और सुन्दर बनानेके लिये सहज रूपमे संघटित है।

तुलसी का समाज-दर्शन

तुलसी-साहित्यका जितना महत्व आध्यात्मिक दृष्टिसे है, उससे कम महत्त्व लौकिक या सामाजिक दृष्टिसे नही है। तुलसीका भक्ति-मार्ग ठोस सामाजिक दर्शन पर आधृत है। उन्होने सामाजिक समस्याओकी कही भी उपेक्षा नही की

है। 'रामचरितमानस' का प्रारम्भ ही ससारकी 'दारुणविपत्ति'के वर्णन और प्रभु द्वारा उसके निवारणकी सभावनासे हुआ है। तुल्सीके सामने एक ऐसा समाज है जिसमे शासक स्वेच्छाचारी है। शासन हिंसा पर आधृत है। अनीति और अत्याचार ही शासक वर्गके क्रिया-कलाप है।[१] सारा ससार आचरण-भ्रष्ट हो गया है।[२] धर्मके निर्मूलनके लिये सभी प्रकारके प्रयत्न किये जाते है।[३] जप, तप, भक्ति, योग, वैराग्य, यज्ञ आदि धार्मिक कार्य समाप्त हो गये है।[४] चोरो, जुआरियो, और लम्पटो की वृद्धि हो रही है।[५] धर्मकी अत्यधिक ग्लानि देखकर पृथ्वी व्याकुल हो गई है।[६] समाजका यह रूप उन्हे मान्य नही है। समाजका जो आदर्श रूप उनकी मानसिक कल्पनामे साकार था उसका विस्तृत वर्णन उन्होने राम-राज्यकी स्थापनाके रूपमे किया है। राम-राज्य वर्णनके प्रसगमे तुल्सीका समाज-दर्शन व्यावहारिक रूपमे सामने आता है। तुल्सीने परम्परागत भारतीय समाज-व्यवस्थाके अन्तर्गत ही अपने युगकी समस्याओका समाधान प्राप्त करनेकी चेष्टाकी है। भारतीय समाज व्यवस्थाकी सबसे बडी उपलब्धि वर्णाश्रम धर्म है। राम-राज्यकी स्थापनाके साथ ही तुल्सीने वर्णाश्रमधर्मकी पूर्ण प्रतिष्ठाकी है।[७] आश्रम धर्ममे (ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, बानप्रस्थ, सन्यास) क्रमश·

---

१ बरनि न जाइ अनीति, घोर निशाचर जे करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्हके पापन कवन मिति।

—मानस, पृ० १८५।

२ अस भ्रष्ट अचारा भा ससारा धर्म सुनिअ नहिं काना।

—वही, पृ० १८५।

३ जेहि विधि होइ धर्म निर्मूला, । सो सव करहिं वेद प्रतिकूला।

—वही, पृ० १८५।

४ नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहुँ सुनिअ न वेद पुराना।

—वही, पृ० १८५।

५ बाढे खल वहु चोर जुआरा। जे लपट परधन परदारा।

—वही, पृ० १८५।

६ अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी।

—वही, पृ० १८६।

७ बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग,

—वही, पृ० ८९१।

व्यक्तित्वके उन्नयनका विधान है। वर्णव्यवस्था सामाजिक मर्यादा एव लोकहितकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण है। यह व्यवस्था अपने वास्तविक रूपमे ऐसे समाजमे ही प्रतिष्ठित हो सकती थी जिसमे परपस्र भेद-भाव न हो। इसीलिये तुल्सीके आदर्श समाजमे—कोई किसीसे वैर नही करता। इस समाजमे विषमता समाप्त हो गई है।[१] सब लोग परस्पर प्रेम करते हैं। श्रुति-नीति का अनुसरण करते हुये अपने धर्मका पाल्न करते है। न कोई दरिद्र है न दुखी न दीन। न कोई मूर्ख है न कुलक्षण।[२] कहनेकी आवश्यकता नहीं कि तुल्सी द्वारा चित्रित यह समाज महात्मा गाधीके 'सर्वोदय समाज' के कितने निकट है। गाधीके सर्वोदय समाजका आधार भी भोतिक नही आध्यात्मिक है। वे सत्य और अहिसाके बल्पर सर्वोदयका स्वप्न देख सके है। सर्वोदय समाजमे व्यक्ति सभी प्रकारके शोषणसे मुक्त माना गया है। उसकी सभी आथिक आवश्यकताओकी पूर्तिकी सम्भावना की गई है।[३] यही नहीं सर्वोददय समाजमे सभीके चरम कल्याणको लक्ष्य रूपमे स्वीकार किया गया है।[४] तुल्सीने भी सभीके कल्याणका चित्र प्रस्तुत किया है। उनके सर्वोदयका आधार भी आध्यात्मिक है। जिस समताकी बात तुल्सीने की है वह रामके प्रताप्रसे स्थापित होती है। 'राम' मानवताके चरम विकसित आध्यात्मिक गुणोकी समष्टि है जो पीडितोके हितके ल्यिे अवतार

---

१ बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप विषमता खोई।

—मानस, उत्तरकाण्ड।

२ सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती।

× × ×

नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना।

—मानस, उत्तरकाण्ड, पृ० ८९२।

३ The Sarvodaya Samaj of Gandhiji is based on Truth and nonviolence in which the individual enjoys freedom from exploitation and fulfilment of economic needs

—*Social Philosophy of Mahatma Gandhi* p 312

४ He calls it 'Sarvodaya Samaj' in which 'The Greatest good of all' is the end

—वही, पृ० ४५।

लेते है। लोक पीडकोका मूलोच्छेद करनेके लिये कटिबद्ध रहते है। जिनका प्रत्येक आचरण नीति-युक्त होता है। जो सदैव धर्मरथपर आसीन रहते है। जो मर्यादावादी है। यह होते हुये भी तुलसीके रामराज्यको आजकी आदर्श समाजवादी व्यवस्थाके साथ रखकर नही देखा जा सकता। आजका समाजवादी पूँजीपति और उसके द्वारा स्थापित पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति सदैव शत्रुभाव रखता है।[१] रामराज्यमे कोई किसीसे बैर नही करता, किसीका स्वार्थ दूसरेसे नही टकराता। रामराज्यमे प्रतिष्ठित सामाजिक समता वर्ग सघर्षका परिणाम नही है वह रामके व्यक्तित्वके प्रभाव स्वरूप स्थापित हुई है जिसमे चारो वर्णोंकी स्थिति मान्य है। गॉधी भी वर्णव्यवस्थामे विश्वास करते है और उसे ही सच्चा समाजवाद मानते है।[२] किन्तु उनकी वर्णव्यवस्थाका आधार जन्म नहीं कर्म है। वे वर्ण-परिवर्त्तनमे विश्वास करते है। जन्म-जात ब्राह्मण उनकी दृष्टिमे तभी ब्राह्मण मान्य हो सकता है जब बडा होनेपर वह ब्राह्मणत्व (ब्राह्मणोचित गुण) प्राप्त करले।[३] तुलसी इस सीमा तक नही जा सकते थे। उनके सामने यह प्रश्न ही नही था। ब्राह्मण जब विधिवत् अपने धर्मका पालन करेगा तो ब्राह्मणत्व अवश्य प्राप्त करेगा। सभी वर्णोंके लोग जब अपने परम्परागत

---

१ The Socialists out-look must be one of persistent-hostility to the capitalists and their economic system, his whole life should be coloured by this out-look

—*Recent Political Thought*, p 142

२ We have submitted, earlier, that Gandhiji who is so proud of calling himself a Hindu conceives of social relations based on this law of Varna and calls it true socialism

—*Social Phi of M Gandhi*, p 252

३ Varna is determined by birth but can be retained only by observing its obligations One born of Brahman parents will be called Brahman, but if his life fails to reveal the attributes of Brahman when he comes of age, he can not be called a Brahman

—वही, पृ० २५३।

कार्योंमे लगे रहेगे तो परस्पर स्वार्थगत सघर्ष भी न होगे। कदाचित् ब्राह्मण सस्कृतिके उच्च आदर्शोंसे पूर्ण प्रभावित तुलसीका मन यह माननेको तैयार नही था कि शूद्र भी नाना प्रकारके जप-तप और व्रत करे तथा ऊँचे आसनपर बैठकर पुराणोका उपदेश दे।[1] वे प्रत्येक व्यक्तिको अपनी मर्यादाका पालन करते हुये देखना चाहते है। उनके द्वारा चित्रित समाजमें प्रत्येक व्यक्तिका सामाजिक मूल्य निर्धारित है। निषाद, केवट, कोल-किरात, शबरी, गीध (जटायु) आदि निम्नवर्गीय तथा, वशिष्ठ राम, जनक आदि उच्चवर्गीय सभी प्रकारके पात्र अपनी सामाजिक स्थितिके प्रति सचेष्ट और सजग है। उदाहरणके लिए—

(क) निषादराज मुनि वशिष्ठको अपना परिचय देते हुये दूरसे ही प्रणाम करते है।

(ख) केवटके गूढ-प्रेमकी सार्थकता रामके पद-पखारनेमे ही है।

(ग) कोल-किरात आदि बनचर अपनी सामाजिक हीनतासे भलीभाँति अवगत है—

'तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा'[2] ॥

(घ) शबरी जानती है कि वह अत्यन्त नीच जाति और मूढ बुद्धिवाली है—
"केहि विधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मै जडमति भारी[3]॥"

(ङ) गीध तो पक्षियोमे भी अधम और मासाहारी है—

'गीध अधम खग आमिष भोगी'[4]।

इसी प्रकार गुरु वशिष्ठ दशरथ-मृत्यु और राम-बनवासके पश्चात् अपने विज्ञानके प्रकाशसे सभीका शोक निवारण करके और स्वय राज-कार्य सचालन करते हुये अपनी राजनैतिक एव सामाजिक श्रेष्ठताका प्रमाण देते है। राम सदैव बडोको आदर और छोटोको स्नेह प्रदान करते हैं। चित्रकूटमे जनकके पहुचने-

१ सूद्र करहिं जप-तप-व्रत नाना। बैठि बरासन करहिं पुराना ॥
—मानस, उत्तरकाड, पृ० ९६० ।

२. मानस, अयोध्याकाण्ड, पृ० ५३२ ।

३ मानस, अरण्यकाण्ड, पृ० ६३९ ।

४ मानस, अरण्यकाण्ड, पृ० ६२८ ।

पर समस्याके समाधानका दायित्व उन्हींपर छोडा जाता है। इस प्रकार उनकी सामाजिक श्रेष्ठता स्वीकार की जाती है। भरतजी तो एक साथ ही जनक और गुरुको पितासे भी श्रेष्ठ स्थान प्रदान करते है—

प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥[1]

तुल्सीके समाज-दर्शनका आधार यही सामाजिक मर्यादा है। समाजके अन्तर्गत अनेक स्तर उन्हे मान्य है किन्तु उन्होने इन विविध स्तरोको प्रेमके आधारपर सम-भूमिपर प्रतिष्ठित किया है। प्रेमके क्षेत्रमे सभी समान धरातल्पर है। राजा-प्रजा, स्वामी सेवक, ऊँच नीच की सामाजिक सत्ता ही नही रहेगी ऐसी कल्पना मध्य-युगमे नही की जा सकती थी। तुल्सीने जिस प्रकार वर्ण व्यवस्थाकी परम्परागत मान्यताको स्वीकार करके उसीके अन्तर्गत अपने युगकी सामाजिक समस्याओंको सुल्झानेकी चेष्टा की उसी प्रकार राजतन्त्रकी प्राचीन परम्पराको स्वीकार करके एक वृहत् सुशासित साम्राज्यके अन्तर्गत ही राजनैतिक समस्याओं-का समाधान देनेका प्रयत्न किया।[2] इसके लिये एक ओर तो उन्होने राजामे आदर्श गुणोकी प्रतिष्ठा की दूसरी ओर प्रजामे राजाके प्रति पूर्णनिष्ठाकी भावना जाग्रत की। आदर्श राजा साधु, सुजान और सुशील होता है।[3] उसके अनीतिमय आचरणपर प्रजाको बोल्नेका अधिकार होता है। उसे प्रजाके दु:खका सदैव ध्यान रहता है।[4] वह स्वेच्छाचारी नही होता[5]। वह सभीको समान दृष्टिसे देखता है[6]। वह अवसरके अनुकूल साम, दाम, दण्ड, भेद सभी

---

१ मानस, अयोध्याकाण्ड, पृ० ५६६।

२. भूमि सप्तसागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला।
—मानस, उत्तरकाण्ड ८९२।

३. साधु सुजान, सुशील नृपाला।

४ जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

५ जो पाँचहिं मत लागइ नीका। करहु हरषि हिय रामहिं टीका।
जौं अनिति कछु भाखौं भाई। तो मोहि बरजहु भय बिसराई।

६ मुखिया मुख सो चाहिये खान पान को एक।
—दोहावली, दोहा ४२२।

नीतियोका प्रयोग करता है[१]। वह लोक-पीडकोंके नाशके लिये सदैव सन्नद्ध रहता है[२]। वह अपनी सफलताओका श्रेय अपने सहयोगियोको देता है।[३] अपनी जन्म-भूमिके प्रति अगाध श्रद्धा रखता है।[४] गुरु-जनोका सम्मान करता है।[५] ऐसे राजामे ईश्वरका अश मान्य होना चाहिये।[६] ऐसे राजाके प्रति प्रजामे पूर्ण भक्ति और निष्ठाका होना स्वाभाविक है। प्रजा-वत्सल रामके राजा होनेपर अयोध्यावासी जहॉ-तहॉ उनका गुण-गान करते है और परस्पर एक-दूसरेको उनके प्रति भक्ति-भाव रखनेकी शिक्षा देते है।[७] गाधीके सर्वोदय-समाज और तुलसीके आदर्श-समाजमे दो अन्य अन्तर भी है जिन्हे सदैव दृष्टिमे रखना चाहिये। सबसे बडी बात यह है कि गॉधी आधुनिक बुद्धिवादके प्रभावसे नहीं बच सके है। इसीलिये वे वर्ण-परिवर्त्तनमे विश्वास करते हैं। बुद्धिवादके प्रभावके कारण ही वे ब्राह्मणको तबतक ब्राह्मण नही मानते जबतक उसमे ब्राह्मणोचित गुण न हो। तुलसी परम्परागत सामाजिक मर्यादाको अक्षुण्ण रखना चाहते है। वे वेद-विहीन ब्राह्मणको भी पूज्य घोषित करते है और सर्व-कला प्रवीण शूद्रको भी त्याज्य मानते हे।[८] उनकी इस मान्यताके मूलमे मध्ययुगका श्रद्धामूलक दृष्टिकोण ही कार्य करता हुआ प्रतीत होता है। दूसरा बडा अन्तर यह है कि तुलसीको समाजमे सघर्षकी सभावना केवल शासक और शासितमे ही लक्षित होती है। पूँजीवादी वर्गके शोषणकी चेतना उन्हे नही थी। वे शासकको

---

१ साम दाम अरु दड विभेदा। नृप उर बसहि नाथ कह बेदा।

२ निसिचर हीन करौं महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।

३ तुम्हरे बल मे रावन मारा।

४ अवध सरिस प्रिय मोहि न सोऊ।

५ अति आदर रघुनायक कीन्हा। पदपखारि पादोदक लीन्हा।

—मानस, उत्तरकाण्ड, पृ० ९१४।

६ ईस अश भव परम कृपाला।

७ जहँ-तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परस्पर इहइ सिखावहिं।
भजहु प्रनत प्रति पालक रामहिं। सोभा सील रूप गुन धामहिं॥

८ सापत ताडत परुष कहता। बिप्र पूज्य अस गावहिं सता।
पूजिअ विप्र सील गुण हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रवीना।

—मानस, अरण्यकाण्ड, पृ० ६३८।

ही शोषक के रूप मे भी देखते है।[१] गॉधीजी पूँजीवादी वर्गके शोपणसे पूर्णतः अवगत है और उसकी उपस्थितिको अहिसा मार्गकी सबसे बडी बाधा मानते है।[२] यहॉ भी तुल्सीकी सीमाये है। मध्ययुग सामन्तीय युग था। पूँजीवादी वर्गका सामाजिक जीवनपर जो प्रभाव आज है, उस समय नही था। पूँजीवाद मशीनयुगकी उपज है। तात्पर्य यह है कि तुलसीका राम-राज्य ठीक वही नहा है जो गॉधीका 'सर्वोदय समाज' या 'रामराज्य'। समता यह है कि दोनो परम्परागत भारतीय समाज-व्यवस्था की सीमाओमे ही अपने युगकी समस्याओका समाधान देना चाहते है। दोनों ही नैतिक और आध्यात्मिक मूल्योको महत्त्व देते है। दोनो वर्ण-व्यवस्थाका समर्थन करते हैं। आदर्श समाज-व्यवस्थाकी प्रतिष्ठा दोनों ही राम राज्यके आदर्शपर करना चाहते है। किन्तु तुल्सीकी चेतना मध्य-युगकी सीमाओका उल्लघन नही कर सकती थी। साथ ही गॉधीकी दिव्य दृष्टि सुदूर अतीत लोककी आदर्श-भावनाको परिकल्पित करती हुई भी वर्तमान युग-जीवनकी उपेक्षा नही कर सकती थी। इसीलिये वे विभिन्न वर्गोंकी सामाजिक मर्यादाकी समता उनके द्वारा किये जानेवाले श्रमकी समान महत्ताके आधारपर प्रतिष्ठित करते है।[३] जबकि तुल्सी भक्ति और प्रेमके क्षेत्रमे ही सभी वर्गोंकी समताकी बात करते है। सभो लोगोको भगवान्की कृपा प्राप्त करनेका समान अधिकार है किन्तु जीवनके अन्य क्षेत्रोमे इस समताकी बात तुल्सीदासजी नहीं

---

१ द्विज श्रुति वेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन।
—मानस, उत्तरकाण्ड, पृ० ९५८।

२ The greatest obstacle in the path of nonviolence is the presence in our midst of the indigenous interests that have sprung up form British rule, the interests of monied men, speculators, scripholders, landholders factory-owners and the like
—*Social Philosophy of Mahatma Gandhi*, p 189

३ A lawyer's work has the same value as a barber's in as much as all have the same right of earning their livelihood from their work
—वही, पृ० १८८।

करते ।[1] 'विषमता खोने'की बात अवश्य करते है, किन्तु यह 'विषमता खोनेकी बात' कदाचित् इसी अर्थमे मान्य है कि स्वार्थगत सघर्षोंकी सम्भावना न होनेसे कोई किसीसे विद्वेष नही करता ।

सयुक्त परिवार (कुटुम्ब) की परम्परा भारतीय समाज-व्यवस्थाका मूलाधार रही है । वर्ण-व्यवस्थाके साथ ही सम्मिलित कुटुम्बकी मर्यादाका पालन भारतीय धर्मशास्त्रोंमे अनिवार्य माना गया है । तुलसीने रामके परिवारके रूपमे आदर्श कुटुम्बका चित्र प्रस्तुत किया है । तुलसीका आदर्श कुटुम्ब मुख्यतः चार बातोपर आधृत है । (क) **एक पत्नीव्रत और एक पतिव्रत ।** इस नियमका पालन न केवल रामके परिवारमे होता है, वरन् राम राज्य मे पुरुष मात्र एक पत्नीव्रती है और स्त्रीमात्र मन-वचन-कर्मसे पति-हितमे रत है ।[2] (ख) **पूज्यों और गुरु-जनोंके प्रति सेवा और सहयोगकी भावना ।** रामके प्रति सभी छोटे भाई पूज्य बुद्धि रखते हुये उनकी सेवा करते है ।[3] (ग) **बडोंका छोटोंके प्रति स्नेह ।** भगवान् राम अपने सभी छोटे भाइयोंसे स्नेह करते हैं और उन्हे नाना-प्रकारकी नीतियोका उपदेश करते हैं ।[4] (घ) **स्वावलम्बन**—यद्यपि रामके महलमे सेवा-विधिमे कुशल अनेक दास-दासियाँ है किन्तु सीता गृहपरिचर्याका सारा कार्य स्वय करती है ।[5]

उपर्युक्त विवचनके आधारपर यह कहा जा सकता है कि तुलसीके समाज-

---

१ पुरुष नपुमक नारि वा जीव चराचर कोइ ।
सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ ।
—मानस, उत्तरकाण्ड, पृ० ९४८ ।

२. एकनारि व्रत रत सब झारी । ते मन बच क्रम पति हितकारी ।
—उत्तरकाण्ड, पृ० ८९३ ।

३. सेवहिं सानुकूल सब भाई । राम चरन रति अति अधिकाई ।
—उत्तरकाण्ड, पृ० ८९५ ।

४. राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती । नाना भाँति सिखावहिं नीती ।
—उत्तरकाण्ड, पृ० ८९५ ।

५ जद्यपि गृह सेवक सेवकिनी । विपुल सदा सेवा बिधि गुनी ।
निज कर गृह परिचरजा करई । रामचन्द्र आयसु अनुसरई ।
—उत्तरकाण्ड, पृ० ८९१ ।

दर्शनका मूल आधार वर्ण-व्यवस्था, आश्रम धर्म, आदर्श राजतन्त्र, एवं सम्मिलित कुटुम्ब-परम्परा है। भारतीय सांस्कृतिक परम्परा भी इन्हीं सामाजिक संस्थाओंको मान्यता देती आई है। तुलसीने अपने युगमें इन सभी संस्थाओंको छिन्न-भिन्न होते देखा था उन्हें हार्दिक ग्लानि हुई थी और उन्होंने इनके आदर्श लोक-सम्मत रूपकी प्रतिष्ठा राम-राज्य के चित्रणके माध्यमसे की थी।

तुलसीका नारी विषयक दृष्टिकोण—'मानस'में अनेक अवसरोंपर तुलसीने नारी-निन्दाकी है। दशरथ नारीका विश्वास करके पश्चाताप करते है।[१] अयोध्या-वासी नारी स्वभावको अग्राह्य और अजेय मानते है।[२] भरत जैसा पवित्र व्यक्ति नारीको 'सकल कपट अघ अवगुन खानो' कहता है।[३] रावण स्त्रियोंमे आठ अवगुणों—साहस अनृत, चपलता, माया, भय, अविवेक, अशौच, अदाया—की स्थिति शाश्वत मानता है।[४] सती अनुसूया नारीको 'सहज अपावनि' मानती है।[५] शबरी नारीको अधमों में अधम मानती है।[६] समुद्र नारीको ढोल, गवॉर, और शूद्रों की कोटिमें रखता है।[७] भगवान् राम स्वयं नारीको साक्षात् माया मूर्ति मानते है और उसे सभी अवगुणोंकी मूल तथा दुःखोंकी खानि कहते है।[८] गौतम-पत्नी अहल्या 'मै नारि अपावन' कहकर अपना परिचय देती है।[९] यह कहना कि ये कथन तुलसीदासके न होकर परिस्थिति विशेषमें पडे हुए व्यक्तियोंके समझने चाहिये'[१०] अधिक युक्तिसगत नहीं प्रतीत होता। जब विविध पात्रोंके कथनोंके आधारपर तुलसीके राजनीतिक विचारोंका अध्ययन किया जा सकता है तो कोई कारण नहीं है कि इन पात्रों

---

१ कवने अवसर का भएउ गएउँ नारि विश्वास।

२. सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब विधि अगमु अगाध दुराऊ।

३ 'मानस' अयोध्याकाण्ड, पृ० ४६२।

४ 'मानस' लंकाकाण्ड, पृ० ७५३।

५ 'मानस', अरण्यकाण्ड, दो० न० ५ (क) पृ० ६०२।

६. 'मानस', अरण्यकाण्ड, पृ० ६३९।

७ 'मानस', सुन्दरकाण्ड, पृ० ७३६।

८ 'मानस', अरण्यकाण्ड, दो० ४३-४४, पृ० ६४३, ६४९।

९. 'मानस' बालकाण्ड, पृ० २०८।

१० हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ४४८।

द्वारा व्यक्त नारी-विषयक विचारोके दायित्वसे तुलसीको अलगकर दिया जाय। तुलसी विशिष्ट नारी पात्रो—कौशल्या, सुमित्रा, सीता, तारा, मन्दोदरी—की श्रेष्ठता स्वीकार करते है किन्तु सामान्य नारी जातिके प्रति उनके विचार ठीक वही है जो मध्ययुगके अन्य सन्तो और महात्माओके। वस्तुत पूर्व वैदिककाल और उत्तर वैदिककालमे समाजमे स्त्रियोका गौरवपूर्ण स्थान था। ऋग्वेदमे नारी अर्थवाचक 'मेना' शब्दका प्रयोग हुआ है। यास्कके अनुसार पुरुष इनका आदर करते है अत स्त्रियोको मेना कहते है।[1] लौकिक सस्कृतमे मान्या शब्द इसी मेनासे बना है। सूत्रो, महाकाव्यो और स्मृतियोके युगमे स्त्रियोकी स्थिति पुरुषोके समकक्ष न रही। मनुस्मृतिमे नारी-स्वातन्त्र्यका घोर विरोध किया गया है।[2] सम्भवतः इसका कारण शको और सीथियनोका आक्रमण रहा हो। इसके पश्चात् भाष्योकी रचनाके युगमे (५०० से १८०० ई० तक) क्रमश स्त्रियोकी सामाजिक स्थितिके ह्रासोन्मुख होनेक प्रमाण मिलत हैं। यह युगभी विदेशी आक्रामकोका युग रहा है। शको और हूणोके व्यापक आक्रमणसे भारतीय सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होने लगी थी। राजपूतकाल और मुसलमानी शासनकालमे स्त्रियोको शिक्षा, सामाजिक मर्यादा एव अन्य सभी प्रकारके सस्कारोसे वञ्चित होना पडा। प्रकट है कि स्त्रियोकी हीनावस्थाका आरभ बाहरी आक्रमणोके साथ ही होता है। इन आक्रमणोसे आत्म रक्षाकी भावना प्रधान हुई और हमारा सामाजिक दृष्टिकोण सकुचित होने लगा। तुलसीदासजीके नेत्रोके सामने जो युग-चित्र उपस्थित था वह हमारी हीनावस्थाका था। बराबर घरोकी चहारदीवारोमे बन्द रहनेके कारण स्त्रियाके स्वभाव और दृष्टिकाणमे सकीर्णता का आना स्वाभाविक था। पराजय, दासता, दरिद्रता और सामाजिक विशृंख-लताके कारण इस युगमे आत्म-रतिकी भावना प्रबल हो गई थी। मुगलोके प्रभावसे भारतीय सामन्त भी विलासी होने लगे थे। स्त्रियोका मूल्य विलासिताके विविध उपकरणोसे अधिक न था। घोर चारित्रिक पतनके युगमे तुलसीने देखा—

---

१ मानयन्ति एना (पुरुषा), (निरुक्त ३।२१।२)।

—कल्याण नारी अक, 'शब्द-व्युत्पत्ति और नारी'।

२ पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।—मनुस्मृति अ० ९, श्लोक ३।

नारि विवस नर सकल गासाईं । नाचहिं नट मर्कट की नाईं ।[1]

× × ×

गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी । भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ।
सौभागिनी विभूषन हीना । विधवन्ह के सिंगार नबीना ।[2]

× × ×

बहु दाम सँवारहिं धाम जती । विषया हरि लीन्हि न रहि बिरती ।[3]

इस विषय वासनाकी वृद्धिके मूलमे उन्होने 'नारी' को देखा । साधनाके क्षेत्रमे बौद्धसिद्धो एव वैष्णव सहजियोके चारित्रिक पतनके मूलमे भी उन्हे नारीकी मूर्ति ही दिखाई दी । पुरुषमे आसक्ति उत्पन्न करनेकी नारी जातिकी सहज क्षमता स्वय सिद्ध है । स्त्रियोको दी जानेवाली सज्ञाएँ इस सत्यकी सार्थकता स्वय प्रमाणित कर रही है । वह 'वामा' है क्योकि सौन्दर्य बिखेरती चलती है—(वमति सौन्दर्यम्) । वह 'सुन्दरी' है क्योकि उसको देखनेसे [सु + उन्द (गीला करना) + अर + ङीप्] मनुष्यका हृदय गीला हो जाता है । वह 'ललना' है क्योकि उसमे लल (इच्छा) प्रबल होती है । वह 'प्रमदा' है क्योकि वह हलकेसे हलके भावसे पुरुषको उत्तेजित कर देती है ।[4] भक्तसाधक तुलसीने नारी जातिको साक्षात् माया-मूर्तिके रूपमे देखा । निश्चय ही उनका नारी विषयक दृष्टिकोण अधिक स्वस्थ नही कहा जा सकता । किन्तु ध्यान रखना होगा कि यह तुलसीका नही मध्ययुगका नारी विषयक दृष्टिकोण है । तुलसी, सामान्य नारीकी मर्यादाके निर्धारणमे अपने युगकी सीमाओसे आगे न जा सके, यह निर्विवाद है ।

मूल्याङ्कन—तुलसीका काव्य भारतीय (हिन्दू) सस्कृतिके सच्चे स्वरूपको प्रत्यक्ष करता है । उनका दृष्टिकोण समन्वयवादी है । समन्नयवाद भारतीय सस्कृति की विशेषता है । तुलसीने विविध दार्शनिक सिद्धान्तो, साधना-पथो, उपासना-पद्धतियो, काव्य-रूपो एव शैलियोका समन्वय उपस्थित करते हुए भी अपने युग-

१ 'मानस', उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ९५९ ।

२ वही, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ९५९ ।

३ वही, उत्तरकाण्ड, पृष्ठ ९६१ ।

४. 'कल्याण', नारी अक—देखिये 'शब्द व्युत्पत्ति और नारी', पृष्ठ १२९ ।

की परिस्थितियोको दृष्टिमे रखकर भक्ति-मार्गकी सापेक्षिक श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। उनका भक्ति-मार्ग व्यक्तिगत चारित्रिक उत्थानके साथ ही सामाजिक कल्याणकी क्षमता भी रखता है। वह पूर्ण जीवन-दर्शन है। तुलसीने अपने सम-सामयिक जन-जीवनको अत्यधिक निकटसे देखा है। उच्च संस्कारोसे युक्त होनेपर भी उनके हृदयमे भारतीय लोक-जीवनके सभी स्तरोके प्रति प्रगाढ ममता है। वे लोक-विश्वासो एव लोक-भावनाओका आदर करते है। उनका दृष्टिकोण उदार है। किन्तु उनकी उदारता परम्परागत सस्कारोसे युक्त एक मध्ययुगीन ब्राह्मणकी उदारता है। युगकी यथार्थ-भूमिपर खडे होकर उन्होने आदर्शके अनन्त आकाशको अपनी सहज मानसिक कल्पनामे उतार लिया है। महिमामे तुलसीका कोई प्रतिद्वन्द्वी नही है। कबीरमे धरतीकी ऋजु-वक्रता है, सूरमे सागरकी अतल गहराई है किन्तु तुलसीमे धरतीकी गन्ध, सागरके विशाल वक्षस्थलपर मचलनेवाली उर्मियोकी तरलता और अनन्त आकाशके हीरक-कुसुमोकी रजत-आभाका अद्भुत सयोग है। वे भक्त, कवि, समाज द्रष्टा और दार्शनिक सभी कुछ है। उन्हे समाजका गम्भीर अनुभव था। इसलिये उनकी काव्योक्तियाँ जीवनकी विभिन्न परिस्थितियोकी समीक्षा प्रस्तुत करती हुई लोकोक्तियाँ बन गई है। तुलसीकी सबसे बडी विशेषता है मनुष्यकी उच्चतापर अखण्ड विश्वास। इसीलिये ह्रासो-न्मुख युग-जीवनके बीच उन्होने दिव्य मानव-मूर्तिकी प्रतिष्ठा की। इसीलिये वे मनुष्य, भगवान् और ब्रह्ममे एकता स्थापित कर सके। इसलिये वे सगुण भगवान्के प्रति पूर्णनिष्ठा व्यक्त कर सके। कबीरने मध्ययुगकी विकृतियोको निकटसे देखा। मानव-जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमे व्यावहारिक स्तरपर उन्हे अनेक रूढियाँ दिखाई पडी। उन्होने आँखो देखी पर विश्वास किया। मनुष्यकी दुर्बलताओके सघन धुन्धमे उन्हे पूर्ण मानवके दर्शन न हो सके। उन्हे सारा-ससार रूढि-पुञ्ज, बाह्याडम्बरमय, पथ-भ्रष्ट तथा मनुष्योचित गुणोसे च्युत प्रतीत हुआ। वे अपने 'आतमराम' के एकरस प्रेममे मग्न रहे। जायसी सारे ससारमे केवल आध्यात्मिक प्रेमकी सत्यतापर विश्वास कर सके। सासारिक प्रेमको भी उन्होने स्वीकार किया किन्तु केवल इस रूपमे कि वह आध्यात्मिक प्रेमकी अनुभूतिका माध्यम हो सकता है। सूरने ससारको स्वीकार किया किन्तु केवल प्रेमके ससारकी सत्यता ही उन्हे मान्य हो सकी। उनकी दृष्टिमे एकनिष्ठ,

दिव्य, निःस्वार्थ प्रेमको धारण करनेवाला समाज सत्य है। बस, इसके आगे नही। तुलसीके सामने विकट परिस्थिति थी। मनुष्यकी उच्चता पर जनताको विश्वास नही रह गया था। देवत्व और मनुष्यत्वके बीचकी दूरी बढती जा रही थी। समाजमे समता, सहयोग, मर्यादा, और प्रेमकी प्रतिष्ठाकी सम्भावनामे जन-मानसका विश्वास नहीं रह गया था। तुलसीने अपने 'मानस'मे तत्कालीन विकृत समाजको ज्योका त्यो स्वीकार किया किन्तु उसे आदर्श समाज मे परिणत करनेका सुगमतम मार्ग भी प्रदर्शित किया। उन्होने कबीरके हृदयस्थ 'आतम राम'को स्थूल जगत्मे दाशरथि रामके रूपमे मूर्त किया। भावनाके भगवान् क्रियात्मक जगतमे मर्यादा पुरुषोत्तम बनकर प्रकट हुए। मनुष्यकी सभावनाओपर विश्वास न करनेवाला प्राणी युगान्धकी कल्पना करता हुआ ऐसे जीवन बिन्दुओकी सृष्टि करता है जिनसे कोई रेखा नहीं बन पाती। तुलसीने कलियुगको—युगकी विकृतियोको—सम्भाव्य मानव (राम)के बलपर चुनौती दी। वे कलियुगसे—युगकी यथार्थतासे—घबडाकर 'गोलोक'मे पलायन न कर सके। वैकुण्ठसे अधिक उन्हे अयोध्या प्रिय थी। निर्गुणसे अधिक उन्हे सगुण मान्य था। मुक्तिसे अधिक उन्हे भक्ति काम्य थी। उन्हे जगदीश रामसे कम प्रिय महीशराम न थे। यह सब इसीलिए सम्भव हुआ कि उन्हे मनुष्य और उसके विकासकी सभावना पर विश्वास था। मध्ययुगका अन्य कोई कवि लोक-मगलको लक्ष्यमे रखकर उसकी सिद्धिमे ही अपने काव्यकी सार्थकता न देख सका। सर्व-हितको अपनी भणितिका उद्देश्य न बना सका। समस्त ससारको 'निजप्रभुमय' न देख सका। व्यक्ति-व्यक्तिके बीचकी दूरीको मिटाकर समताका आदर्श प्रस्तुत न कर सका। समग्र हिन्दी-साहित्यमे तुलसीकी काव्य-साधना अद्वितीय है। उन्हे हिन्दी-काव्याकाशका सूर्य कहना उनके महत्त्वको कम करना होगा। सूर्यका प्रकाश तो उसके अस्त होनेके साथ ही तिरोहित हो जाता है। ऐसा सूर्य कहाँ जो अस्त होनेके बाद भी समस्त ससारको प्रकाशित कर सके।

हो सकता है सूर्य तुम्हारे सम कैसे? हे तुलसीदास।
होने पर भी अस्त तुम्हारा छाया जग मे अतुल प्रकाश॥

पठनीय सामग्री

तुल्सी ग्रन्थावली, तीसरा भाग	ना० प्र० स०, काशी
तुलसीदास	डॉ० माताप्रसाद गुप्त,
तुल्सी दर्शन	डॉ० बल्देवप्रसाद मिश्र
तुल्सीदास	आचार्य पडित रामचन्द्र शुक्ल
तुलसीदास और उनकी कविता	प० रामनरेश त्रिपाठी
तुलसीदास और उनका युग	डॉ० राजपति दीक्षित
विश्व साहित्यमे रामचरितमानस	श्री राजबहादुर लमगोडा
तुलसी साहित्यकी भूमिका	डॉ० रामरतन भटनागर
तुलसीकी भाषा	डॉ० देवकीनन्दन श्रीवास्तव
रामभक्तिमे रसिक सम्प्रदाय	डॉ० भगवतीप्रसाद सिंह
हिन्दी-साहित्यका आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा
तुल्सी रसायन	डॉ० भगीरथ मिश्र
गोस्वामी तुलसीदास	डॉ० बाबू श्यामसुन्दरदास

आचार्य कवि केशवदास

आचार्य केशवदास सच्चे अर्थोमे राजकवि थे। वे पण्डित थे, आचार्य थे, कवि थे, राजनीतिज्ञ थे और कदाचित् भक्त भी थे। उन्हे अपने पाण्डित्यपर गर्व था। उनका घराना कई पीढियोसे राज-सम्मान प्राप्त करता चला आ रहा था। ओडछा नरेश महाराज रामशाहके अनुज इन्द्रजीत सिंह उन्हे गुरु-तुल्य मानते थे। स्वय महाराज रामशाह उन्हे अपना मन्त्री और मित्र मानते थे। इन्द्रजीत सिंहके भाई वीरसिंह देवने भी उनको सम्मानित किया था। लोक-परम्परा महत्त्वकी दृष्टिसे उन्हे सूर और तुलसीके बाद तीसरा स्थान प्रदान करती है। वे 'कठिन काव्यके प्रेत' कहे जाते है। प्रसिद्धि है कि 'कविको देन न चहै बिदाई। पूछै केशवकी कविताई'। इसका एकमात्र कारण उनकी पाण्डित्य-प्रियता ही है। उनके एक एक छन्दमे पॉच-पॉच अर्थ सन्निहित है। उनकी काव्य-दृष्टिके निर्माणमे सस्कृत-साहित्य-शास्त्रके प्राचीन आचार्यो—उद्भट, दण्डी, केशवमिश्र, अमरचन्द आदि—के परम्परागत सस्कार, राजकीय वातावरण तथा उनके युगकी काव्य-परिपाटी, तीनोके सम्मिलित प्रभावने कार्य किया है। इसीलिए उनमे काव्य-रीतिके प्रति आग्रह, पाण्डित्यके प्रति मोह, शृगारिकताके प्रति रुझान और भक्तिके प्रति आकर्षण है। उनके व्यक्तित्वको समझनेके लिए उपर्युक्त सभी परिस्थितियो और परम्पराओको दृष्टिमे रखना आवश्यक है। उनकी कृतियोके मूल्याकनके पहले आवश्यक है कि हम उनका काव्य-विषयक दृष्टिकोण भली भॉति समझ ले—

केशवका काव्य-विषयक दृष्टिकोण

केशव अलकारको काव्यका सर्वस्व मानते हैं। भूषणोके अभावमे न उन्हे कवितामे सौन्दर्य दिखाई पडता है न बनितामे।[१] अलकारोको अत्यधिक

---

१ यदपि सुजाति सुलक्षणी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषण बिन न विराजई कविता बनिता मित्त ॥
—कविप्रिया, पाँचवाँ प्रभाव, पृष्ठ ४३।

महत्त्व देनेके साथ ही वे काव्य-गुण, अर्थ गौरव और पद-लालित्यको भी आवश्यक मानते है ।[1] उनकी दृष्टिमे काव्यमे रचमात्र दोष भी उसके सौन्दर्यको नष्ट कर देता है ।[2] काव्य-परम्पराका अनुसरण न करनेवाला काव्य अन्धा है। शब्द-प्रयोगमे औचित्यका ध्यान न रखनेवाला काव्य बधिर है। छन्दके नियमोकी अवहेलना करनेवाला काव्य पगु होता है। अलकारोसे रहित काव्य नग्न है और अर्थहीन काव्य मृतक तुल्य है।[3] अलकार शब्दका प्रयोग केशवने व्यापक अर्थमे किया है। अभिव्यक्तिको विविध प्रकारसे चमत्कार-पूर्ण बनानेवाली उक्तियोको ही वे अलकार नही मानते। उन्होने अलकारोके दो रूप माने है—साधारण और विशिष्ट। उपमा, रूपकादि अलकार उनकी दृष्टिमे विशिष्ट अलकार है। साधारण अलकारके अन्तर्गत वे वर्ण (रंग), वर्ण्य, भूमि-श्री और राज्य-श्री इन चारका उल्लेख करते है।[4] वर्णके अन्तर्गत उन्होने श्वेत, पीत, कारे, अरुण, धूम्र, सुनील और मिश्रित सात रगोका उल्लेख किया है।[5] काव्य-परम्परामे इन वर्णोंके अन्तर्गत जिन वस्तुओकी गणना की गई है, केशवने

१. सगुन पदारथ अरथयुत, सुबरनमय शुभ साज।
कठमाल ज्यों कविप्रिया, कठ करहु कविराज॥
—कविप्रिया, तीसरा प्रभाव, पृ० १५।

२ राजत रच न दोष युत कविता, बनिता मित्र।
बुदक हाला परत ज्यो, गगा घट अपवित्र॥
—वही, तीसरा प्रभाव, पृ० १६।

३ अन्ध बधिर अरु पगु तजि, नगन मृतक मति शुद्ध।
अन्ध विरोधी पन्थको, बधिर जो शब्द विरुद्ध॥
छन्द विरोधी पगु गुनि, नगन जो भूषण हीन।
मृतक कहावै अरथ बिन, केशव सुनहु प्रवीन॥
—वही, पृ० १७।

४ सामान्यालकार को, चारि प्रकार प्रकास।
वर्ण, वर्ण्य, भू राज श्री, भूषण केशवदास॥
—वही, पॉचवॉ प्रभाव, पृ० ४३।

५ श्वेत, पीत, कारे, अरुण, धूम्र, सुनीले वर्ण।
मिश्रित केशवदास कहि, सात भॉति शुभ कर्ण॥
—वही, पाँचवाँ प्रभाव, पृ० ४३।

उनकी लम्बी सूची भी प्रस्तुत की है। वर्ण्यके अन्तर्गत उन्होने सम्पूर्ण, आवर्त्त, कुटिल, त्रिकोण, सुवृत्त, तीक्ष्ण, गुरु, कोमल, कठोर, निश्चल, चचल, सुखद, दुखद, मन्दगति, शीतल, तप्त, सुरूप, क्रूरस्वर, सुस्वर, मधुर, अबल, बलिष्ठ, सत्य, झूठ, मण्डल, अगति, सदागति और दानी इन अट्ठाइस भेदोका उल्लेख किया है ओर कहा है कि ओर भी भेद हो सकते है।[१] इन अट्ठाइस भेदोको लेकर पुनः उन्होने प्रत्येकके अन्तर्गत किन-किन वस्तुओका वर्णन करना चाहिये इसका भी उल्लेख किया है। उदाहरणार्थ—सम्पूर्णको लेकर वे कहते है कि अम्बुज, आनन, आरसी, प्रेम और प्रकाशको सदैव सम्पूर्ण मानकर वर्णन करना चाहिये।[२] भू-श्रीके अन्तर्गत उन्होने देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम, सरिता, ताल, रवि, शशि, सागर, ऋतुएँ और महीने आदिकी गणना की है।[३] पुन. प्रत्येकको लेकर उसके अन्तर्गत आनेवाली वस्तुओका उल्लेख किया है। राज्य-श्रीके अन्तर्गत राजा, रानी, राजकुमार, पुरोहित, सेनापति, दूत, मन्त्री, मन्त्र, प्रयाण (रण-प्रयाण), घोडा, हाथी, युद्ध. आखेट, जलक्रीडा, स्वयवर, वियोग और सुरत आदिकी गणना की है[४] और फिर प्रत्येकके वर्णनमे किन-किन वस्तुओका उल्लेख आवश्यक है, इसे विस्तारपूर्वक बताया है।

इस प्रकार साधारण अलकारोकी सीमामे केशवने काव्यके वर्ण्य विषयोंका ही उल्लेख किया है। इसमे उनके दो उद्देश्य है। एक तो पाठकोको सामान्य ढगसे उन वस्तुओकी सूचना देना जिनका वर्णन काव्य-परम्परा-विहित है। दूसरे, इन सभी काव्य-विषयोका जो स्वरूप कवि-परम्परामे मान्य है (रग और आकृतिकी दृष्टिसे) उसको ही स्वीकार करनेका आग्रह। उनकी दृष्टिमे कवि पन्थ-का ज्ञान आवश्यक है। और इस ज्ञानके अन्तर्गत वर्ण्य विषयोकी सूची भी सम्मिलित है। स्पष्ट है कि जब उन्होने 'भूषण'के अभावमे कविताको शोभाहीन कहा था तब उनके मस्तिष्कमे ये वर्ण्य विषय भी थे। जिस कवितामे उपर्युक्त

---

१. कविप्रिया, छठवॉ प्रभाव, पृ० ५८।

२. इतने सपूरण सदा वरणे केशवदास।
अम्बुज, आनन, आरसी, सतत प्रेम-प्रकास।

३ कविप्रिया, सातवॉं प्रभाव, पृ० ९३।

४. कविप्रिया, आठवॉं प्रभाव, पृ० ११६।

वस्तुओका वर्णन नही है, केशवकी दृष्टिमे उसे भी असुन्दर ही मानना चाहिये। वर्ण्य विषयोको भी अलकारोके अन्तर्गत परिगणित करनेका परिणाम यह हुआ कि केशवने वस्तुवर्णनके चमत्कारको भी काव्य-शोभाका साधन मानकर उसपर अत्यधिक बल दिया। वस्तु-वर्णन प्रियताकी परम्परा सस्कृत साहित्यके परवर्ती युगमे पड चुकी थी। भारवि, माघ और श्रीहर्षके महाकाव्य इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। केशवने इसी परम्पराको हिन्दीमे प्रचलित करना चाहा था। अपनी व्यापक आलकारिक दृष्टिके कारण ही केशवने रसमय वर्णनोको 'रसवत्' अलकार मान लिया आर नवों रसोको रसवत् अलकारमे समाहित कर लिया।[१] उनकी दृष्टिमे वाणोकी सरसता भी शोभा (काव्य-सौन्दर्य) का हेतु है।[२] आचार्य केशव 'रस' (रसालता) का महत्त्व तो स्वीकार करते है किन्तु उसे भी वे शोभा-विधायक मानकर अलकारोके अन्तर्गत ही स्थान देते है।

उपर्युक्त विवेचनसे केशवका काव्य-विषयक दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। वे मुख्यत अलकारवादी कवि है किन्तु उनके अलकारवादकी सीमामे कवि-परम्परा, वर्ण्यविषय, वर्णन शैली, अभिव्यक्ति-चमत्कार, गुण, पद-लालित्य, अर्थ-गौरव, रस, छन्द और निर्दोषिता ये सभी तत्त्व आ जाते है। इन सभीको वे काव्य-शोभाका हेतु मानते थे। इसीलिए उन्होने केवल अलकार ग्रन्थकी रचना नहीं

---

१ रसवत होय सुजानिये, रसवत केशवदास।
नव रसको सक्षेप ही, समझो करत प्रकाम॥
—कविप्रिया, ग्यारहवाँ प्रभाव, पृ० २०३।

टिप्पणी—रसवत् अलकारको आचार्य केशवने ठीकसे नहीं समझा है। रसवत् अलकार वहाँ होता है जहाँ एक रस अग-रूपमें उपस्थित होकर दूसरे अगी रसको उपरजित कर दे। जिस प्रकार प्रकृत वस्तुकी उपरजकताके कारण उपमा आदिको अलकार कहते हैं वैसे ही प्रकृत रसकी उपरजकताके कारण अगभूत रसको अलकार कहना सर्वथा उचित है।

[अङ्गभूतस्य रसादेश्चालङ्कारत्व युक्तम्। तथा च यावतोपमादीना सर्वालङ्काराणा प्रकृत वस्तूपरञ्जकत्वमलङ्कारत्वे निबधनम्, अङ्गभूतेनापि रसेन तत् क्रियत एव, प्रकृतस्य रसादेस्तदुपस्कृतत्वेन भावात्।] अलङ्कारसर्वस्व विमर्शिनी, पृष्ठ २३३।
—साहित्यदर्पण, व्याख्याकार, डॉ० सत्यव्रत सिंह, पृ० ८७६ पर उद्धृत।

२. ज्यौं बिन दीठि न शोभिजै, लोचन लोल विशाल।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन बाणी न रसाल॥
—रसिकप्रिया, पृ० ३।

की। 'कविप्रिया'मे उन्होने काव्य-क्षेत्रमे प्रवेश करनेवाले बालक-बालिकाओके लिए ज्ञातव्य कवि-पन्थकी सभी बातोका वर्णन किया।[१] कहना चाहे तो कह सकते है कि आचार्य दण्डीके समान केशव भी काव्यके शोभाकारक धर्ममात्रको अलकार मानते थे, जिसमे शोभाके वर्द्धक और शोभाके जनक दोनो प्रकारके तत्त्व आ जाते है।

आचार्यत्व

केशवदासजी हिन्दीके प्रथम आचार्य है। वे हिन्दी-रीति-काव्यके जनक हैं। 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' उनके शास्त्रीय ग्रन्थ है। 'कविप्रिया' की रचना काव्य क्षेत्रमे प्रवेश करनेवाले नवीन जिज्ञासुओको ज्ञान-वृद्धिके लिए की गई। इसमे **काव्य-दूषणो**—[**अन्ध** (कवि पन्थ-विरुद्ध रचना करना), **बधिर** (शब्दोका अनुचित प्रयोग), **पगु** (छन्द विरुद्ध रचना), **नग्न** (भूषणहीन रचना), **मृतक** (अर्थहीन रचना) तथा **अगण** (अशुभ गण—जगण, रगण, सगण, तगण), **हीनरस, यतिभग, व्यर्थ** (जहॉ एक ही कवित्तमे अर्थ-विरोध हो), **अपार्थ** (जिसका अर्थ समझमे न आवे), **हीनक्रम, कर्णकटु, पुनरुक्त, देशविरोध, काल-विरोध, लोकविरोध, न्याय और आगम-विरोध** आदि], **कवि-भेद** (उत्तम, अनुत्तम, मध्यम), **कविरीति** (कभी सच्ची बातको झूठ, कभी झूठी बातको सत्य, कभी नियमानुकूल वर्णन करना) और **काव्यालकारो** (सामान्य-विशिष्ट) का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। सबसे अधिक महत्त्व काव्यालकारोको दिया गया है। केशवने सामान्य अलकारोके अन्तर्गत प्राकृतिक (भू-श्री) और मानवकृत (राज्य-श्री) दोनों ही प्रकारकी वस्तुओको स्थान दिया है। इन वस्तुओकी विस्तृत सूचीसे यह प्रकट होता है कि काव्यान्तर्गत इन्हे वर्ण्य विषयके रूपमे स्वीकार करनेकी रूढि बन गई थी। प्रत्येक वस्तुके रग और रूप (वर्ण और वर्ण्य)को लेकर भी कुछ निश्चित मान्यताये चल पडी थी। इन स्वीकृत वर्ण्य विषयोको निश्चित रूप रगोमे प्रस्तुत करनेसे काव्यसौन्दर्यमे वृद्धि मानी जाती रही होगी। इसीलिए केशवने इन्हे भी अलकार मानना ही ठीक समझा और उन्होने **वर्ण** (रग), **वर्ण्य** (रूप),

---

१ समुझें बाला बालकन, वर्णत पन्थ अगाध।
कविप्रिया केशव करी, क्षमियहु कवि अपराध॥
—तीसरा प्रभाव, पृ० १५।

'अमित' अलकार भी अलकार-कोटिमे नही आयेगा।[१] केशवके कई अलकारोको लेकर शका इसलिए उठती है कि उन्होने अभिव्यक्ति-कौशलको ही नही कथ्य-वैशिष्ट्यको भी अल्कार माना है। इसीलिए उनकी दृष्टिमे 'आशिष' (आशीर्वादात्मक उक्ति) 'प्रेम', 'आक्षेप', 'गणना' आदि भी अल्कार है।

आचार्य दण्डीके आदर्शपर केशवने भी 'उपमा' अल्कारका सर्वाधिक विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उन्होने सशय, हेतु, अभूत, अद्भुत, विक्रय, दूषण, भूषण, मोह, नियम, गुणाधिक, अतिशय, उत्प्रेक्षित, श्लेष, धर्म, विपरीत, निर्णय, लाक्षणिक, असभावित, विरोध, मालोपमा, परस्परोपमा और सकीर्णोपमा इन बाइस भेदोका उल्लेख किया है।[२] इन भेदोके सम्बन्धमे विचार करते समय ध्यान रखना होगा कि उन्होने उपमाका प्रयोग व्यापक अर्थमे किया है। 'उपमा' के अन्तर्गत सादृश्यमूलक सभी अलकार आ जाते है। परवर्ती आचार्योंने इन्हे स्वतन्त्र अल्कारोका स्वरूप प्रदान किया है। केशवका **'सशयोपमा'**, 'सन्देह' अलकारसे भिन्न नही है। इसी प्रकार **'निर्णयोपमा'**, को 'व्यतिरेक', **'परस्परोपमा'** को 'उपमेयोपमा', और **'अतिशयोपमा'** को 'अनन्वय' के रूपमे देखा जा सकता है। केशवके 'विपरीतोपमा' और 'सकीर्णोपमा' के लिए डॉ० हीरालाल दीक्षितने कहा है कि 'इनमे उपमा अलकारका अस्तित्व ही नही है'।[३] किन्तु वास्तवमे दोनोमे 'औपम्य' है। केशवके अनुसार 'जहाँ पुण्यवानोंकी हीनोसे उपमा दी जाय' वहाँ 'विपरीतोपमा' अलकार होता है।[४] उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उन्होने कहा है—'राजनि श्री रघुनाथ के राज, कुमण्डल छोडि कमण्डल लीनो'[५] यहाँ राजाओकी उपमा सन्यासियोसे दी गई है। यहाँ राजा और

---

१ जहाँ साधनै भोगई, साधक की शुभ सिद्धि।
अमित नाम तासों कहत, जाकी अमित प्रसिद्धि॥
—कविप्रिया, पृ० २३७।

२ कविप्रिया, चौदहवॉ प्रभाव, पृ० २६१।

३ आचार्य केशवदास, डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृ० २५५।

४ केशव पूरे पुण्यके तेई कढिये हीन।
तासों विपरीतोपमा, केशव कहत प्रवीन॥
—वही, पृ० २७६।

५ वही, पृ० २७७।

सन्यासी (उपमेय और उपमान) दोनो विपरीत स्थितिवाले है फिर भी दोनोकी समता दिखाई गई है। 'उपमा' अलकारमे उपमेय और उपमानमे विरोध कम नही होता। साम्य तो यत्किञ्चित् ही होता है। कवि समता दिखाकर चमत्कार प्रदर्शित करता है। केशवने 'सकीर्णोपमा' का लक्षण न देकर उसके वाचक शब्द गिना दिये है। 'बन्धु', 'चोर', 'वादी', 'सुहृद', 'कल्प', 'पृच्छ', 'प्रभु', 'अगी', 'रिपु', 'सोदर' आदि शब्द सकीर्णोपमाके वाचक है। तात्पर्य यह कि यदि कही इस प्रकारका प्रयोग हो कि 'दीपक नक्षत्रका भाई है' तो इसमे दीपक को 'उपमेय', नक्षत्र को 'उपमान', और भाई को 'वाचक' मानकर सकीर्णोपमा समझना चाहिये। उपर्युक्त वाचकोका प्रयोग सम्बन्धगत समता होनेपर ही किया जायगा। इसलिए इसे 'उपमा' माननेमे किसी प्रकारकी हिचक नही होनी चाहिये।

केशवके अलकार-निरूपणमे मुख्यत. तीन प्रकारकी त्रुटियोका निर्देश किया गया है—(क) लक्षणोकी अस्पष्टता, (ख) दो भिन्न अल्कारोके लक्षणोमे समानता, (ग) लक्षणो और उदाहरणोमे एकरूपताका अभाव। निश्चय ही ये दोष केशवमे किसी-न-किसी मात्रामे है। किन्तु इनके आधारपर उनके आचार्यत्वपर आक्षेप नही किया जा सकता। वे हिन्दी-साहित्यमे काव्य-शास्त्रका पथ-प्रवर्तन-कर रहे थे। मार्ग प्रशस्त करनेवाले व्यक्तिमे त्रुटियोका होना असम्भाव्य नही है। कुछ गडबडी पद्यमे ही लक्षण प्रस्तुत करनेके कारण भी हुई है। गडबडीका तीसरा कारण अलकार और अलकार्यको एकमे मिला देना भी है। वे आचार्य दण्डोके अनुसार शोभाकारक धर्ममात्रको अलकार मानते थे। इसके अतिरिक्त, विषयकी विविधता ओर विस्तार तथा अलकार-भेदोके सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रभेदोको प्रस्तुत करनेका लोभ भी उपर्युक्त दोषोके आ जानेमे सहायक हुआ है।

'रसिकप्रिया' रस ग्रन्थ है। इसमे 'शृगार', 'हास्य', 'करुण', 'रौद्र', 'वीर' 'भयानक', 'वीभत्स', 'अद्‌भुत' और 'शान्त' रसोका वर्णन किया गया है। आचार्य केशवदासने 'शृगार' को सभी रसोका नायक माना है ओर शृगार मूर्ति भगवान् हरिके व्यक्तित्वमे सभी रसोकी स्थिति प्रमाणित की है।[1] उन्होने 'शृगार' के वर्णनम सर्वाधिक रुचि प्रदर्शित की है। शृगारके दो भेद हैं—'सयोग' और

---

१ श्री वृषभानु-कुमारि हेतु शृगार रूप मय।
वास हास रस हरे, मात बधन करुणा मय।

'वियोग'। सयोग शृगार दो प्रकारका होता है—प्रच्छन्न सयोग और प्रकाश सयोग। इसी प्रकार वियोग भी दो प्रकारका होता है—प्रच्छन्न वियोग, और प्रकाश वियोग।[१] शृगार रसके आश्रय-आलम्बन नायक-नायिका होते है। अत. केशवने विस्तारसे इनका वर्णन किया है।

नायक अभिमानी, त्यागी, तरुण कोक-कला-प्रवीण, भव्य, क्षमाशील, सुन्दर, धनी, पवित्र रुचिवाला और प्रवीण होता है। उसके चार प्रकार होते हैं—अनुकूल, दक्ष, शठ, धृष्ट। इनमे प्रत्येकके 'प्रकाश' और 'प्रच्छन्न' दो भेद हो सकते है।[२]

जातिके अनुसार नायिकाये पद्मिनी, चित्रिणी, शखिनी और हस्तिनी चार प्रकारकी होती है। नायकके सम्बन्धके आधारपर नायिकाये तीन प्रकार—स्वकीया, परकीया, सामान्या—की होती है। स्वकीया भी—मुग्धा, मध्या, प्रौढा, तीन प्रकारकी होती है। मुग्धाके—नवलवधू, नवयौवना, नवल अनगा और लज्जाप्राय—चार भेद होते है। इसी प्रकार मध्याके भी—आरूढयोवना, प्रगल्भवचना, प्रादुर्भूतमनोभवा, सुरतिविचित्रा—चार प्रकार होते है। मध्या नायिकाके तीन और भेदो—धीरा, अधीरा और धीराधीरा—का वर्णन भी केशवने किया है। प्रौढा नायिका भी चार प्रकारकी होती है—समस्तरसकोविदा, विचित्र-विभ्रमा, अक्रामति और लब्धापति। प्रौढाके—धीरा, आकृतिगुप्ता और अधीरा तीन और भेद होते है। परकीया नायिकाके दो भेद—ऊढा ओर अनूढा होते है।[३] केशवने 'रसिकप्रिया'के सातवे प्रकाशमे 'स्वाधीनपतिका, उत्का, वासक-शय्या, अभिसधिता, खण्डिता, प्रोषित प्रेयसी, विप्रलब्धा और अभिसारिका

केशी प्रति अति रौद्र, वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल पान कियो, बीभत्स बकी उर।
अति अद्भुत वचि विरचि मति, शात सततै शोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिक जन, नवरस मय ब्रजराज नित॥

—रसिकप्रिया, पृष्ठ २।

१. रसिकप्रिया, प्रथम प्रकाश।

२. वही, द्वितीय प्रकाश।

३ वही, तृतीय प्रकाश।

नायिकाके इन आठ अन्य भेदोका भी उल्लेख किया है। अभिसारिका नायिका-के तीन प्रकार—प्रेमाभिसारिका, गर्वाभिसारिका और कामाभिसारिका—माने है और फिर सभी नायिकाओको उत्तम, मध्यम, अधम इन तीन कोटियोमे रखा है। अन्तमे उन्होने 'अगम्या' नायिकाओका भी उल्लेख कर दिया है।[१]

रागोद्भव नायक और नायिकाके परस्पर दर्शनसे होता है। इसलिए केशवने साक्षात् दर्शन, चित्र दर्शन, स्वप्न-दशन और श्रवण-दर्शनका वर्णन चौथे प्रकाशमे किया है। पाँचवे प्रकाशमे दम्पत्ति-चेष्टा, स्वयदूतत्व और मिलनके विविध स्थानो और विधियोका वर्णन किया है। शृङ्गार-रस निरूपणकी दृष्टिसे छठा प्रकाश अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसमे 'भाव', 'विभाव', 'अनुभाव', 'स्थायीभाव', 'सात्त्विकभाव' 'व्यभिचारी भाव' और 'हाव'का वर्णन लक्षण-उदाहरण सहित किया गया है। विभावके अन्तर्गत आलम्बन और उद्दीपनके स्थानोकी भी विस्तृत सूची गिनाई गई है। स्थायी भावोमे केशवने निर्वेदका उल्लेख नही किया है। केशवने आठ सात्त्विक अनुभावोका वर्णन किया है। स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभग, कम्प, वैवर्ण, अश्रु, और प्रलाप (प्रलय ?)। व्यभिचारी भावोके अन्तर्गत उन्होने परम्परागत सञ्चारियोका ही उल्लेख किया है। अन्तर केवल यह है कि 'अमर्ष'के लिए 'कोह' और 'असूया'के लिए 'निन्दा', 'औत्सुक्य'के लिए 'उत्कठा', 'सुप्ति'के लिए 'स्वप्न' 'त्रास'के लिए 'भय', शब्दोका प्रयोग किया है। 'अवहित्था'का उल्लेख नही किया है। 'विवाद'का उल्लेख किया है किन्तु उदाहरण न देनेके कारण समझमे नही आता कि इससे उनका क्या तात्पर्य था। 'अवहित्था'के लिए तो 'विवाद'का प्रयोग सर्वथा असगत है। 'अवहित्था' तो सगोपनकी क्रिया है। 'हाव'के तेरह भेदो—'हेला', 'लीला', 'ललित', 'मद', 'विभ्रम', 'विहृत', 'विलास', 'किलकिञ्चित', 'विच्छित्त', 'विब्बोक', 'मोट्टायित', 'कुट्टमित' और 'बोध'—का उल्लेख भी केशवकी निजी विशेषता है। सस्कृतके आचार्योंने 'हाव' और 'हेला' को अगज अलकारोमे स्थान दिया है।[२]

---

१ रसिकप्रिया, सातवाँ प्रकाश।

२ यौवने सत्त्वजातास्तासामष्टाविंशति सख्यका।
अलङ्कारास्तत्र भावहाव हेलास्त्रयोऽङ्गजा॥
—साहित्यदर्पण, तृतीय परिच्छेद, पृष्ठ १०७।

केशव द्वारा वर्णित हावके अन्य भेदोको नायिकाके स्वभावज या सात्विक अल्कारोमे परिगणित किया है। केशवने 'अगज' और 'स्वभावज' दोनो प्रकारके अल्कारोको 'हाव' का भेद मानकर उपस्थित किया है। 'बोध' हावकी कल्पना केशवकी निजी है। विशिष्टता यह है कि इसके उदाहरणमे जो छन्द उन्होने प्रस्तुत किया है उसे ही 'सूक्ष्मालकार'का भी उदाहरण माना है। इस प्रकार 'सूक्ष्मा-लकार' और 'बोध हाव' दोनोमे अन्तर नही रह जाता।

वियोग शृगार (विप्रलम्भ) का वर्णन भी केशवने विस्तारपूर्वक किया है। उसके चार भेद—पूर्वानुराग, करुण, मान और प्रवास—और दशदशाये—अभिलाष, चिन्ता, गुणकथन, स्मृति, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जडता, मरण—मानी है। 'मान' के उन्होंने तीन भेद—गुरु, लघु, और मध्यम—किये है और साम, दाम, भेद, प्रणति, उपेक्षा, तथा प्रसग विध्वसको उसके मोचनका उपाय माना है। 'करुण' और 'प्रवास' विरहका वर्णन भी उन्होने अलग-अलग किया है।

नायक-नायिकाका सयोग करानेमे सखियोका महत्त्व कम नही है। केशव-के अनुसार 'धाइ', 'दासी', 'नायन', 'मालिन', 'तमोलिन', 'चुडिहारिन', 'सुनारिन', 'रमजनी', 'सन्यासिनी' और 'पटइन' जातिकी स्त्रियॉ सखियोका कार्य कर सकती है। इनका कार्य शिक्षा देना, विनय करना, मनाना, मिलाना, शृगार करना, झुकना और उलाहना देना है।

अन्य रसोके वर्णनमे केशवने रुचि नही दिखाई है। चौदहवे प्रकाशमे शेष सभी रसोका वर्णन कर दिया है। 'हास्य-रस'के उन्होने 'मन्दहास', 'कलहास', 'अतिहास', और 'परिहास' चार भेद किये है। प्रियके वियोगमे वे करुण रस मानते है, और उसका रग तरुण कपोत सा बताते हैं। उनके अनुसार क्रोधवश रौद्र रस उत्पन्न होता है। इसका अरुण वर्ण होता है। उत्साहसे वीर रस उत्पन्न होता है। इसका वर्ण गौर है। भयसे भयानक रस उत्पन्न होता है। इसका वर्ण श्याम होता है। 'निन्दा' (घृणा) से बीभत्स रस होता है। इसका वर्ण नीला होता है। आश्चर्यसे अद्भुत रस होता है। इसका वर्ण पीत होता है। उदासीनता (निर्वेद) से समरस (शान्त रस) उत्पन्न होता है।

पन्द्रहवे प्रकाशमे 'कैशिकी', 'भारती', 'आरभटी' और सात्विकी (सात्वती)

वृत्तियोंका वर्णन है। केशवके अनुसार कौशिकी (कैशिकी)के अन्तर्गत करुण, हास्य और शृगार रस आ सकते है। 'भारती' मे 'वीर', 'अद्भुत' और 'हास्य' रसोकी स्थिति होती है। 'आरभटी' मे 'रौद्र', 'भय' ओर 'वीभत्स' रसोका समावेश होता है। 'सात्विकी' (सात्वती) मे 'अद्भुत', 'वीर', 'शृगार' और 'समरस' (शान्त रस) आ सकते है।

सोल्हवे और अन्तिम प्रकाशमे 'अनरस' वर्णन है। इसके—'प्रत्यनीक' (विरोधी), 'नीरस', 'विरस', 'दु सन्धान' और 'पात्रादुष्ट'—पॉच भेद बताये गये है। जहाँ विरोधी रसो—शृगार और बीभत्स—का वर्णन हो वहाँ 'प्रत्यनीक' समझिये। जहॉ नायक-नायिकाके हृदयमे कपट हो वहॉ 'नीरस' समझिये। शोकमे भोगका वर्णन ही 'विरस' है। जहॉ नायक-नायिकामे एक अनुकूल, दूसरा प्रतिकूल हो वहॉ 'दु सन्धान' समझिये। जहॉ जो उचित न हो, बिना समझे-बूझे उसीको पुष्ट करते जाना 'पात्रा-दुष्ट' है। इन अनरसोका वर्णन कवि लोग नही करते।

केशवके उपर्युक्त विवेचनमे पर्याप्त मौलिकता है। उन्होने काव्यशास्त्र, कामशास्त्र तथा निजी अनुभवके आधारपर लक्षण भेद-प्रभेद, और उदाहरण देनेकी चेष्टा की है। नायिका-भेद वर्णनमे काव्यशास्त्रके साथ ही कामशास्त्रीय ग्रन्थोका प्रभाव स्पष्ट है। अगम्या-वर्णन[1], सम्मिलन-स्थान-वर्णन[2], दूती एव सखी जन-कर्म वर्णन[3] आदिमे भी कामशास्त्रसे प्रेरणा ली गई है। रस विवेचनमे केशवने सस्कृतके शास्त्रीय ग्रन्थो—'नाट्यशास्त्र' (भरतमुनि) 'साहित्यदर्पण' (विश्वनाथ), 'रसारविसुधाकर' (भूपाल) का आधार ग्रहण किया है।[4] किन्तु उन्होने उपर्युक्त आचार्योकी परिभाषाओका रूपान्तरमात्र प्रस्तुत न करके एक आचार्यकी भॉति उन्हे अपने ढगसे प्रस्तुत किया है।

'रसिकप्रिया' मे आचार्य केशवने 'रस' को पर्याप्त महत्त्व दिया है। वे कहते है कि जैसे दृष्टिके अभावमे विशाल और चचल नेत्र भी शोभा नहीं प्राप्त करते उसी प्रकार वाणीकी रसालता (सरसता) के अभावमे कविजन सौन्दर्य-

---

१. वात्स्यायन कामसूत्र, अध्याय ५।

२ वही, पचमाधिकरण, अध्याय ४।

३ वही, पचमाधिकरण, अध्याय ४।

४ आचार्य केशवदास, डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ ३०१।

सृष्टि नहीं कर सकते ।[१] ध्यान रखना होगा कि 'रस' का महत्त्व स्वीकार करते हुए भी वे उसे शोभाका हेतु ही मानते है और इस प्रकार अलकारोकी सीमामे समेट लेते है।

पिंगल-शास्त्रपर केशवने किसी स्वतन्त्र ग्रन्थकी रचना नहीं की । 'कविप्रिया' के तीसरे प्रभावमे दोषोका वर्णन करते हुए उन्हे गणोके शुभाशुभ प्रभाव, गुरु-लघु भेद, तथा यति-भग आदि छन्द-शास्त्र-सम्बन्धी सिद्धान्तोका परिचय दिया है। उनके छन्द-शास्त्रके अध्ययनका अनुमान 'रामचन्द्रिका'मे प्रयुक्त छन्दोको देखकर लगाया जा सकता है। समस्त हिन्दी-साहित्यमे किसी एक ग्रन्थमे इतने अधिक छन्दोका प्रयोग नही मिलता । 'रामचन्द्रिका'मे २४ मात्रिक तथा ५८ वर्णिक छन्दोका प्रयोग किया गया है।[२] इससे केशवके पाण्डित्य-प्रदर्शनकी प्रवृत्तिका परिचय मिलता है। प्रबन्ध-कौशलकी दृष्टिसे छन्द-वैविध्यकी उपादेयता नगण्य है, इसका ज्ञान उन्हे था अन्यथा 'वीरसिंहदेव चरित'म अधिकाशत. दोहे और चौपाई छन्दोका ही प्रयोग वे न करते।

उपर्युक्त समस्त विवेचनके आधारपर केशवदासको उच्च कोटिका आचार्य माना जा सकता है। वे रीति प्रवर्तक आचार्य है। कवि-शिक्षा सम्बन्धी समस्त मान्यताओ—अलकार, रस, नायिकाभेद, गुण-दोष-विवेचन, काव्य-नियम (रूढि), छन्दोके विविध रूप आदि—को उन्होने विश्वासपूर्वक हिन्दी-पाठकोके सम्मुख उपस्थित किया है। उनके लक्षणो और उदाहरणोमे यत्किञ्चित् भूले हो सकती है किन्तु इससे उनके अध्ययन और पाण्डित्यमे शका नही की जा सकती। अलकारोका विभाजन, नायिका भेद सम्बन्धी कुछ मान्यताये, 'हाव'के अन्तर्गत ही सात्विक और स्वभावज अलकारोकी परिगणना अदि उनकी कुछ मौलिक स्थापनाये है, जो उन्हे आचार्योकी कोटिमे स्थान दिलानेके लिए पर्याप्त है। छन्द-शास्त्रके सम्बन्धमे तो निर्विवाद रूपसे केशवका ज्ञान हिन्दीके अन्य किसी आचार्यसे अधिक है। संस्कृतके मेधावी आचार्योंकी तुलनामे निश्चय ही केशवका कोई महत्त्व नही है,

---

१. ज्यों बिन दीठि न शोभिनै, लोचन लोल विशाल ।
त्यों ही केशव सकल कवि, बिन वाणी न रसाल ॥

—रसिकप्रिया, पृ० ३ ।

२. आचार्य केशवदास, डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ २०३ ।

किन्तु हिन्दीके पथ-प्रवर्तक आचार्यके रूपमे उनका स्मरण बराबर होता रहेगा। केशवके पूर्व सस्कृत काव्य-शास्त्र इतना पूर्ण और प्रौढ हो चुका था कि उसमे किसी प्रकारकी मौलिक उद्भावना करना असम्भव-सा था। उस शास्त्रीय सामग्रीको हिन्दीके पाठकोके लिए व्यापक रूपसे उपस्थित करनेका कार्य उन्होने सर्वप्रथम किया है। इस दृष्टिमे उनका महत्त्व अस्वीकार नही किया जा सकता।

प्रामाणिक कृतियाँ—केशवदासकी आठ कृतियाँ प्रामाणिक मानी जाती है—'रसिकप्रिया' (१६४८ वि०), 'रामचन्द्रिका' (१६५८ वि०), 'नखशिख' (१६५८ वि०), 'कविप्रिया' (१६५८ वि०), 'रतनबावनी' (१६५८—१६६४ वि०), 'वीरसिहदेव चरित' (१६६४ वि०), 'विज्ञानगीता' (१६६७ वि०), 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' (१६६९ वि०)।

विषयकी दृष्टिसे **'वीरसिंह देवचरित', 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका'** और **'रतन बावनी'** ऐतिहासिक महत्त्वकी कृतियाँ है। 'वीरसिहदेव चरित' मे ओडछा नरेश महाराज वीरसिह देवका जीवन-चरित वर्णित है। 'रतनबावनी' ओडछा नरेश मधुकर शाहके पुत्र कुँवर रतनसेनकी प्रशसामे लिखी गई है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' मे जहाँगीरका यशवर्णन एक विशेष माध्यम और विशिष्ट शैलीमे किया गया है। 'उद्यम' और 'भाग्य' दोनोमे विवाद होता है। प्रश्न यह है कि दोनोमे कौन बडा है। निर्णयके लिए वे भगवान् शकरके पास जाते है। भगवान् शकर उन्हे जहाँगीरके पास भेजते है। राजधानी देखते हुए दोनो महाराज जहाँगीरकी सभामे पहुँचते है। इसी प्रसगमे सम्राट् जहाँगीर, उनके सभासदो तथा अधीनस्थ राजाओका वर्णन किया गया है। **'रामचन्द्रिका'** मे भगवान् रामके वैभवका वर्णन है। इसमे केशवकी भक्ति-भावनाकी अभिव्यक्ति भी हुई है। **'विज्ञानगीता'** आध्यात्मिक पुस्तक है। उसे केशवने वेदो, स्मृतियो और पुराणोकी परम्परामे रखा है।[1] **'रसिकप्रिया'** मे रस-विवेचन तथा नायिका-भेद-

---

१ वेद देखि ज्यों सुमृति भव, सुमृतिनि देखि पुरान।
देखि पुराणनि त्यों करी, गीता ज्ञान प्रमान॥
—विज्ञानगीता, प्रथम प्रभाव, १२।

वर्णन किया गया है। शृगाररसको विशेष महत्त्व दिया गया है। 'कविप्रिया' मे काव्य रीति, अलकार और कविपथको महत्त्व दिया गया है। 'नखशिख' मे राधाजीका नखशिख वर्णन किया गया है। यह स्वतत्र रचना प्रतीत होती है यद्यपि 'कविप्रिया' के चौदहवे प्रभावके अन्तमे प्रसगवश इसे समाविष्ट कर लिया गया है।

काव्यसौष्ठव

भावानुभूति—केशवदासकी प्रसिद्धि मुख्यत. 'रामचन्द्रिका', 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' पर आधृत है। भावानुभूति और काव्यसौष्ठवकी दृष्टिसे इन कृतियोका महत्त्व कम नही है। जीवनमे सर्वाधिक व्यापक, गम्भीर और मानव क्रिया-कलापोको प्रभावित करनेवाला भाव 'रति' है। 'रसिक-प्रिया'मे 'रति' को केशवदासजीने भी सर्वाधिक महत्त्व दिया है। उन्होने इसीके अन्तर्गत अन्य सभी भावोंको समाविष्ट करना चाहा है। भगवान् कृष्णको नवरस-मय मानकर उन्होने राधा-कृष्णको ही सभी भावोका आश्रय स्वीकार किया है। प्रथारभमे ही वे कृष्णके नवरसमय चरित्रकी ओर सकेत करते है—"श्री राधाजीके लिए जो शृगाररूप हुए, गोपियोका वस्त्र हरण करते समय जिन्होने हास्य-रूप दिखाया, माता यशोदाके द्वारा बाँधे जानेपर जो करुणा-मूर्ति बन गए, केशीका सहार करते समय जिन्हे रौद्र रूप धारण करना पडा, वत्सासुरका वध करते समय जो साक्षात् वीर-रसकी मूर्ति बन गये, दावानल पान करते समय जिन्होने भयानक रूप धारण किया, बकीको मारकर जिन्होने बीभत्स दृश्य उपस्थित किया, ब्रह्माको भी धोखेमे डालकर जिन्होने अद्‌भुत रसकी सृष्टि की और जो निरन्तर शात-रस-रूप हैं, ऐसे नवरसमय ब्रजराजकी सेवा रसिक जनोको करनी चाहिए।"[१] निस्सन्देह यदि केशवने भगवान् कृष्णके चरित्र को इस विशद भूमिकामे प्रतिष्ठित

---

१ श्री वृषभानु-कुमारि हेतु शृगार रूप मय।
बास हास रस हरे, मातबधन करुणामय॥
केशी प्रति अति रौद्र, वीर मारो वत्सासुर।
भय दावानल पान कियो, वीभत्स बकी उर॥
अति अद्‌भुत वन्चि विरचि मति, शात सतते शोच चित।
कहि केशव सेवहु रसिक जन, नवरस मय ब्रजराज नित॥
—'रसिकप्रिया', पृष्ठ २।

किया होता तो उनके जीवनमे सभी रसो और भावोकी उचित व्यञ्जना हो सकी होती। उन्होने ऐसा नही किया वरन् शृगारका रस-राजत्व प्रमाणित करनेके लिए, उसीके प्रसगमे अन्य सभी रसोकी व्यञ्जनाका अद्‌भुत प्रयोग किया। उन्हे यह ध्यान नही रहा कि 'करुण', 'बीभत्स', 'रौद्र', 'वीर' और 'भयानक', शृगार रसके विरोधी माने गए है, विशेषत: एक ही आश्रय या एक ही आलम्बनसे सम्बद्ध होनेपर तो इनका विरोध काव्य-सौन्दर्यको नष्ट कर देता है। श्रीराधाको वीर रसका आश्रय मानकर केशवने विचित्र रचना की है—

गति गजराज साजि देह की दिपति वाजि
हाव रथ भाव पतिराजि चली चाल सों।
लाज साज कुल कानि सोच पोच भय मानि,
भौहै धनु तानि बान लोचन बिसाल सों।
केशोदास मदहास असि कुच भट भिरे,
भेंट भये प्रतिभट भाले नखजाल सों।
प्रेम को कवच कसि, साहस सहायक लै,
जीति रतिरन आजु मदन गुपाल सों।[1]

गतिके गजराज, देहदीतिके घोडे, हावोका रथ, भावोके सिपाही, भौहोका धनुष, कटाक्षोके बाण, मदहास्यकी तलवार, कुचोके योद्धा, प्रेमका कवच और साहसकी सहायता लेकर प्रियाजी (राधाजी)ने जो रतिरण किया होगा वह न 'रति' हो सकता है और न रण। 'शृङ्गार'के साथ 'बीभत्स'की योजना करके तो उन्होने काव्यको कलकित-सा कर दिया है। 'रसिकप्रिया'में 'रति भाव'के चित्रणमे केशवने सामान्य सुरुचिका परिचय भी नहीं दिया है। उन्होने कृष्णको उस लम्पटकी भूमिकामे उपस्थित किया है जो प्रत्येक परिस्थितिमे केवल काम-पिपासाकी तुष्टिको ही लक्ष्य मानकर चलता है। उन्होंने इसके अनुकूल मिलन-प्रसगोकी उद्‌भावना की है। एक बार वृषभानुके समीपवर्ती घरमें आग लग जाती है, सारे ब्रजवासी उसे बुझानेमें लग जाते हैं। कृष्णको और कुछ नही सूझता, वे इस अवसरका उपयोग राधाके विशाल नेत्रो, चिबुक और कपोलोको चूमने तथा उनका आलिगन करनेमे करते हैं—

१ रसिकप्रिया, चौदहवॉ प्रकाश, (हि० ए० सस्करण), पृष्ठ ८५।

लोचन विशाल चारु चिबुक कपोल चूमि,
चपे की सी माला लाल लीन्हीं उर लाइकै।

इसी प्रकार, महाकविने बल्देवजीकी वर्षगाँठपर जब नन्दजीके महलमे भारी भीड हो जाती है तो अवसर निकालकर राधा कृष्णका मिलन करा दिया है। लगता है कि वर्षगाँठका आयोजन इसीलिए किया गया था। यहाँ तक तो गनीमत थी, एक बार तो धायके आग्रहपर अर्द्धरात्रिमे सघन घनोके घिर जानेपर नन्दलालजी (धायके घरपर ही) राधिकाकी आधी सेजपर चुप-चाप सो जाते है।—

घोर उठे गगन सघन घन चहूँ दिशि,
उठि चले कान्ह धाय बालि उठी तिहिं काल।
आधी रात अधिक अँधेरी माँझ जैहो कहाँ,
राधिका की आधो सेज सोय रहो नन्दलाल॥

इस प्रकारकी प्रसगोद्भावनाकी प्रेरणा कविको कामशास्त्रीय ग्रन्थोसे मिली है। वात्स्यायनके काम सूत्रके तैतालीसवे प्रकरणमे परिचय-सम्पादन-विधिका उल्लेख करते समय मिलनके लिए उपयुक्त स्थलो और अवसरोमे—मित्र, सम्बन्धी, राज्याधिकारी (महामात्य) तथा वैद्यका घर और विवाह, यज्ञोत्सव या विपत्तिका समय तथा उद्यान गमनादिके अवसर मिलनके लिए अधिक उपयुक्त माने गए है। महाकवि केशवने इसी आधरपर उपर्युक्त प्रसगोकी कल्पना की है। दरबारी वातावरणकी रगीनीमे वे यह भूल गये कि कामशास्त्रके आधारपर रस-शास्त्रकी रचना सगत नही है। रस-शास्त्र लोक-मर्यादाका सर्वथा उल्लघन नही कर सकता। इसका यह तात्पर्य नहीं कि केशवका 'रति' या शृङ्गार-वर्णन सर्वत्र हीन कोटिका ही है या उनमे भावाभिव्यक्तिकी क्षमता ही नही थी। 'रसिकप्रिया'मे ही कई स्थलोपर उनके वर्णन बड़े ही मार्मिक है। नायिकाके 'गुरुमान'का वर्णन करते हुए उन्होने बडा ही सजीव, स्वाभाविक और अवसरोचित चित्रण किया है—

बूझत ही वह गोपी गुपालहिं, आजु कछू हँसिकै गुण गाथहिं।
ऐसे में काहू को नाम सखी कहि, कैसे धौ आइ गयो ब्रजनाथहि॥

खाति खवावति ही जु बिरी, सु रही मुख की मुख हाथ की हाथहिं।
आतुर है उन आँखिन तै अँसुवा निकसे अखरान के साथहिं॥

प्रेम-गर्विता नायिकाके विश्वासको कितनी जल्दी ठेस लगती है ? जरा-सी बात उसके हृदयको किस सीमातक प्रभावित कर सकती है, इसका बडा ही स्वाभाविक चित्र 'सु रही मुखकी मुख हाथकी हाथहिं' के द्वारा अकित कर दिया गया है। 'शृङ्गार'के अन्तर्गत नायिकाके रूप-वर्णनकी परम्परा नई नही है। केशवने भी राधाका सौन्दर्याकन किया है। राधाको पद्मिनी नायिकाके रूपमे कल्पित करते हुए वे कहते है—

हँसत कहत बात, फूल से झरत जात,
गूढ भूरि हाव-भाव कोक जैसी कारिका।
पन्नगी नगी कुमारि आसुरी सुरी निहारि,
डारी वारि किन्नरी नरी गमार नारिका।
तापै हौ कहाँ है जाऊ बलि जाऊँ केशवदास,
रची विधि एक ब्रज लोचन की तारिका।
भोर से भ्रमत अभिलाष लाख भाँति दिव्य,
चम्पे कैसी कली वृषभानु की कुमारिका।[1]

कविने वृषभानु-कुमारीको चम्पेकी कलीके रूपमे कल्पित करके न केवल उसके चम्पकवर्णी होनेका सकेत किया है वरन् उसके विकासोन्मुख यौवनकी व्यजना भी की है। केशवदासजी यदि काव्य रीति-निरूपणमे न उलझे होते तो कदाचित् उनकी भावाभिव्यञ्जना अधिक स्वाभाविक, सरस, रमणीय और मार्मिक होती। 'रसिकप्रिया' का प्रत्येक छन्द 'रस', 'भाव', 'नायक', 'नायिका', 'विभाव', 'सखी', 'दूती', सयोगकी स्थितियाँ, वियोग जनित दशाये या मान आदिके भेद-प्रभेदके उदाहरण रूपमे प्रस्तुत हुआ है। अतः प्रत्येक छन्दकी अपनी सीमाये है। यदि स्वतन्त्र उद्भावनाकी गई होती तो बात ही दूसरी होती। वियोगिनी राधाका एक चित्र देखिए—

केशव चौंकति सी चितवै छिति, पा धरकै तरकै तकि छाहीं।
बूझिये ओर कहै मुख ओर सु और की और भई क्षण माहीं।

1 'रसिकप्रिया', तृतीय प्रकाश, छन्द ४।

डीठि लगी किधौं बाइ लगी, मन भूलि पर्‍यौ कै कर्‍यो कछु काहीं।
घूँघट की घट की पटकी हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाहीं।[1]

यह छन्द नायिकाके प्रकाश-उन्मादके उदाहरण रूपमे प्रस्तुत किया गया है। उन्मादके लक्षणोमे कवि कह आया है कि 'तर्कना', 'कभी उठकर चल देना', 'एकटक देखते रह जाना', 'कभी रोना', 'कभी हँसना' आदि क्रियाये उन्मादके अन्तर्गत आती है। ऊपरकी तीन पंक्तियोमे पूर्वोल्लिखित लक्षणोको लाना आवश्यक था। यदि ऊपरकी पंक्तियोमे राधाकी विरह-व्याकुलताकी गम्भीर व्यञ्जना उसकी मलीनता, उदासीनता और कारुणिकता दिखाकर की गई होती और अन्तकी चौथी पंक्तिमे—

'घूँघट की घट की पटकी हरि आजु कछू सुधि राधिकै नाहीं'

कहा गया होता तो प्रस्तुत छन्द अपनी सरसतामे अकेला होता। तुलनाके लिए देखना हो तो सूरकी राधाका चित्र देख लीजिए—

अति मलीन वृषभानु-कुमारी।
हरि स्रम-जल भींज्यौ उर अंचल,
तिहिं लालच न धुवावति सारी।
अध मुख रहति अनत नहि चितवति,
ज्यों गथ हारे थकित जुवारी॥
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने,
ज्यो नलिनी हिमकर की मारी।
सूरदास कैसें करि जीवे,
ब्रज बनिता बिन स्याम दुखारी॥[2]

यह अनुभूतिके आग्रहपर अंकित चित्र है, किसी पूर्व निश्चित लक्षणका अनिवार्य उदाहरण बनकर नही आया है। 'कविप्रिया'मे गणागणका उदाहरण देते हुए केशवदासजीने दोहे जैसे छोटे छन्दमे एक बडी ही मार्मिक उक्ति प्रस्तुत की है—

---

१. 'रसिकप्रिया', आठवाँ प्रकाश, छन्द ४१।
२ सूरसागर, दशम स्कध, छन्द ४६९१।

राधा राधारमन के, मन पठयो है साथ।
ऊधव! ह्याँ तुम कौनसों कहौ योगकी गाथ ॥[१]

लगता है, दोहा पहलेसे ही रचित था और बादको उदाहरण रूपमे रख दिया गया।

'रामचन्द्रिका'मे 'रति'की अभिव्यक्तिमे केशवको अधिक सफलता नही मिली है। पचवटी-प्रसगमे एक-दो छन्दोमे सीता द्वारा रामके रिझाये जानेका वर्णन है। सीताजी वीणा बजाकर रामचन्द्रजीका मन बहलाती हैं। उनके सगीतके प्रभावसे वन्य-पशु भी वहाँ एकत्र हो जाते है और भगवान् राम उन सभीको आभूषण पहिनाते है—

जब जब धरि बीना प्रकट प्रबीना, बहु गुन लीना सुख सीता।
पिय जियहि रिझावै, दुखनि भजावै, विविध बजावै गुण गीता ॥
तजि मति ससारी बिपिन बिहारी, दुख सुखकारी घिरि आवैं।
तब तब जगभूषण रिपुकुल दूषण सबको भूषण पहिरावै ॥[२]

रावण-बधके पश्चात् अयोध्या लौटनेपर 'रति' भाव (शृङ्गार)का विस्तृत वर्णन रामके सामन्ती जीवनके चित्रण-प्रसगमे किया गया है। तीसवे, एकतीसवे और बत्तीसवे प्रकाशमे 'रगमहलके सगीत', 'रामके शयन', 'सीताकी दासियोका नखशिख' और 'रामकी जलकेलिका' विस्तृत वर्णन है। इन प्रसगोमे कवि राम और सीताको आश्रय—आलम्बन रूपमे नही ला सका है। राम सीताकी दासियोंके साथ क्रीडा करनेमे मग्न है। यह राम-दासीगण-लीला भी अलकृत वर्णनोसे भरी है। केशवजी इस प्रसगमे रामचन्द्रजीके नवीन बाग, कृत्रिम पर्वत और कृत्रिम सरिता का वर्णन करना भी नही भूले है। जल-क्रीडाका एक चित्र देखिए—

एक दमयन्ती ऐसी हरैं हँसि हँसवश,
एक हसिनी सी बिसहार हिए रोहियो।
भूषण गिरत एकै लेती बूडि बीचि बीच,
मीन गति लीन हीन उपमान टोहियो।

१ 'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव, छन्द ३०।
२ 'रामचन्द्रिका', ग्यारहवाँ प्रकाश, छन्द, २७।

एकै मत कैकै कंठ लागि लागि बूडि जात,
जलके देवना सी देवि देवता विमोहियो।
केशोदास आस-पास भँवर भँवत जल—
केलि में जलजमुखी जलजसी सोहियो।[१]

रामकी यह जल-क्रीडा उनके मर्यादित रूपके प्रतिकूल है। निश्चय ही यहाँ रामके रूपमे मध्ययुगका सामान्य नृप कवि-मानसमे प्रतिष्ठित हो गया है। महाकविने केलि-रत रामको 'नृपति' शब्दसे ही अभिहित किया है—

क्रीडा सरवर में नृपति, कीन्हीं बहु बिधि केलि।
निकसे तरुणि समेत जनु, सूरज किरण सकेलि॥[२]

मानव जीवनमे व्यापकता, प्रभाव और आकर्षण-क्षमताकी दृष्टिसे 'रति'के बाद 'करुणा' का स्थान है। राम-कथाका बीज-भाव करुणा है। इसलिए 'रामचद्रिका' मे 'करुणा' की सफल अभिव्यञ्जनाके लिये पर्याप्त गुजाइश थी। रामचद्रिकाके अध्ययनसे स्पष्ट हो जाता है कि कवि ऐसे अवसरोको साफ टाल गया है। यह कहना कि यह 'रामचन्द्र-चन्द्रिका' है और चन्द्रिकासे तात्पर्य वैभवकी पूर्णतासे है, इसलिए कवि रामके राजसी (वैभवपूर्ण) ठाट-बाटके वर्णनमे ही प्रवृत्त हुआ है, कुछ बहुत युक्तिसगत नही जान पडता। नामकरण और उसके अनुसार रचनाका स्वरूप-निर्माण ये दोनो बाते भी तो कविकी मनोवृत्तिका द्योतन करती है। सत्य यह है कि कविकी मनोवृत्ति ही ऐसी नही थी कि वह कारुणिक प्रसगोमे तन्मय होकर पूरी सच्चाईसे उसका चित्रण करता। राम-कथामे राम-वन-गमनका प्रसग कविकी सहृदयताकी कसौटी है। इस कसौटीपर चढनेसे ही केशवने इनकार कर दिया है। 'रामचन्द्रिका' मे कुल अट्ठाइस छन्दोमे ही भरत और शत्रुघ्नका ननिहाल जाना, दशरथका रामको राज्य देनेके लिए गुरु वशिष्ठसे मत्रणा करना, कैकेयीको यह समाचार प्राप्त होना, उसका रामको अकारण बन भेजनेका निश्चय करना और दशरथसे वरदान माँगना, रामका बन जानेका निश्चय, उनका मातासे

१. 'रामचन्द्रिका' बत्तीसवाँ प्रकाश, छद ३७।
२ 'रामचन्द्रिका' बत्तीसवाँ प्रकाश, छन्द ३८।

आज्ञा लेना और माताको नारी-धर्मका उपदेश देना, रामका सीताके पास जाना, राम-सीता-सवाद, राम-लक्ष्मण-सवाद और अन्तत. तीनोका अयोध्या त्यागकर वन-पथपर अग्रसर होना आदि सब कुछ वर्णन कर दिया गया है। इस पूरे प्रसगको पढकर पाठकको बडी निराशा होती है। अन्य स्थलोपर 'करुणा' के कुछ चित्र अच्छे बन पडे है। शक्ति-बाण द्वारा लक्ष्मणके घायल होनेपर रामका विलाप, मेघनादकी मृत्युपर रावणका क्रन्दन, चित्रकूटमे माताओ से मिलनेपर रामका पिताकी कुशल पूछना और इसपर माताओका रुदन[1], विश्वामित्र द्वारा रामलक्ष्मणकी याचना और रामवियोग मे व्याकुल महाराज दशरथका गम्भीर मौन[2] आदि कुछ ऐसे हृदय-द्रावक चित्र है जिन्हे करुणाकी सफल अभिव्यक्तिके रूपमे स्वीकार किया जा सकता है। किन्तु इस सफलताका महत्त्व सापेक्षिक है। इससे यह सिद्ध नही होता कि केशवकी मनोवृत्ति करुण प्रसगोके लिए सर्वथा अनुकूल थी। इन्द्रजीत सिहके अखाडेमे 'नवरगराय'की संगीत-लहरीमे मग्न रहनेवाले, 'विचित्रनयना'के कटाक्ष बाणोसे बिद्ध होकर उसके रूपकी प्रशसा करनेवाले, 'तानतरग के राग-सागरमे उठनेवाली स्वर-लहरियोमे डुबकी लगानेवाले, 'रगराय'के अग-अगसे छलकनेवाली रूप-लहरीका पान करनेवाले, 'रगमूर्ति'के पद सचालनके साथ सिर-चालन करनेवाले और 'प्रवीण राय'के चरणोमे अपनी समस्त काव्य-प्रतिभा अर्पित करनेवाले केशवदास भव-भूतिकी विभूति कैसे धारण करते?

'भय', 'आतक', 'क्रोध' और 'उत्साह'का वर्णन करनेमे केशवको अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। इन सभी मनोविकारोसे उनका सीधा परिचय था। विवाहोपरान्त दल-बलके साथ जनकपुरीसे अयोध्या लौटते समय रामसे परशुराम का मिलन शील और शान्तिसे क्रोध और आतकका मिलन है। परशुरामके रौद्र रूपको देखकर मदमत्त हाथियोका मद उतर जाता है, उनका गर्जन बन्द हो जाता है, गम्भीर ध्वनिसे बजती हुई दुन्दुभियाँ सहसा रुक जाती हैं, शूरवीर

---

१ तब पूछियो रघुराइ। सुख है पिता तन माइ।
तब पुत्र को मुख जोइ। क्रम तैं उठीं सब रोइ॥

२ रामचलत नृप के युग लोचन। वारिभारत भये वारिद रोचन।
पायन परि ऋषि के सजि मौनहिं। केशव उठि गए भीतर भौनहिं॥

लोग अस्त्र-शस्त्र फेककर भागने लगते हैं और कुछ तो कपचादि काटकूटकर स्त्री-वेश धारणकर लेते है ।[१] रावणकी सभाका वर्णन करते समय आतंकका अच्छा चित्र अंकित किया गया है ।

पढ़ौ विरंचि मौन वेद जीव सोर छंडि रे ।
कुबेर बेर कै कही न यक्ष भीर मंडि रे ।
दिनेश जाय दूरि बैठि नारदादि संग ही ।
न बोलु चंद मंद बुद्धि इन्द्र की सभा नहीं ।[२]

उपर्युक्त छन्द 'हनुमान्नाटक' के निम्नलिखित छन्दके आधारपर लिखा गया है—

ब्रह्माध्ययनस्य नैष समय तूष्णीं वहि स्थीयता ।
स्वल्प जल्प वृहस्पते जडमते नैषा सभा बज्रिण ।
वीणा संहर नारद स्तुतिकथालापैरलं तुम्बुरो ।
सीतारल्लकभल्लभग्नहृदय स्वस्थो न लंकेश्वर. ।

यदि केशवने स्वतन्त्र कल्पनाका आधार लिया होता तो हम उनके कवि-रूपको सादर नमस्कार करते, यो तिरस्कार तो अब भी नही कर सकते क्योंकि एक भाव-चित्रके आधारपर दूसरा चित्र अंकित करना भी सरल नहीं है। लव-कुश-शत्रुघ्न-युद्ध वर्णनमे 'उत्साह' को सुन्दर व्यञ्जना हुई है। 'रामचन्द्रिका' मे युद्धवीरका इससे सुन्दर उदाहरण अन्यत्र नहा है। 'रतन बावनी' और 'वीरसिंहदेवचरित' मे भी युद्धवीरका सजीव वर्णन किया गया है। 'रतनबावनी' मे कुँवर रतनसेन सम्राट् अकबरकी विशाल वाहिनीसे युद्ध करनेके लिए अपने सैनिकोंको उत्साहित करते हुए कहते है—

रतनसेन कह बात सूर सामंत सुनिज्जिय ।
करहु पैज पन धारि मारि सामतन लिज्जिय ।
धरिय स्वर्ग अच्छरिय हरहु रिपु गर्व सर्व अब ।
जुरि करि संगर आज सूरमंडल भेदहु सब ॥

---

१ 'रामचन्द्रिका' सातवाँ प्रकाश, छन्द २ ।

२. 'रामचन्द्रिका' सोलहवाँ प्रकाश, छन्द २ ।

मधुसाह नद इमि उच्चरद खड खड पिंडहि करहुँ ।
कट्टरहुँ सुदत हथियान के मर्दहुँ दल यह प्रन धरहुँ ॥[१]

यद्यपि यह वर्णन चारण कवियोकी छप्पय-पद्धतिपर किया गया है और इसमे परम्परागत उक्तियोका आधिक्य है किन्तु इसमें निहित उत्साह-भावना और उसकी ओजपूर्ण व्यञ्जना केशवकी युद्ध वर्णन-क्षमताकी परिचायिका है। राजदरबारमे रहते हुए केशवने 'भय' 'आतक' और 'उत्साह' की प्रत्यक्ष अनुभूति की थी। सम्भवत उन्हे युद्ध-भूमिमे भी उपस्थित होना पडा था। अतः उनकी कृतियोमे इस प्रकारके वर्णनोका सजीव होना स्वाभाविक है।

'रामचन्द्रिका' मे 'राम-विरक्ति-वर्णन-प्रसग'के अन्तर्गत 'निर्वेद' की व्यञ्जना करनेमे भी केशवको सफलता मिली है—मूढ मनकी भर्त्सना करते हुए वे कहते हैं—

पैरत पाप पयोनिधि मे नर मूढ मनोज जहाज चढोई ।
खेल तऊ न तजै जड जीव जऊ बडवानल क्रोध डढाई ।
झूठ तरगनि में उरझै सु इते पर लोभ-प्रवाह बढाई ।
बूडत है तेहि ते उबरै कह केशव काहे न पाठ पढोई ॥[२]

इस प्रकार यदि सब मिलाकर देखा जाय तो भावाभिव्यक्तिमे केशव सर्वथा असफल नही है। वे असफल इसलिए प्रतीत होते है कि मानव जीवनके साथ व्यापक और गम्भीर सहानुभूतिका उनमे अभाव है। आचार्य शुक्लने उन्हे हृदयहीन इसीलिए कहा था कि मनुष्यका मनुष्यके प्रति जो सहज राग है उसका पूण विकास केशवकी कवितामे नही मिलता। शुक्लजीकी सहृदयता मनुष्यताका पर्याय है। 'सम्पूर्ण जीवन-क्षेत्र और समस्त चराचर क्षेत्रसे मार्मिक तथ्योंका चयन' केशवके बूतेकी बात नही थी। 'सर्वभूतको आत्मभूत करके अनुभव कराना' भी उनके वशका न था। 'केवल असाधारणत्व-दर्शनकी रुचि' का त्याग केशव नहीं कर सकते थे जिसे शुक्लजी सच्ची सहृदयतामे सबसे बडी बाधा मानते हैं। सच्ची भावुकता या सहृदयता, शुक्लजीके शब्दोंमे—सुखके

१ 'आचार्य केशवदास', डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृष्ठ १५८ पर उद्धृत।
२ 'केशव-कौमुदी' चौबीसवॉ प्रकाश, छन्द २२।

लावण्य, वनस्थलीकी सुषमा, नदी या शैल तटीकी रमणीयता, कुसुम-विकासकी प्रफुल्लता, ग्रामदृश्योकी सरल माधुरीको देखकर मुग्ध होना, किसी प्राणीके कष्टव्यञ्जक रूप और चेष्टापर करुणार्द्र होना, किसीपर निष्ठुर अत्याचार होते देख क्रोधसे तिलमिला उठना—अर्थात् व्यक्त प्रकृतिके समस्त रूपो और मानव-जीवनकी सभी परिस्थितियोके साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करनेमे है।[1] जो प्रकृतिकी विराट् रमणीयतासे ऑख मूँदकर केवल कामिनीकी मुख छबि निहारा करते है, जो दु:खियोके दुःखको देखकर करुणार्द्र नही हो सकते जो अत्याचारीके अत्याचारपर क्रोध न कर मानिनीके मान-जनित-कोपको ही काव्यका विषय बना सकते है, उन्हे पूर्ण सहृदय कैसे कहा जाय ? जो लोग 'रसिकप्रिया' की स्फुट रसात्मक उक्तियोके आधारपर केशवको सहृदय प्रमाणित करते है वे हृदयको केवल 'रति भाव' का ही अधिष्ठान मान लेते है और 'रति' भी वह जो केवल नायक नायिकाकी विलास-चेष्टाओके माध्यमसे व्यक्त हो सकती है। शेष सृष्टिके साथ भी तो कवि रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है। व्यावहारिक धरातलपर भी रसिक और सहृदय एक ही कोटिके प्राणी नही है। निर्मम डाकू भी कामिनीके कटाक्ष-बाणोसे आहत होकर उसकी ओर बार-बार लोलुप दृष्टिसे निहारता हुआ अपनी रसिकताकी ही व्यञ्जना करेगा किन्तु उसे सहृदय कहना तो सहृदयताके साथ अन्याय करना होगा। हॉ, यह अवश्य कहा जा सकता है कि शुक्लजीकी सहृदयताकी कसोटी पर तुलसीको छोडकर हिन्दी-साहित्यका अन्य कोई कवि खरा नही उतरता। यदि केशवने भी प्रबन्धकाव्य न लिखा होता तो उनकी यह छीछालेदर न होती। प्रबन्ध काव्यकी रचनामे मानव जीवनकी प्रत्येक परिस्थितिके साथ तादात्म्य स्थापित करके अवसरके अनुकूल भाव-योजना करनी पडती है, क्योकि शील-प्रतिष्ठा प्रबन्धकाव्यकी सबसे बडी विशेषता है। उसमे अनेक पात्रोंका चरित्र स्फुटित होता है। पात्र-विशेषके शील-वैशिष्ट्यका ध्यान रखकर ही भाव-योजना की जाती है। ऐसा न करनपर पात्रोंका उचित चारित्रिक विकास नही हो पाता। तुलसीके आदर्श काव्यकी कसोटीपर ही शुक्लजीने केशवको हृदयहीन कहा है। स्मरण रखना होगा कि केशवकी रसिकतासे शुक्लजी अवगत थे। अपने

१. 'रसमीमासा', पृष्ठ २६१।

इतिहासमे उन्होने लिखा है—"कहते है, वे रसिक जीव थे।"[१] 'रसिकता' और 'सहृदयता' ये दोनो शब्द उनकी दृष्टिमे पर्याय नही थे। यदि केशवदासने केवल मुक्तक-काव्य-रचनाकी होती तो कदाचित् शुक्लजीको यह कहनेका अवसर न मिलता कि 'केशवको कवि-हृदय नही मिला था। उनमे वह सहृदयता और भावुकता न थी जो एक कवि मे होनी चाहिए'।' शुक्लजीके आदर्श कवि यदि 'बिहारी', 'मतिराम' या 'देव' होते तो भी काम चल जाता। वे तो जब भी कविकी बात करते है तो उनके मनमे 'तुलसी' प्रतिष्ठित रहते है। तुलसी और केशवको साथ रखकर देखनेपर तो वही कहा जायगा जो शुक्लजीने कहा है। भाव चित्रणमे केशवने परिस्थितिगत औचित्यका भी ध्यान नही रखा है। एक उदाहरण लीजिए—युद्ध-विजयके लिए रावण यज्ञ कर रहा है। अगद आदि सेनानायक मख-भग करने जाते है। अगद मन्दोदरीको पकडकर घसीटते हुए चित्रशालासे बाहर ले आते है। उसके गलेका हार टूट जाता है, वेणीके फूल बिखर जाते है, कचुकी फट जाती है। वह आर्त्त-स्वरसे रक्षार्थ रावणको पुकारती है। निश्चय ही यह चित्र करुणापूर्ण कहा जायगा। केशव ऐसी परिस्थितिमे मन्दोदरीके कचुकी-रहित उरोजोके वर्णनमे तल्लीन हो जाते है। वे एकके बाद एक उत्प्रेक्षाऐं करते चले जाते है—

बिना कचुकी स्वच्छ वक्षोज राजैं।
किधौ साँचहू श्री फलै सोम साजैं॥
किधौ स्वर्ण के कुम्भ लावण्य पूरे।
वशीकर्ण के चूर्ण सम्पूर्ण पूरे॥[२]

शत्रुकी स्त्रीकी भी एक मर्यादा है और ऐसा शत्रु जिसे लोक-पीडकके रूपमें नहीं दिखाया जा सका है। 'रामचन्द्रिका' मे रावण रामके व्यक्तिगत शत्रुके रूपमे ही चित्रित किया गया है। अगदका मन्दोदरीको पकडना और घसीटना ही बहुत था। दुर्दशा-ग्रस्त शत्रु-नारीकी फटी कचुकीमे उभरे हुए उरोजोका वर्णन किस भावकी उद्भावना करनेके लिए किया गया है? विज्ञ पाठक स्वय निर्णय

१. 'हिन्दी साहित्यका इतिहास', रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २१२।

२ वही, पृष्ठ २०९।

३ 'रामचन्द्रिका', उन्नीसवॉ प्रकाश, छन्द ३१।

कर सकते है कि यह वर्णन रसिकताके तकाजेसे किया गया है या सहृदयताके आग्रह से ?

चरित्र-चित्रण—केशवका चरित्र-चित्रण देखकर सर्वाधिक निराशा होती है। केशवके 'राम' उग्र, रसिक और स्त्रैण है। उग्र ही रहते तो कोई बात नही थी। उन्हे रसिक और स्त्रैण सामन्तकी भूमिकामे देखकर केशवकी बुद्धिपर तरस आता है। 'सीता'के आदर्श चरित्रकी रक्षा भी केशवदास नही कर सके है। रामकी सेवा करना तो दूर, मार्गमे श्रमित हो जानेपर वे स्वय रामसे पखा झल्वाती हैं और रामका श्रम तो उनके 'चञ्चल चारु दृगचल'से ही दूर हो जाता है। केशवके 'भरत' हठी है। स्वय रामको उनके चरित्रपर विश्वास नही है। 'कौशल्या'का चरित्र तो सामान्य स्त्रियोकी कोटिसे भी नीचे गिर गया है। वे महाराज दशरथके लिए निस्सकोच कह सकती है—

> रुगी अब बाप तुम्हारेहि बाइ।
> करैं उलटी बिधि क्यों कहि जाइ ॥[1]

राम-कथाके ये प्रमुख पात्र है। अन्य साधारण पात्रोकी चर्चा करना ही व्यर्थ है। पात्रोंके चारित्रिक पतनका कारण भी केशवकी हृदयहीनता ही है। वे किसी भी पात्रके साथ सहृदयता नही दिखा सके। यदि उनमे प्रत्येक मानव-स्थितिमे अपनेको डालकर उसके साथ मानसिक तादात्म्य स्थापनकी क्षमता होती तो 'रामचन्द्रिका'के पात्रोकी यह दुर्दशा न होती। शील-निरूपण केशवका लक्ष्य भी नेही था। वे तो अपने छन्द-ज्ञानका प्रदर्शन करना चाहते थे। उन्होने बहुत साफ शब्दोमे कह भी दिया है—

> "रामचन्द्रकी चन्द्रिका वर्णत हौ बहुछन्द।"[2]

वस्तुवर्णन—रामचन्द्रिकामे छन्द-ज्ञान प्रदर्शनकी प्रवृत्तिके बाद दूसरी प्रमुख प्रवृत्ति वस्तु वर्णन की है। किसी वस्तुको लेकर उसके प्रस्तुत रूपके समानान्तर अनेक उत्प्रेक्षायें करते हुए सम्भावित चित्र अंकित करनेकी प्रवृत्ति केशवमे कम नही है। यह प्रवृत्ति उन्हे सस्कृत-साहित्यके परवर्ती काव्यकारोसे विरासतमे मिली

---

१. 'रामचन्द्रिका' नवाँ प्रकाश, छन्द, ८।
२ 'रामचन्द्रिका' पहिला प्रकाश, छन्द २१।

थी। प्रबन्धकाव्यमे वस्तु-वर्णनकी अपनी महत्ता होती है। उससे हमे मानवीय सभ्यताके विकासका ज्ञान प्राप्त होता है। कभी-कभी प्रकृतिकी नैसर्गिक रमणीयताके सुरम्य चित्रो और मानवीय कला-कृतियोके सुष्ठु शब्द-चित्रोको एक साथ उपस्थित करके प्रबन्धकार कवि न केवल अपनी विशाल हृदयताका परिचय देता है वरन् मानवीय सौन्दर्य-चेतनाके ऐतिहासिक विकासकी रूप-रेखा भी प्रस्तुत कर देता है। केशवने भी प्राकृतिक वस्तुओ और मानव निमित कला-कृतियों, दोनोका वर्णन किया है। प्रकृति-वर्णनके अन्तर्गत, 'बारहमास' और षटऋतु' वर्णनके साथ ही प्राकृतिक दृश्यो—सूर्योदय, चन्द्रोदय, गिरि, सरिता, समुद्र, पचवटी, राजबाटिका—और कृत्रिम पर्वत एव सरिताका वर्णन भी केशवने किया है। 'बारहमासा' का वर्णन तो 'आक्षेप' अलकारके बहाने किया गया है। कविने 'शिक्षाक्षेप' अलकारका बारह प्रकारसे वर्णन करते हुए बारहों महीनोंका वर्णन किया है। प्रत्येक महीनेके कामोद्दीपक तत्त्वोको सामने रखते हुए नायिका प्रियतमको विदेश जानेसे रोकती है। प्रकृतिको यहाँ उद्दीपन विभावके रूपमे ही ग्रहण किया गया है। एक उदाहरण अप्रासगिक न होगा।

फूली लतिका ललित तरुनितर फूले तरुवर।
फूलीं सरिता सुभग सरस फूले सब सरवर॥
फूलीं कामिनी कामरूप करि कतनि पूजहि।
शुक सारी-कुल केलि फूलि कोकिल कल कूजहि॥
कहि केशव ऐसी फूल महि शूलन फूल लगाइये।
पिय आप चलन की को कहै चित्त न चैत चलाइये॥[१]

ऋतुओंका वर्णन भी अलकार विशेषको उदाहृत करते हुए किया गया है। ऋतुवर्णन यो भी केशवके अनुसार वर्ण्य अलकारोके अन्तर्गत ही आता है। आलकारिक दृष्टि होनेके कारण ही 'कविप्रिया' और 'रामचन्द्रिका' दोनोंमे ऋतु-वर्णनवाले छन्द प्रायः एक ही है। जो भी हो, ऋतु वर्णन करते हुए केशवका ध्यान ऋतुगत प्राकृतिक सौन्दर्यकी ओर न होकर दूसरी ही ओर था। बसन्त-ऋतुकी सुषमामे उन्हे शिवका समाज दिखाई पड़ता

१. 'कविप्रिया' दशवॉ प्रभाव, छन्द २४।

है ।[१] ग्रीष्मके प्रकाशमे वे शबर-समूह देखते है ।[२] वर्षाके आगमनमे उन्हे कालिका का आगमन भासित होता है ।[३] सुहावनी शरद उन्हे शारदाकी प्रतीति कराती है ।[४] हेमन्तको वे वियोगिनी स्त्रीके रूपमे देखते है ।[५] शिशिरमे वे गणिकाकी कल्पना कर लेते है ।[६] जिस प्रकार योगी समस्त ब्रह्माण्डको अपने पिण्डमे ही देख लेता है उसी प्रकार महाकवि केशव ऋतु अनुकूल परिवर्तित समस्त प्राकृतिक सुषमाको मानवीय सौन्दर्यकी सीमाओमे ही देख लेते है। नर-क्षेत्रके बाहर उन्होने सम्भवतः काव्य-रीति-पालनके लिए ही पैर रखा है । प्रकृतिके मुक्त-विराट् वैभवके प्रति उनके मनमे कोई विशेष राग नही था। उनके 'सूर्योदय' और 'चन्द्रोदय' वर्णनकी भी यही कहानी है। सूर्य-बिम्बमे तो वे एक साथ ही कामदेवका मुख, रावणका मुख, बुद्धिका विकास, विष्णुके चरण, मनुकी नीतिका प्रकाश और भगवान् राम, सभीको देख लेते है ।[७] चन्द्र-बिम्बमे वे नारद भगवान्के दर्शन करते है ।[८] 'रामचन्द्रिका'मे प्रभातकालीन सूर्यका वर्णन करते समय भी केशवदासजीने आलकारिक उक्तियोसे ही काम लिया है। सूर्यके अरुण बिम्बमे उन्हे कभी लक्ष्मणके अनुरागकी लालिमा दिखाई पडती है, कभी चिताकी ज्वाला। कभी वे उसे सिन्दूर-पूरित मगल घटके रूपमे देखते है, कभी माणिक्यकी किरणोसे निर्मित इन्द्र छत्रके रूपमे। यहाँतक तो ठीक था, किन्तु अन्तमे महाकविने भगवान् सूर्यदेवके अरुण बिम्बको कालरूपी कापालिकके हाथमे रक्त-रंजित मुडके रूपमे कल्पित करके पूर्वोल्लिखित सारे रमणीय कल्पना-चित्रोपर वीभत्सताकी कूँची फेर दी है ।[९] अलकारोके प्रति अतिशय मोह होनेके कारण ही

---

१. 'कविप्रिया', सातवाँ प्रभाव, छन्द २८ ।
२ ,, ,, ,, ३० ।
३ ,, ,, ,, ३२ ।
४ ,, ,, ,, ३४ ।
५. ,, ,, , ३६ ।
६. ,, ,, ,, ३८ ।
७ ,, ,, ,, २४ ।
८. ,, ,, ,, २६ ।
९. 'रामचन्द्रिका', पाँचवाँ प्रकाश, छन्द १० ।

केशवदासजीने 'दण्डक बन'की शोभाको प्रलयकालकी वेलाके रूपमे देखा।[१] पचवटीको धूर्जटीके गुणोसे युक्त समझा[२] और 'पम्पासर' मे श्वेत कमलकी छतरीपर भौरोको देखकर ब्रह्माके सिरपर विष्णुके विराजमान होनेकी कल्पना की।[३] जहाँ कही कवि इस प्रकारके चमत्कारिक वर्णनोसे थोडा मुक्त है वहाँ उसने वस्तु परिगणना कराकर ही छुट्टी पाली है। 'रामचन्द्रिका'मे विश्वामित्रके तपोवनका वर्णन इसी प्रणालीपर किया गया है—देखिये—

तरु तालीस तमाल ताल हिंताल मनोहर,
मजुल वजुल लकुच वकुल केर नारियर।
एला ललित लवग सग पुंगी फल साहै।
सारी शुक कुल कलित चित्त कोकल अलि माहै।[४]

'कादम्बरी' के कथामुख भाममे ठीक इसी प्रकारका वणन महाकवि बाणने भी किया है—

"तालतिलकतमालहिन्तालबकुलबहुलै एलालताकुलितनारिकेलिकलापै लोललोध्रघव-लीलवगपल्लवै उल्लसितचूनरेणुपटलै अलिकुलझकारमुखरसहकारै उन्मदकोकिलकुल-कलापकोलाहलिभि उत्फुल्लकेतकीरज "[५]

सत्य यह है कि केशवदासजीने काव्यके वर्ण्य विषयोके चयन और उनके वर्णनमे भी काव्य-रीतिका अक्षरश· पालन किया है। प्राकृतिक वस्तुओकी एक निश्चित सूची सामने रखकर ही वे उनका वर्णन करने बैठे थे।

भूमि-भूषण के अन्तर्गत—

देश, नगर, वन, बाग, गिरि, आश्रम सरिता, ताल,।
रवि, शशि, सागर, भूमि क, भूषण, ऋतु सब काल॥[६]

---

१ रामचन्द्रिका ग्यारहवाँ प्रकाश २०।
२ ,, ,, ,, १८।
३ ,, बारहवाँ ,, ४९।
४. ,, तीसरा ,, १।
५ कादम्बरी, निर्णय सागर प्रेम, पृ० ८३, ८४।
६. कविप्रिया, सॉतवॉ प्रभाव, छन्द १।

कुल गिनी-चुनी ग्यारह वस्तुये वर्णनकी जानी चाहिए। इनमे भी प्रत्येकके वर्णनका एक निश्चित विधान है, जो केशवको पूर्णत मान्य है। उसका उल्लघन वे नही कर सकते थे। उदाहरणके लिए बाग-वर्णनकरनेमे लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल, कलरव, मोर और भवरोका चारो ओर भ्रमित होना वर्णन करना चाहिए—

ललित लता, तरुवर, कुसुम, कोकिल, कलरव मोर।
बरनि बाग अनुराग स्यों, भॅवर भॅवर चहुँ ओर ॥[१]

बस, जहॉ-कही बाग-वर्णन करना हुआ चट उपर्युक्त वस्तुओका नाम लिया और आगे बढे। या यदि रुके तो चमत्कार-प्रदर्शनके लिए प्रकृतिके उपकरणोंमे मानवीय सौन्दर्य या दैवी गुणोका आरोप करने लगे। इसोलिए केशवके प्रकृति-वर्णन मे कही भी प्राकृतिक रमणीयताका नैसर्गिक रूप-चित्र देखनेको नही मिलता। कहा जाता है कि 'वीरसिहदेव चरित' मे प्राकृति-वर्णन उत्तम है। किन्तु सची बात है कि केशवका प्रकृति-वर्णन-विषयक दृष्टिकोण सर्वत्र एक-सा है। रामकी बाटिका और वीरसिह देवकी बाटिकामे कोई अन्तर नही है। रामचद्रिकाके बत्तीसवे प्रकाशमे राम-बाटिकाका वर्णन करते हुए कवि कहता है—

अति मजुल बजुल कुज बिराजैं। बहु गुज निकेतन पुजनि साजै।
नर अघ भए दरसे तरु मोरे। तिनके जनु लोचन हैं इक ठौरे ॥[२]

अब वीरसिंहदेवकी बाटिका पर गौर कीजिए—

सोहत वजुल कुञ्जल कुज। जनु लिपटे गुंजनि के पुज।
काम अघ मुगधन के नैन। एक ठौर जनु राखे मैन[३] ॥

दोनो ही वर्णन आलकारिक है और दोनोमे एक ही प्रकार के शब्दोमे एकही बात कही गई है। कुल मिलाकर केशव के काव्यमे प्रकृति वर्णनकी तीन शैलियॉ लक्षित होती हैं। आलकारिक शैली, वस्तुपरिगणन शैली और मानवीय भावसापेक्ष शैली (उद्दीपक रूपमे प्रकृतिको देखना और उसे मानव-भावनाको जागृत

१ वही, सातवॉ प्रभाव, छन्द, ८।
२ रामचन्द्रिका, बत्तीसवॉ प्रकाश, छन्द १३।
३ वीरसिंहदेव चरित, पृष्ठ २८२, मातृभाषा मदिर, दारागज प्रकाशन।

करनेवाली मानकर उसका वर्णन करना)। जो लोग केशवके काव्यमे प्रकृतिका मुक्त रूप देखना चाहते है या उसका बिम्ब ग्रहण करना चाहते है उन्हे निराश होना पडता है।

प्रकृतिसे इतर वस्तुओके वर्णनमे केशवको अपेक्षाकृत अधिक सफलता मिली है। विशेषत. राजवैभव, सेना-प्रयाण, युद्धस्थल, आदिके वर्णन सजीव और सुन्दर बन पडे है। जनकपुरीमे सीताकी सखियोका वर्णन रमणीय और काव्य-सौष्ठव युक्त है। आलकारिक होने पर भी यह वर्णन स्वभाविक रूप-चित्रणकी सीमाओमे ही आता है। देखिये—

> मुख एक है नत लोक-लोचन लोल लोचन कै हरै।
> जनु जानकी सग सोभिजै शुभ लाज देहहिं को धरै।
> तहँ एक फूलन के बिभूषन एक मोतिन के किए।
> जनु छीरसागर देवता तन छीर-छीटन को छिए।[1]

सम्भावना मूलक होनेके कारण उत्प्रेक्षा अलकार सदैव उक्तिको स्वाभाविकताकी सीमासे अधिक दूर नही ले जाता। इसलिए कथनकी रमणीयता बनी रहती है। नतानना और लोल-लोचना सखीके लिए 'लज्जा' उपमान लाकर कविने बडी ही सुन्दर कल्पनाका परिचय दिया है। इसी प्रकार रामके 'शयनागार' का वर्णन राजकीय मर्यादाके अनुसार वैभव-विलासपूर्ण किया गया है। रामके तिलकोत्सवका भी सागोपाग वर्णन किया गया है। 'वीरसिंहदेवचरित'मे गोपाचलसे नरवरके लिए प्रयाण करती हुई अकबरकी सेनाका बडा ही यथार्थ चित्र अकित हुआ है। देखिये—

> देस देस के राजा घनै। मुगल पठाननि कौ को गनै।
> जहॉ तहॉ गज गाजन घनै। पुरवाई के जनु घन घनै।
> चौपद दुपद कहॉ लौं कहौं। कहें लौं तो अतु न लहौं।
> या रङ्ग एक चलेई जात। एक देखिए पीवत खात।
> उलहत ऊट एक देखिए। लादत साज एक पेखिए।
> एकन तम्बू दियो गिराइ। रखत उठावन एक बनाइ।[2]

---

१ रामचन्द्रिका, छठा प्रकाश, छन्द ६१।

२ वीरसिंहदेवचरित, मातृभाषा मन्दिर, दारागज, प्रयाग, पृष्ठ ५९।

यह मध्य-युगकी अर्द्ध नियन्त्रित सेना है जो अपने रगमे मस्त ज्यो-त्यो चली जा रही है। केशवदासजीने राजवैभव और युद्ध दोनो ही देखे थे। इसलिए उन सभी दृश्योका वर्णन वे अच्छा कर लेते है जिनका सम्बन्ध राजकीय वातावरणसे है। इस प्रकारके वर्णन अत्यधिक आलकारिक, परिस्थिति-प्रतिकूल या अतदीर्घ होनेपर ही अशोभन लगते है। उदाहरणके लिए रामको मनानेके लिए जाते हुए भरतके साथ विशाल वाहिनीका विशद वर्णन केशवदासजीके प्रबल समर्थक लाला भगवानदीनको भी खटका है।[१] यह वर्णन परिस्थिति प्रतिकूल है। इसी प्रकार अयोध्या-वर्णन भी अलकारोकी अतिशयतामे प्रभावहीन हो गया है। यदि केशवने काव्य रीतिका मोह और अलकारोके प्रति एकान्तनिष्ठाका कुछ देरके लिए त्याग कर दिया होता तो उनका वस्तुवर्णन पर्याप्त रुचिकर और हृदयस्पर्शी होता।

सौन्दर्याकन

सौन्दर्याकन—केशवका सौन्दर्याकन भी काव्यकी बँधी हुई परिपाटीके अनुकूल होनेके कारण सहज रमणीयतासे दूर जा पडा है। सौन्दर्यके प्रति उनका दृष्टिकोण बडा स्थूल है। वे बनिताको अलकृता होनेपर ही सुन्दर मानते हैं। पता नहीं कैसे एक बार उनके मुँहसे निकल गया था—

काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अग बिना ही सिंगार के सिंगारे हैं।[२]

महाकविके लिए सौन्दर्याकनका तात्पर्य था 'शिख-नख' वर्णन। 'रामचन्द्रिका' के इकतीसवें प्रकाशमे कविने सीताकी दासियोका शिख-नख वर्णन किया है। इस परम्परामे केश, कबरी, शिरीभूषण, नेत्र, नासिका, ताटक, दन्त, और मुखबास, मुसुकानि और बाणी, अलक, मुख, ग्रीवा भूषण, बाहु, हाथ, करभूषण, कुच, रोमावली, कटि, नितम्ब, जघा, चरण, महावर और कचुकीका वर्णन किया गया है।[३] इस प्रसगमे शरीरके विविध अगों तथा उनसे सम्बन्धित

१ श्रीरामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृष्ठ १५३, १५४।
२. कविप्रिया, नवॉ प्रभाव, छन्द १२।
३. रामचन्द्रिका, इकतीसवॉ प्रकाश।

भूषणोके वर्णनकी परम्परा चल पडी थी। छठवे प्रकाशमे श्रीरामका भी नखशिख वर्णन किया गया है। इसके अन्तर्गत रामके शिरकी पाग, उनकी भौहो, श्रवणो, मुख, दन्तपक्ति, ग्रीवा, बाहु, वक्षस्थल और पगतल्का वर्णन किया गया है। अन्तमे कविने रामके सौन्दर्य-वर्णनमे अपनी असमर्थता प्रकट की है। भला जिसके सौन्दर्यसे सारे ससारकी शोभा है उसके सौन्दर्यका क्या वर्णन किया जाय ? सौन्दर्यके अलौकिक प्रभावका वर्णन केशवने नही किया है। राम और लक्ष्मणका सौन्दर्य देखकर जनकजी इतना ही सोच पाते है कि जान पडता है कि ये दोनो विष्णु और ब्रह्मा है।[१] रामके सौन्दर्यका प्रभाव परशुरामके मनपर भी पडता है किन्तु वे यही सोचकर रह जाते है कि 'जानत हौं बीस बिसे राम भेस काम है'।[२] रामचरितमानसमे रामका सौन्दर्य उनकी शक्ति और शीलसे कम प्रभावशाली नही दिखाया गया है। रामका प्रबल्तम शत्रु भी उन्हे देखकर यही कहता है—

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई।
देखी नहिं असि सुन्दरताई ॥[३]

सौन्दर्यका यह शत्रुजयी प्रभाव केशवके काव्यमे दुर्लभ है। स्त्रियोकी छवि अकित करनेमे केशवने अधिक रुचि दिखाई है। यह चित्रण भी परम्परागत मान्यताओको उदाहृत करनेके लिए आल्कारिक प्रणालीपर किया गया है। इन स्वय स्वीकृत सीमाओमे भी कही-कहो केशवने कुछ अच्छे चित्र प्रस्तुत किये है—

गोरे गात, पातरी, न लोचन समात मुख,
उर उरजातन को बात अवरोहिये।
हँसति कहत बात, फूलसे झरत जात,
ओठ अवदात राती देख मन मोहिये।
स्यामल कपूर-धूर ओढनी ओढे उडि,
धूरि ऐसी लागी 'केशा' उपमा न टोहिये।

१ 'रामचन्द्रिका', पाँचवाँ प्रकाश, छन्द २८।
२ 'रामचन्द्रिका', सातवाँ प्रकाश, छन्द १४।
३ 'मानस', अरण्यकाण्ड, पृष्ठ ६१९, गीताप्रेस सस्करण।

काम ही को दुरुही सी काके कुल उलहीसु,
लहलहीललिन लता-सा लोल सोहिये ।[१]

तात्पर्य यह कि सौन्दर्यकी अलौकिक, भुवनमोहिनी, एव रहस्यात्मक सत्ताकी भावना केशवदास नही कर सके है। नख-शिख वर्णनके माध्यमसे जो सौन्दर्याकन उन्होने किया है वह परम्परा विहित एव आलकारिक है। उसपर सामन्तीय जीवनकी रगीनीकी छाप है। इस दृष्टिसे भी वे अपनी सीमाओसे ऊपर नही उठ सके है।

संवाद—केशवके सवादोकी बडी प्रशसा की जाती है। रामचन्द्रिकामें 'सुमति-विमतिसंवाद', 'रावण-बाणासुर-सवाद', 'राम-परशुराम-सवाद', 'सूर्पणखा-राम-सवाद', 'सीता रावण-सवाद', 'सीता-हनुमान-सवाद', और 'रावण-अगद-सवाद' प्रमुख माने जा सकते है। 'विज्ञानगीता'मे भी 'अहकार-दभ सवाद', 'विवेक-जीवसवाद', 'कलह रति-काम-सवाद' आदि कई सवाद है। 'वीरसिह-देवचरित' और 'जहाँगीर जसचन्द्रिका' मे भी सवादोकी कमी नही है। महाकविकी प्रसिद्धि मुख्यतः 'रामचन्द्रिका' के सवादोके ही कारण है। रामचन्द्रिका मे 'सुमति-विमति सवाद' 'प्रसन्नराघव' नाटकके उसी प्रसगका छायानुवाद है। 'हनुमान सीता सवाद', 'हनुमन्नाटक' के आधारपर प्रस्तुत किया गया है। 'रावण-अगद-सवाद' भी बहुत कुछ 'हनुमन्नाटक'के आधारपर ही प्रस्तुत किया गया है। कई छन्द तो 'हनुमन्नाटक'के उसी भावके छन्दोके अनुवाद है। 'रावण-बाणासुर-संवाद' भी 'प्रसन्नराघव' नाटकके आधारपर लिखा गया है। 'परशुराम और राम-सवाद' पर जगह-जगह 'प्रसन्न-राघव' नाटकी छाया है। ऐसी स्थितिमें केशवकी सफलता सवाद-लेखनमे नही अनुवाद प्रस्तवनमे मानी जा सकती है। इन सवादोकी प्रशसाका कारण यह है कि केशवके असगत आलंकारिक एव पाडित्यपूर्ण वर्णनोसे ऊबा हुआ पाठक इन सवादोको पढते समय थोडा रुचि-परिवर्तन का अवसर पा जाता है। वह भूल जाता है कि ये अनुवाद है। ये सवाद उसे मौलिकसे प्रतीत होते है। यह सत्य है कि इन सवादोसे केशवकी वाक्चातुरी, व्यवहार-कुशलता, व्यग्य-

१ 'कविप्रिया' नवॉ प्रभाव, पृष्ठ १४२।

शक्ति और भाषाधिकारकी सूचना मिलती है। कथा-क्रममे नाटकीयताका समावेश भी इन सवादोके माध्यमसे हो जाता है। सम्भवत' इन्ही कारणोसे केशवके सवाद अपेक्षाकृत अधिक प्रसिद्ध है अन्यथा इनमे मौलिक अश बहुत ही कम हैं।

काव्य-शैली—शैलीकी दृष्टिसे देखा जाय तो केशवने प्रबन्ध और मुक्तक दोनो प्रकारकी शैलियोमे काव्य-रचना की है। 'रामचन्द्रिका', विज्ञानगीता', 'वीरसिंहदेवचरित', 'रतनबावनी' और 'जहाँगीरजसचन्द्रिका' प्रबन्ध शैलीमे लिखे गये ग्रन्थ हैं। 'कविप्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'नखशिख' मुक्तक रचनाये है। ध्यान पूर्वक देखा जाय तो न तो केशव के प्रबन्ध ग्रन्थ पूर्णत' प्रबन्ध कोटिमे आते है और न मुक्तक ग्रन्थ मुक्तक कोटि मे। जिन्हे मुक्तक कहा गया है उनमे भी आद्योपान्त एक निश्चित योजना कार्य करती रही है। प्रत्येक छन्द किसी-न-किसी लक्षणका अनिवार्य उदाहरण बनकर आया है। अतः 'कवि-प्रिया', 'रसिकप्रिया' और 'नखशिख' को पूर्णत मुक्तक कोटिमे नहीं रख सकते। इनमे भी एक प्रकारका बन्ध है। 'गाथा सतसई' या 'बिहारी सतसई' जिस कोटिके मुक्तक है उस कोटिमे इन शास्त्रीय बन्धोको नही रखा जा सकता। विद्वानोंने इन्हे 'लक्षण-निष्ठ मुक्तक' कहा है।[१] यह सज्ञा अधिक उचित है। ये मुक्तक इसीलिए है कि कथा-प्रबन्ध नही है। दूसरी ओर जिन ग्रन्थोंको प्रबन्ध कहा गया है वे भी प्राय. सवादात्मक शैलीमे लिखे गए हैं। 'बीरसिंहदेवचरित' दान, लोभ और बिन्ध्यवासिनी देवीके संवाद रूपमे लिखा गया है। तुलनात्मक दृष्टिसे देखा जाय तो केशवकी प्रबन्ध-रचनाओमे यही रचना ऐसी है जिसमे कथा-सम्बन्ध-निर्वाह उचित रीतिसे हुआ है। इसे चरित-ग्रथ कह सकते है। 'विज्ञानगीता' एक प्रकारसे नाट्य-रूपक ग्रथ है। यह भी 'जीव विवेक', 'श्रद्धा-शान्ति', 'बलि-शुक्र' आदि सवादोसे भरा है। तेरहवे प्रभावके बाद तो शेष पूरे ग्रथमे स्फुट कथाओके द्वारा वैराग्य, चित्त-शुद्धि, ज्ञान, अज्ञान, भक्ति आदि का उपदेश दिया गया है। 'जहाँगीर-जस-चन्द्रिका' भी उद्यम और भाग्यके संवाद रूपमें रची गई है। इसका अन्तिम भाग तो

१. हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास, पृष्ठ २१।

जहाँगीरकी राजधानी आगरा, जहाँगीरकी सभा, सभासद और अधीनस्थ राजाओके वर्णनसे भरा पडा है। कथा-प्रवाह मन्द पड गया है। 'रतनबावनी' ओडछा नरेश मधुकरशाहके पुत्र रतनसेनकी प्रशसामे लिखी गई है। इसमे रतनसेनका चरित-वर्णन मुख्य न होकर उनके रूप, गुण, बल, वीर्यकी प्रशसा और उनके जीवनकी महत्त्वपूर्ण घटनाओका उल्लेख ही प्रधान है। अतः इन सभी ग्रन्थोको सापेक्षिक दृष्टिसे ही प्रबन्धकाव्यकी सज्ञा दी गई है। जहाँतक 'रामचन्द्रिका'का प्रश्न है, वह तो स्वय कविके शब्दोमे छन्द-प्रबन्ध है। उसमे कविका लक्ष्य छन्द-वैविध्य-प्रदर्शन है। कविकी वर्णन-विस्तारप्रियता, असम्बद्ध स्थलोकी योजना और अनियमित कथा-प्रवाहके कारण यह ग्रन्थ और सब कुछ हो सकता है, प्रबन्ध काव्य नही। न तो इसमे पात्रोके शील-निरूपण पर विशेष ध्यान दिया गया है और न कथा-प्रवाहक्रममे आनेवाले हृदय-स्पर्शी प्रसगोके सवेदनात्मक वर्णन मे रुचि दिखाई गई है। इसालए आचार्य शुक्लको कहना पडा था कि—"उनकी रामचन्द्रिका अलग-अलग लिखे हुए वर्णनोका सग्रह जान पडती है।"[१] यदि महाकविने केवल मुक्तक-काव्य रचनाकी होती तो उन्हे कवि रूपमे अधिक सफलता प्राप्त होती। पण्डित-मण्डलीको वे केवल आतकित ही नहो आकर्षितभी कर सके होते।

अलकार-योजना—केशवने अपने काव्यको अलकृत करनेकी भरपूर चेष्टा की है। वे अलकार-रहित काव्यको नग्न मानते थे।[२] आचार्य दण्डीकी भाँति वे भी अलकारोको 'काव्यकी शोभा वृद्धि करनेवाले धर्म' मानते थे। इसीलिए उनकी कविता अलकारोके बाझसे दब गई है। 'कविप्रिया' तो अलकारका लक्षण ग्रन्थ है ही अतः यदि उसे छोड दे तो भी केशवकी कदाचित् ही कोई रचना हो जिसमे अलकारोका प्रयोग बाहुल्य न हो। 'रसिकप्रिया' मे भी उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, प्रतीप, विभावना, अपन्हुति, अतिशयोक्ति आदि अलकारोका प्रचुर प्रयोग हुआ है। यदि केशवने अलकारोको रसका उपकारक मानकर उनका

---

१ हिन्दी साहित्यका इतिहास, रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ २१०।

२ छन्द विरोधी पगु गुनि नगन जो भूषणहीन।
मृतक कहावै अरथ विन केशव सुनहु प्रवीन ॥

—कविप्रिया, तीसरा प्रभाव, छन्द ८।

प्रयोग किया होता तो बात ही दूसरी होती। 'रामचन्द्रिका'मे तो कदाचित् ही ऐसा कोई छन्द हो जिसमे एकसे अधिक अलकार न हो। उत्प्रेक्षा, रूपक, श्लेष, परिसख्या, अतिशयोक्ति, विभावना, सन्देह, विरोधाभास, उपमा, अनुप्रास, वक्रोक्ति, स्वभावोक्ति आदि केशवके प्रिय अलकार है। केशवके न चाहते हुए भी 'रसिकप्रिया'में प्रयुक्त अलकार रसके उपकारक बन गए है। इस ग्रन्थकी रचनामे केशवका ध्यान शृङ्गार रसके अगोकी योजनाकी ओर था अतः अलकारों का प्रयोग परिस्थितिके अनुकूल हुआ है। 'उत्प्रेक्षा'का एक सुन्दर उदाहरण देखिये—

> हरि राधिका मान सरोवर के तट ठाढ़े री हाथ सों हाथ छिये।
> प्रिय के सिर पाग प्रिया मुकताळर, राजत माल दुहून हिये।
> कटि केशव काछनी श्वेत कसे सबही तन चदन चित्र किये।
> निकसे जनु क्षार-समुद्रहिं ते सँग श्रीपति मानहुँ श्री ही लिये।[1]

'रामचन्द्रिका'मे अल्ङ्कारोकी योजनामे कई प्रकारके अनौचित्य आ गये हैं। एक तो अलकारोका प्रयोग करते समय कविने पात्र, परिस्थिति और कथा-क्रमका ध्यान नही रखा है। सीता और राम वन-पथपर जा रहे हैं। मार्गमें ग्रामीण स्त्रियाँ सीताजीको देखकर उनके मुखका वर्णन करने लगती है और श्लेष, उपमा, अनन्वय, विरोधाभास आदि अलकारोकी झडी लगा देती है। ग्रमीण स्त्रियोके सरल हृदयके मार्मिक उद्‌गारोको ओर ध्यान न देकर केशवने उन्हे अलकारशास्त्रकी पण्डिताओके रूपमे उपस्थित कर दिया है। इसी प्रकार रावण-विजयके उपरान्त जब राम सीताको शीघ्र देखना चाहते है—'हमको तुम बेगि दिखावहु सीता'—तो कविने कुल दो छन्दोंमे हनुमानका सीताके पास जाना, राम-विजयका समाचार देना, सीताका अलकृत होकर चलनेके लिये उद्यत होना और ब्राह्मणों तथा देवताओ द्वारा उनकी विरुदावलीका गान करना, दिखाकर बिना किसी प्रस्तावके सीताजीको अग्निकी गोदमे आसीन करा दिया है और आठ छन्दोमे उपमा, उत्प्रेक्षा और सन्देह अलकारोंकी झडी लगा दी है। लगता है रामको सीतासे मिलनेकी उतनी उत्कण्ठा न थी जितनी केशवदासजीको

---

१ 'रसिकप्रिया', पाँचवाँ प्रकाश, छन्द ३५।

सीताजीको अग्निदेवकी गोदमे बिठाकर अलकारोकी (विशेषत. सन्देह अलकार की) झडी लगाने की ।

दूसरी गडबडी उपमान-ग्रहण करनेमे की गई है। इसी गडबडीके कारण रामको 'उलूक' और 'ठग' बनना पडा है—

वासर की सपति उलूक ज्यों न चितवत,
चकवा ज्यों चद चितै चौगुनो चॅपन हैं[१] ।

× × ×

किधौ कोऊ **ठग हौ** ठगौरी लीन्हें किधौ तुम
हर हरि श्री हौ सिवा चाहत फिरत हौ ।[२]

भगवान् सूर्यदेवको रक्तरञ्जित नरमुण्ड बनना पडा है—

कै **शोणित कलित कपाल** यह किल कापालिक काल को ।

ब्रह्माके सिरपर विष्णुको बैठना पडा है—

केशव केशवराय मनो **कमलासन के सिर** ऊपर सोहै ।[३]

चन्द्रमाको अगदका बाप बना दिया गया है—

अंगद को पितु सो सुनिए जू । सोहत तारहिं सग लिए जू ।[४]

और 'रसिकप्रिया'मे बेचारे कृष्णको 'घुघ्घू' बनना पडा है—

घूघू ज्यो घुसन प्रात मेरे गृह आये हौ' ।[५]

तीसरा अनौचित्य अकारण शब्द-जाल-गुम्फन है जो कोरे चमत्कार-प्रदर्शनकी प्रवृत्तिके कारण आ गया है। इस प्रवृत्तिने दुरूह कल्पना और पाण्डित्य-प्रदर्शनकी प्रवृत्तिको उभाडा है । अयोध्या वर्णनमे मुद्रालकारकी योजना कोरे चमत्कार-प्रदर्शनके लिए ही की गई है—देखिए—

---

१. रामचन्द्रिका, पृष्ठ, २३४ ।

२ वही, पृष्ठ, १४२ ।

३ वही, बारहॉ प्रकाश, पृष्ठ, १९४ ।

४ रामचन्द्रिका, तीसवॉ प्रकाश, पृष्ठ १५६, छन्द, ४२ ।

५ रसिकप्रिया सातवॉं प्रकाश, छन्द, १७ ।

कवि कुल विद्याधर, सकल कलाधर, राजराज वर वेश बने।
गणपति सुखदायक, पशुपति लायक, सूर सहायक कौन गने।
सेनापति बुधजन, मगल गुरुगण, धर्मराज मन बुद्धि घनी।
बहु शुभ मनसाकर, करुणामय अरु सुरतरगिनी शोभ सनी।[1]

इस छन्दमे देवपुरीकी समस्त वस्तुओकी सूचनाके अतिरिक्त और कुछ नही है।

उपर्युक्त अनौचित्योके होते हुए भी कही-कही केशवकी अलकार-योजना बडी ही रमणीय है और काव्य-शोभा-वृद्धिमे सहायक हुई है। कुछ सुन्दर उदाहरण नीचे प्रस्तुत किये जाते है—

रूपक— चढयो गगन तरु धाय, दिनकर-वानर अरुन मुख।
कीन्हों झुकि झहराय, सकल तारका-कुसुम बिन[2]।

उत्प्रेक्षा— धरे एक बेणी मिली मैल सारी।
मृणाली मना पक तें काढि डारी।[3]

सहोक्ति— प्रति अगन के सग ही दिन नासै।
निशि सों मिलि बाढति दोह उसासै।[4]

उपमा— भरि भरि रीति जाति, रीनि रीति भरै पुनि।
रहट घरी सी आँख साहि अकबर की।[5]

परिसख्या— मूलन ही की जहाँ अधोगति केशव गाइय।
होम हुताशन धूम नगर एकै मलिनाइय॥[6]

विभावना— काहे के सिंगार कै बिगारति है मेरी आली,
तेरे अग विना ही सिगार के सिंगारे हैं।[7]

---

१ 'रामचन्द्रिका', पहिला प्रकाश, पृष्ठ १८।
२ वही, पाँचवाँ प्रकाश छन्द १३।
३ वही, तेरहवाँ प्रकाश, छन्द ५३।
४ वही, चौदहवाँ प्रकाश, छन्द २८।
५ वीरसिहदेवचरित, पृष्ठ ९७।
६ 'रामचन्द्रिका', पहिला प्रकाश, पृष्ठ २१।
७ कविप्रिया, नवाँ प्रभाव, छन्द, १२।

प्रतीप— पून्योई को पूरन पै प्रतिदिन दूनो-दूनो,
क्षण-क्षण क्षीण होत छीलर को जल सों।
चन्द्रसो जो वरणत रामचन्द्र की दुहाई,
सोई मतिमद कवि केशव कुशल सों।[1]

रूपकातिशयोक्ति—[विरुद्ध रूपक]

सोने की एक लता तुलसी बन क्यों बरनो सुनि बुद्धि सकै छ्वै।
'केसवदास' मनाज मनोहर ताहि फले फल श्री फल से ब्वै।
फूलि सराज रह्यो तिन ऊपर, रूप निरूपत चित्त चलै च्वै।
तापर एक सुआ सुभ तापर खेलत बालक खजन के द्वै।[2]

उपर्युक्त उदाहरणोसे स्पष्ट है कि केशवमे कल्पना-शक्तिकी कमी नही थी। विविध प्रसगोमे वस्तु-वर्णन करते समय उन्होने जो अनेक उत्प्रेक्षाये की है, किसी एक प्रस्तुतके लिए उन्होने जा अनेक अप्रस्तुत चित्र उपस्थित किये है, वे उनकी उर्वर कल्पना-शक्तिके परिचायक है। उनमे सूझ है, कल्पना वेभव है, काव्य-रीतिका सम्यक् ज्ञान है, वर्णनकी क्षमता है आर सस्कृतकी महत्त्वपूर्ण काव्य कृतियोका अध्ययन है किन्तु परिस्थितिके अनुकूल ओचित्यका ध्यान रखते हुए वर्ण्य-विषयके स्वरूपके अनुसार अलकार-योजना करनेकी ओर उन्होने ध्यान ही नही दिया है। इसीलिए कही वे कोरे चमत्कारवादी, कही शुष्क पण्डित, कही रूढिवादी और कही असगत अलकार-विधान करनेवाले प्रतीत होते है। राजसी तडक-भडक, वैभव विलासके बीच रुद्ध मन स्थितिपूर्ण जीवन बितानेके कारण भी वे असगत अलकरण और सकीर्ण मानदण्डको त्यागनेमे सर्वथा असमर्थ रहे है। जहाँ कही वे अपनेको भूल गये है वहाँ उनके अलकार काव्यकी रमणीयता-वृद्धिमे निश्चय ही सहायक हुए है।

छन्द-योजना—छन्द-योजनाकी दृष्टिसे केशवदासका स्थान हिन्दी-साहित्यमे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है किन्तु यह महत्ता वैविध्यकी दृष्टिसे ही है। व्यापक दृष्टिसे विचार करनेपर अभिव्यक्ति मात्रका छन्द या सीमा-रेखासे अनिवार्य सम्बन्ध है।

---

१ 'रामचन्द्रिका', नवाँ प्रकाश, छन्द, ४१।
२ कविप्रिया, तेरहवाँ प्रभाव, छन्द १८।

इसलिए छन्दोके स्वरूपमे परिवर्तन हो सकता है किन्तु उनके नितान्त अभाव-मे भावानुभूतिकी अभिव्यक्ति असम्भव हो जायगी। केशवदासजी छन्द-विरोधी रचनाको पगु मानते है।[1] उन्होने अपनी रचनाका पगु होनेसे बचानेकी खूब चेष्टा की है। छन्दोकी विविध वीथियोमे खूब दौडनेके कारण कविता-कामिनीके पद इतने पुष्ट हो गये है कि उनकी तुलनामे शेप अग दुर्बल प्रतीत होते है। इन दुर्बल अगोमे अलकारोको गूँथकर कविता-कामिनीका कार्टून खडा किया गया है जो पाठकोको आतकित करनेका अच्छा साधन हो गया है। महाकविने छन्दोके प्रयोगातिशयको भी पाण्डित्यका ही एक अग मान लिया था। इसलिए उन्होने 'रामचन्द्रिका'मे चौबीस मात्रिक तथा अट्ठावन वर्णिक छन्दोका प्रयोग किया है। छन्दोका यह वैविध्य 'विज्ञानगीता'मे भी देखा जा सकता है किन्तु इसमे प्रयुक्त प्रायः सभी छन्द रामचन्द्रिकामे आ गए है। 'मरहट्टा' और 'तोमर' ये दो मात्रिक छन्द तथा 'दोधक', 'तोटक', 'हरिलीला' और 'नलिनी' ये चार वर्णिक छन्द इसमे नवीन प्रयुक्त हुए है। शेष कृतियोमे सब मिलाकर मात्रिक छन्दोमे 'चौपही' ओर वर्णिक छन्दोमे 'प्रमानिका' तथा 'कवित्त' ऐसे छन्द है जिनका प्रयोग 'रामचन्द्रिका'मे नही किया गया है। इस प्रकार कुल मिलाकर इक्यानबे प्रकारके छन्दोका प्रयोग महाकविने किया है। ध्यान रखना होगा कि छन्दोके प्रयोगमे वैविध्यही काव्य-कलाका द्योतक नही है। वर्ण्य-विषयके अनुकूल होना भी छन्दके लिए आवश्यक हो जाता है। आख्यानक काव्योमे कथा-प्रवाहको निरन्तरताके कारण दोहा और चौपाई छन्द अधिक समीचीन होते है। 'वीरसिंहदेवचरित'मे केशव ने इन्हीं छन्दोका प्रयोग अधिक किया है। लक्षण ओर उदाहरण प्रस्तुत करने वाले काव्योमे दोहा, कवित्त और सवैयाका प्रयोग अधिक किया जाता रहा है। 'रसिक-प्रिया'मे केशवने इन्ही छन्दोका प्रयोग किया है। वीररसात्मक एवं ओजपूर्ण काव्योके लिए 'छप्पय' छन्द अधिक अनुकूल पडता है। 'रतनबावनी' मे केशवने इसीका प्रयोग किया है। 'कविप्रिया' मे अधिक छन्दोके प्रयोगकी प्रवृत्ति है किन्तु इसमे वर्ण्य विषयोकी विविधताके कारण यह प्रयोग अनु-

१ 'छन्द विरोधी पगु गुनि'

—कविप्रिया, तीसरा प्रभाव, छन्द ८।

चित नही प्रतीत होता । 'विज्ञानगीतामे' छन्द-वैविध्यकी प्रवृत्ति पूर्णतः प्रकट है । आध्यात्मिक विषयोका प्रतिपादन दोहे, सोरठे जैसे छोटे-छोटे छन्दोमे अधिक उचित ढगसे किया जा सकता है । सन्त कवियोकी साखियाँ और तुलसीकी 'दोहावली' इसके प्रमाण है । 'विज्ञान-गीता' मे यह प्रयोग-वैविध्य खटकता है । 'रामचन्द्रिका' मे केशवकी छन्द-प्रयोग-वैविध्यकी प्रवृत्ति खुलकर प्रकट हुई है । प्रबन्ध-काव्योमे कथा-प्रवाहके नैरन्तर्यका ध्यान रखना आवश्यक है । क्षण-क्षण छन्द-परिवर्तन ऐसी कृतियोमे अनुचित ही नही अक्षम्य है । छन्द-ज्ञान का प्रदर्शन पृथक् पिंगल ग्रन्थ लिखकर किया जा सकता है । 'रामचन्द्रिका'के प्रबन्ध विधानमे यह छन्द-परिवर्तनकी प्रवृत्ति घातक सिद्ध हुई है ।

केशवने दो छन्दोको मिलाकर छन्द-प्रयोगमे चमत्कार लानेकी चेष्टा भी की है । कही कही उन्होने एक बातके लिए डेढ छन्दोका प्रयोग करके नवीनता लानेकी चेष्टा की है । यह प्रेरणा उन्हे सस्कृतके कवियोसे मिली थी । यह सब होते हुए भी पण्डितोकी सम्मतिमे केशवके छन्द कही-कही लक्षणोके अनुकूल ठीक नही उतरते ।[१] कही लक्षणके अनुकूल होनेपर भी उनका प्रवाह ठीक नही जान पडता है और कही 'यति' ठीक स्थानपर नही होती । जिस कविने सैकडो प्रकारके छन्दोका प्रयोग किया हो उसमें इस प्रकारके दोषोका आ जाना अस्वाभाविक नही है । सबसे अधिक गडबडी, प्रबन्ध-काव्यकी कथा-धारामे व्याघात डालकर छन्द-प्रयोग-वैविध्यके प्रदर्शनके कारण हुई है । 'रामचन्द्रिका'के प्रारम्भमे ही एकाक्षरसे लेकर अष्टाक्षर तकके छन्दोका प्रयोग एक तमाशा खडा कर देना है । इसीलिए लाला भगवानदीनको तीन छन्दोको एकमे बाँधकर अन्वय करना पडा है । छन्द इतना छोटा हो कि उसमे बात ही न कही जा सके तो उसके प्रयोगसे क्या लाभ ? देखिये—

सी, धी । री, घी ॥
राम, नाम । सत्य, धाम ॥
और नाम । कौन, काम ॥[२]

---

१ 'आचार्य केशवदास' डॉ० हीरालाल दीक्षित, पृ० २१२ ।

२ 'रामचन्द्रिका' पहिला प्रकाश, छन्द ८, ९, १० ।

बोलै न बाल बुलावन हूँ, नख-रेख लिखै भव प्रेम परेखो।
आपने हाथ विलाक विलोक, कहो तब केशव बुद्धि विशेखो।
छोटी बडी विधि रेख लिखी युग आयु की रेख सु कौन सुलेखा।
प्रेम तें बाल सह्यो न परौ, अकुलाई कही पिय कैसी है देखो।[१]

केशव द्वरा प्रयुक्त भाषा प्रौढ और परिमार्जित नही है। उसे बिहारी या घनानन्दकी भाषाके समान टकसाली भाषा नही कह सकते। सम्भवतः उन्होने परिमार्जनकी ओर ध्यान ही नही दिया। अनेक छन्दोके प्रयोगके कारण भी उनकी भाषा सुगठित नही हो सकी। कोई भी व्यक्ति अनेक छन्दोकी जानकारी रख सकता है किन्तु सभीपर अधिकार नही रख सकता। जब कविका ध्यान छन्द गढनेकी ओर लगा रहेगा तो वह भाषाकी कसावटपर कैसे ध्यान देगा ?

पदरचना-वैशिष्ट्य पर केशवने अवश्य ध्यान दिया है। वे स्वय मानते थे कि कवि प्रत्येक पद न्यस्त करते समय खूब सोच-विचार लेता है—

चरण धरत चिन्ता करत नींद न भावत शोर।
सुवरण को सोधत फिरत कवि, व्यभिचारी चोर ॥[२]

महाकविने पद-रचना करते समय सोच-विचार तो किया किन्तु वह इसीलिए कि चमत्कार कैसे उत्पन्न किया जाय। सुन्दर वर्णोकी योजनासे माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणोकी प्रतिष्ठा करके भावगत सौन्दर्य-वृद्धि करना उनका लक्ष्य नही था। 'रसिकप्रिया' मे माधुर्य गुण भली प्रकार इसलिए आ सका है कि इस ग्रन्थमे कविकी दृष्टि शृङ्गार रस और उसके अगो पर रही है और शृगाररसकी निष्पत्ति माधुर्य गुणपर ही आवृत है।[३] 'रामचन्द्रिका' के तीसवे प्रकाशमे प्रभात-वर्णन करते समय भी केशवने बडा ही प्रवाहपूर्ण एव सुन्दर पद-विन्यास

१. 'रसिकप्रिया' तीसरा प्रकाश, छन्द ३१।
२. 'कविप्रिया', तीसरा प्रभाव, छन्द ४।
३ 'सभोगे करुणे विप्रलम्भे शान्तेऽधिक क्रमात्'
[माधुर्य गुण सभोग शृगार, करुण रस, विप्रलम्भ शृगार और शान्तरसमें अनुगत रहा करता है और इनमें उत्तरोत्तर मधुर लगा करता है] —सा० दर्प०, अष्टम परिच्छेद।

किया है। 'रतनबावनी' मे ओजगुण-युक्त पदावलीका उचित प्रयोग किया गया है। यदि वे चाहते तो कोमलकान्तपदावलीमे बडी ही सरस तथा ओजपूर्ण पदोमे वीरदर्प पूर्ण कविता कर सकते थे। किन्तु छन्द-परिवर्त्तन तथा पाडित्य-प्रदर्शनकी प्रवृत्तिने उनको इस क्षमताको उभरने ही नहीं दिया। कहा गया है कि 'रामचद्रिका' के कुछ छन्दो और 'कविप्रिया' के दो-चार छन्दोको छोडकर महाकविकी शेष सभी रचनाओमे प्रसाद गुण है।[1] बात ऐसी नही है। सरल शब्दोके प्रयोगसे काव्यमे प्रसाद गुण नही आता। ऋजुता और सरलताकी उपलब्धि आसान नही है। सरल शब्दोमे अर्थ गाम्भीर्य भी होना चाहिए। सरल शब्दोमे सरस रचना करना कठिन है। केशवने जहाँ सुगम शब्दोका प्रयोग किया है वहाँ भी बात समझनेमे मानसिक तनावका अनुभव होता है। 'प्रसाद' भी एक गुण है जो मात्र सरल रचनासे विशिष्ट वस्तु है। प्रसाद गुण वहाँ होता है जहाँ शुष्क ईंधनमे अग्निकी भाँति और स्वच्छ वस्त्रादिमे जलकी भाँति सहृदय के हृदयकी निर्मलता शीघ्र ही (काव्य-पाठ करते ही) चित्तमे व्याप्त हो जाती है।[2]

केशवकी शब्दावली सूर और तुलसीको छोडकर हिन्दीके अन्य सभी कवियोसे अधिक समृद्ध है। उन्होने सस्कृत, हिन्दी (ब्रज और बुन्देलखडी) तथा यथावसर अरबी-फारसीके शब्दोका भी प्रयोग किया है। बुन्देलखण्डी शब्दोको तो एक अच्छी सख्या इनकी कृतियोमे उपलब्ध हो जाती है। गडुआ (तकिया), खारक (छोहारा), चोली (पिटारी), घोरिला (खूँटी), बरॅगा (कडी), दुगई, (दालान), कुची (कुजा), गौरमदाइन (इन्द्रधनुष) आदि शब्द बुन्देलखडी है। सस्कृतके कुछ अप्रचलित शब्दों का प्रयोग भी उन्होने किया है। कहीं कहीं ब्रजभाषाके भी अप्रचलित शब्दोको काव्यमे चलानेकी चेष्टा की है। लॉच (रिश्वत), ऐलौ (आड), नारी (समूह) आदि शब्द इसी प्रकारके है। तात्पर्य यह कि केशवकी भाषा शब्दोकी दृष्टिसे द्ररिद्र नही है। केशवकी भाषामे व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियॉ भी है। कविने स्त्रीलिगके साथ पुल्लिग क्रिया और पुल्लिगके साथ स्त्रीलिंग क्रियाका प्रयोग भी किया है। कही-कही विभक्तियोके प्रयोगमे भी गडबडी है।

---

१ आचार्य केशवदास, पृ० १९९।

२ काव्यप्रकाश, मम्मटाचार्य, अष्टम उल्लास, श्लोक ७०।

कुछ तो उनके संस्कृत भाषाके संस्कारके कारण ऐसा हुआ है और कुछ संयमके अभावके कारण। 'देवता' शब्दका प्रयोग उन्होंने बराबर (संस्कृतकी परम्पराके अनुसार) स्त्रीलिंगमें किया है।

अभिव्यक्तिको सभी प्रकारसे पूर्ण बनानेका प्रयत्न काव्य-साधनाका चरम लक्ष्य है। सारी शब्द साधना इसीलिए की जाती है। इसके लिए अध्ययन, अनुभव, प्रतिभा आदि सभीकी आवश्यकता पड़ती है। केशवकी भाषामें अभिव्यक्तिकी अपूर्णता भी खटकती है। शास्त्रोंमें दोषोंकी गणना एक प्रकारसे अभिव्यक्तिकी अपूर्णताकी ही गणना है। कहना न होगा कि केशवमें **संदिग्धत्व** (जहाँ कविके वांछित अर्थका पता न चले) **न्यूनपदत्व** (जहाँ शब्दोंकी न्यूनताके कारण अभिप्रेत अर्थ न प्रकट हो सके) **अक्रमत्व** (जहाँ शब्द-प्रयोग क्रमसे न हो) **अधिकपदत्व** (जहाँ आवश्यकतासे अधिक शब्द आ जायँ) **निहतार्थ** (जहाँ शब्द-का प्रयोग अप्रचलित अर्थमें किया जाय) **समाप्तपुनरात्तत्व** (जहाँ वाक्य समाप्त करके विशेषण आदिके द्वारा उसे पुनः उठा लिया जाय) आदि सभी दोष आ गये है।[1] इनमेंसे कुछ पद-दोष है और कुछ वाक्य दोष। इनके अतिरिक्त अर्थ-दोष और रस-दोष भी महाकविके काव्यमें आ गये है।

शब्द-शक्तियाँ भी अभिव्यक्तिको पूर्ण बनाती है। केशवने लाक्षणिक प्रयोग बहुत कम किये है। इसीलिए उनके काव्यमें लक्षणामूला व्यञ्जनाका भी अभाव है। कहीं-कहीं अभिधामूला व्यञ्जनाका सुन्दर प्रयोग हुआ है—रावण हनुमानजी-से प्रश्न करता है कि रे बन्दर! तू बन्धनमें कैसे पड़ा? इसपर वे उत्तर देते है—

कैसे बँधायो? जु सुन्दरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखो।[2]

अर्थात् तुम्हारी सोती हुई सुन्दरियोंको नेत्रोंसे मैंने स्पर्श किया था उसी पापके कारण बँध गया। संकेत (व्यंग्य) यह है कि तूने तो पर स्त्रीका अपहरण किया है तो तुम्हारी क्या गति होगी। अंगद-रावण-संवादमें भी इस प्रकारकी व्यञ्जना मिलती है।

---

१ उपर्युक्त दोषोंके उद्धरण पं० कृष्णशंकर शुक्लके 'केशवकी काव्य-कला'में पृष्ठ १३०, १३१ पर देखिये।

२ रामचन्द्रिका, चौदहवाँ प्रकाश, छन्द ९।

मुहावरे और लोकोक्तियाँ भी वाक्यको प्रभावशाली बनाती हैं। मुहावरे भी एक प्रकारके लाक्षणिक प्रयोग ही है जो धीरे धीरे रूढ हो गये हैं। लोकोक्तियाँ पूरे प्रसगको रजित करके कथनमे जान ला देती है। इनका प्रयोग उचित प्रसगमे ही जँचता है। केशवदासजीने इन दोनोका प्रयोग किया है किन्तु उनकी लोकोक्तियाँ अधिक सजीव है। उदाहरणके लिए—

> 'होनहार ह्वै रहै मिटै मेटी न मिटाई',
> 'होय तिनूका वज्र वज्र तिनुका ह्वै टूटै',
> 'ऊँटहिं ऊँट कटारहिं भावै',
> 'प्यास बुझाइ न ओस के चाटे',
> 'कहि केशव आपनी जाँघ उघार के आपही लाजन को मरई।'

आदि, लोकोक्तियोका प्रयोग देखा जा सकता है। इनका प्रयोग उचित अवसरोपर किया गया है। प्रथम दो लोकोक्तियाँ राम द्वारा—परशुरामको यह परितोष देनेके लिए प्रयुक्त हुई हैं कि धनुष टूटनेमे होनहार (दैवीगति) ही प्रबल थी। अत आपका क्रोध व्यर्थ है। तीसरी लोकोक्ति शखिनी नायिकाका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए प्रयुक्त हुई है। कवि यह कहना चाहता है कि जैसे ऊँट अपनी आदत और स्वभावसे बाज नहीं आता वैसे ही शखिनी नायिका भी अपनी नीच आदतोंसे बाज नही आती। चौथी लोकोक्ति उस प्रसगमे प्रयुक्त हुई है जब रामजनी नायिका कृष्णपर यह प्रकट करना चाहती है कि आप अन्य कामिनियोसे प्रेम करके भले ही सन्तुष्ट होनेका ढोगकर ले किन्तु बिना राधिकाको देखे वास्तविक सुख न प्राप्त होगा। भला कही ओस चाटनेसे प्यास बुझती है! पाँचवो लोकोक्तिका प्रयोग भी ठीक अवसरपर किया गया है। मानिनी नायिको मनाने वही स्त्री आई है जिसके प्रति कृष्णको आकर्षित देखकर नायिकाने मान किया है। ऐसी स्थितिमे नायिका अपना रहस्य प्रकट करके ससारकी निगाहोमे हल्की नहीं बनना चाहती और वह कहती है—भला अपनी ही जाँघ उघारकर स्वय अपनी ही लाजसे कौन मरना चाहेगा? इन लोकोक्तियोंमे अधिकाश 'रसिकप्रिया'से ली गई है। 'रसिकप्रिया' भाषा, भाव और छन्द-प्रयोग सभी दृष्टियोसे कविकी सर्वाधिक सरस रचना है। यदि इसी

प्रकार भावानुकूल भाषाका प्रयोग सर्वत्र किया गया होता तो बात ही और होती।

सब मिलाकर केशवकी काव्य-भाषाकी दाद नही दी जा सकती। उसे हम ब्रजभाषा-काव्यकी आदर्श भाषा भी नही मान सकते। अधिकसे-अधिक यही कहा जा सकता है कि एक सस्कृतज्ञ पण्डित कवि लोकरुचिको दृष्टिमे रखकर सस्कृतके क्षेत्रको छोडकर ब्रज-भाषा-हिन्दीमे प्रयोग कर रहा था। उसमे सस्कृत-का मोह बना हुआ था, वह पाण्डित्य-प्रदर्शन भी करना चाहता था। इन तीन रास्तोपर एक साथ चलनेके कारण उसकी भाषामे अनेक प्रकारकी दुर्बलताएँ आ गई है।

भक्ति-भावना

केशवका मूल्याकन करते हुए आचार्य शुक्लने एक वाक्य कहा है—'रामायणकी कथाका केशवके हृदयपर कोई विशेष प्रभाव रहा हो, यह बात नही पाई जाती।'[1] जिसके हृदयपर रामकथाका कोई विशेष प्रभाव न रहा हो उसे भक्त-कवियोकी कोटिमे कैसे रखा जा सकता है? पूरी 'रामचन्द्रिका' पढ जानेपर वस्तुत ऐसा नही लगता कि केशव रामके शीलसे प्रभावित होकर उनके प्रति पूर्णतः अनुरक्त थे। उनके विषयमे तुलसीकी यह उक्ति—'सुनि सीतापति शील सुभाऊ मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहरि खाऊ' अशत. अवश्य लागू होती है। सुननेके लिए तो उन्होने ऋषि वाल्मीकिके मुखसे सुना था—

> भलो बुरो न तू गुनै। वृथा कथा कहै सुनै।
> न रामदेव गाइहै। न देवलोक पाइहै।[2]

और यह सुनकर भगवान् रामको अपना इष्टदेव भी मान लिया था—

> मुनिपति यह उपदेश दै जबहीं भये अदृष्ट।
> केशवदास तही करयो रामचन्द्र जू इष्ट॥[3]

किन्तु उनके मनसे न इन्द्रजीतसिंह निकल सके और न भगवान् राम

---

१ हिन्दी-साहित्यका इतिहास, पृ० २१०।

२. रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० ६।

३ वही, पृ० ७।

उनके हृदयमे समा सके। न तो उनका मन मुदित हुआ न तन पुलकित। यौ तो महाकविने 'रामचन्द्रिका'की रचना करते समय प्रारम्भमे रामकी वन्दना भी की है।[1] उनके नामका प्रभाव भी स्वीकार किया है।[2] उन्हे अविकारी, जगकर्त्ता और भक्तोके लिए अवतार लेनेवाला भी बताया है।[3] ब्रह्माके मुखसे उन्हे त्रिदेव—ब्रह्मा, विष्णु, महादेव—मय भी कहलवाया है।[4] किन्तु स्वय उनसे उस प्रकारका व्यक्तिगत सम्बन्ध नही स्थापित किया है जिस प्रकारका एक भक्त अपने आराध्यसे स्थापित करता है। 'रामचन्द्रिका' की रचना कविने अपने अन्तस्के मूल्योको मूर्त करनेके लिए नही की है वरन् अपने पाण्डित्य, वर्णन-क्षमता और छन्द-ज्ञानके प्रदर्शनके लिए की है। तुलसीकी दृष्टिमे वे 'प्राकृत' कवि ही रहे। इन्द्रजोतसिंहके राजमे राजसी जीवन व्यतीत करनेवाले केशवका हृदय भक्ति भावनासे आप्लावित कैसे हो सकता था ?

---

१ पूरण पुराण अरु पुरुष पुराण परिपूरण बतावै न बतावै और उक्ति को।
दरशन देत जिन्हें दरशन समुझैं न नेति नेति कहैं वेद छाँडि आन युक्ति को।
जानि यह केशौदास अनुदिन राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।
रूप देहि अणिमाहि गुण देहि गरिमाहि भक्ति देहि महिमाहि नाम देहि मुक्ति को।
—रामचन्द्रिका, पूर्वार्द्ध, पृ० ३।

२ कहै नाम आधो सो आधो नसावै। कहै नाम पूरो सो वैकुंठ पावै।
—वही, उत्तरार्द्ध

३ निजु ये अविकारी, सब सुखकारी सबही विधि सन्तोषी
—वही, पूर्वार्द्ध, पृ० १२०।

× × ×

यद्यपि जग करता पालक हरता, परिपूरण वेदन गाये।
अति तदपि कृपाकरि, मानुष वपु धरि, थल पूछन हमसों आये।
—वही, पूर्वार्द्ध, पृ० १६६।

४ इक है जो रजोगुण रूप तिहारो।
तेहि सृष्टि रची विधि नाम बिहारो॥
गुण सत्व धरे तुम रक्षक जाको। अब विष्णु कहैं सिगरो जग ताको।
तुमही जग रुद्र सरूप सँहारो। कहिये तेहि मध्य तमोगुण सारो।
—वही, पूर्वार्द्ध पृ० ३४६।

लोक चेतनाने भी केशवको भक्त कविके रूपमे स्वीकार नही किया। जब भी उनका स्मरण किया, 'रसिक जीव', 'बडे रसिया', 'प्राकृत कवि', 'कठिन काव्यके प्रेत' आदि नामोसे ही उन्हे अलकृत किया गया। भक्ति-भावपूर्ण हृदय लेकर दरबारी वातावरणमे नही रहा जा सकता। केशवकी आन्तरिक प्रवृत्तिकी ओर सकेत करते हुए डॉ० हीरालाल दीक्षितने लिखा है—'उनकी जीवन-घटनाओपर विचार करनेसे ज्ञात होता है कि वे निवृत्ति-मार्गके अनुगामी आध्यात्मिक साधक नही थे तथा उनकी मनोवृत्ति निवृत्ति-धर्ममे नही थी। वे लोक व्यवहारके धर्मको मानते थे और प्रवृत्ति-कारक साधनोमे मन लगाते थे।'[१] डॉ० दीक्षितने आचार्य केशवके काव्यका अनुशीलन कई वर्षोतक किया है। वे उनको अधिक निकटसे जानते है। उनका निर्णय अन्तिम चाहे न हो विश्वसनीय तो है ही। केशवके पक्षमे रह-रहकर एक ही बात हृदयमे अनुगुञ्जित हो उठती है। काव्य दोषोसे अपनेको यथासाध्य दूर रखनेवाले इस पण्डित कविने राम नाम रटनेमे 'पुनरुक्ति दोष' की चिन्ता नही की। वह अनुदित राम नाम रटता रहा।[२] यही नही उसकी मतिरूपी सीताके नेत्र रामके पद-पद्ममे उसी प्रकार अनुरक्त रहे जिस प्रकार चञ्चरीक कमल-पुष्पमे आसक्त होता है।[३] कमसे कम रामचन्द्रिकाकी रचना आरम्भ करते समय कविकी मन स्थिति कुछ ऐसी अवश्य रही होगी। अत. यह कहा जा सकता है कि केशवका व्यक्तित्व तो निस्सन्देह भक्तकविका व्यक्तित्व नही था किन्तु कभी-कभी रह रहकर उनके अन्तस्‌मे भक्ति-भावका स्फुरण अवश्य हो जाया करता था।

व्यक्तित्व और मूल्यांकन

आचार्य केशवका व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे काव्यरीति-प्रवर्तक आचार्य हैं। वे सस्कृतज्ञ पण्डित है। वे राजमन्त्री और नीतिज्ञ है। उन्हे वैद्यक और

१ 'आचार्य केशवदास', पृ० ३४४।

२ जानि यह केशौदास अनुदित राम राम रटत रहत न डरत पुनरुक्ति को।

—रामचद्रिका, पृ० ३।

३. रामचन्द्र पदपद्म वृदारकवृन्दाभिवदनीयम्।
केशवमति भूतनया लोचन चचरीकायते।

—वही, पूर्वार्द्ध, पृ० ७।

ज्योतिषका भी थोडा-बहुत ज्ञान है। सगीतमें उनकी अच्छी गति है और उसके भेद-प्रभेद उन्हे ज्ञात है। वे दर्शन और अध्यात्म-ग्रन्थोके अध्येता हैं। उन्हे अस्त्र-शस्त्रोको भी अच्छी जानकारी है। यही नही भगवान् राम उनके इष्टदेव है।[१] उनकी मति रूपिणी सीताके नेत्र रामके चरण-कमलोमे अनुरक्त रहते है।[२] वे अपने पुरातन पापोको दूर करनेके लिए ही भगवान् रामके गुणोका गान करते है।[३] उनके राम परब्रह्म है[४]। इस प्रकार वे भक्तोकी कोटिमे आ जाते हैं। उनके ग्रन्थोमे इतिहासकी अच्छी सामग्री है। अत एक प्रकारसे वे इतिहास-निर्माता भी है। ऐसे महिमामय और बहुमुखी व्यक्तित्वको लोक-चेतना ने सूर और तुलसीके बाद तीसरा स्थान प्रदान करके उचित ही किया है। उनके परवर्ती आचार्योंने उनका अनुकरण चाहे न किया हो किन्तु कवियोने उनके भावोके अनुसार रचनाएँ की हैं। 'बिहारी' और 'मतिराम' इसके प्रमाण है। 'देव'ने तो अलकारोके निरूपणमे भी केशवकी ही पद्धतिका ध्यान रखा है। ऐसे महाकविकी सर्वाधिक उपेक्षा आचार्य शुक्ल द्वारा की गई। आचार्य शुक्लके निर्णय साहित्यके यथार्थ निर्णय हैं। ऐसी स्थितिमें उनके द्वारा किया गया महाकवि केशवदासका मूल्याकन विचारणीय है। वास्तवमे केशवके सबसे बडे समर्थक और मर्मज्ञ लाला भगवानदीनके निर्णय भी ठीक वही है जो आचार्य शुक्लके। दीनजीके निर्णयो पर ध्यान दीजिए—[(केशव) कुछ रूखे जान पडते है, राजसी कवि है, बहुत-से मनमाने शब्द गढे है, वर्णन प्रधान कवि हैं, यह गुण (आन्तरिक भाव व्यक्तकरनेका)

---

१. मुनिपति यह उपदेश दै जबहीं भये अदृष्ट।
केशवदास तही कर्यो रामचन्द्र जू इष्ट॥
—रामचन्द्रिका, पहिला प्रकाश, छन्द १८।

२ रामचन्द्र पदपद्म वृन्दारक वृन्दाभिवदनीयम्।
केशवमति भू-तनया लोचन चचरीकायते॥
—वही, छन्द १९।

३ 'तिनके गुण कहिहौं सब सुख लहिहौं पाप पुरातन भागै।'
—वही, छन्द, २०।

४ 'यद्यपि जग करता पालक हरता, परिपूरण वदन गायो।'
—वही, ग्यारहवॉ प्रकाश, छन्द ११।

बहुत कम है, आचार्यत्व, कवित्व और पाडित्य-प्रदर्शन हेतु कविता करते थे, अपने गुणोका अहकार रखते थे, माघ, श्री हर्ष, भासके अनुगामी है।']¹ मूल्याकनके आधारपर दिये गए निर्णय प्राय: एक होनेपर भी महत्त्व और गौरवकी स्वीकृतिमे अन्तर हो सकता है। प्रश्न निर्णयका नही मूल्योका है। केशवके काव्यमे जो कुछ है वही जिसके काव्यादर्शोकी सीमा होगी उसे केशवदासजी ससारके सबसे बडे कवि प्रतीत होगे। जिनकी आस्था भिन्न प्रकारके मूल्योमे होगी उसे वे हीन प्रतीत होगे। आचार्य शुक्लके आदर्श तुलसी है। वे रसवादी आलोचक है। वे मर्यादाको सर्वोपरि महत्त्व देते है। वे काव्यकी मान्यताओको लोक-हृदय समर्थित देखना चाहते है। वे काव्यको उस भूमिको महत्त्व देते है जिसमे लाक मगलकी भावना प्रधान हो। कोरी कलाबाजीसे उन्हे चिढ है। वे प्रबन्ध-रचनाको अधिक महत्त्व देते है। केशवकी स्थिति इसके ठीक विपरीत है। वे अलकारवादी है। उनके काव्यमे मर्यादाको उचित स्थान नही दिया गया है। उन्होने लोक मगलके लिए नही लिखा है। वे चमत्कार-प्रिय हैं। उनकी मनोवृत्ति दरबारी है। वे समाजको विधि-निपेध नही दे सकते। अत. आचार्य शुक्लकी निगाहोमे उनका मूल्य कम है। लाला भगवानदीन भी चमत्कार प्रिय व्यक्ति थे। उन्हे अलकारोके प्रयोगोंमे आनन्द आता था। उनका केशवकी मनोवृत्तिसे मानसिक तादात्म्य था। यदि दीनजीके समयमे कोई रामसिह या इन्द्रजीत होता तो वे अपनी टीका उसे ही समर्पित करते। इसीलिए केशव उन्हे प्रिय है। अब बात रह जाती है सत्यासत्य की। इसका निर्णायक सदैव काल रहा है। जिसमे शक्ति होती है वह कालको चुनौती देता हुआ मुसकराता रहता है। दु खके साथ कहना पडता है कि केशवकी कविता इन्द्रजीत सिंहके अखाडेको कविता है जिसका जमाना लद चुका है। बहुत पहले ही लद चुका था। शुक्लजी नवान जीवन-चेतनाके प्रतीक है आर दीनजी पुरानी। उन्होने केशवके प्रेत काव्यका उद्धार अवश्य किया किन्तु उन्हे वह स्थान न दिला सके जो सूर और तुलसीका है। डॉ० हीरालाल दीक्षितने आचार्यत्वकी दृष्टिसे भी केशवको देव और भिखारीदाससे नीचा स्थान दिया है। तुलसी और सूर आजके उद्भ्रान्त विकल मानवको भी कुछ दे सकते हैं, केशवके पास आज

१ 'रामचन्द्रिका' उत्तरार्द्ध, भूमिका भाग।

देनेको कुछ भी नहीं है। ऐसी स्थितिमे लोक प्रचलित सूक्तियोमे जो स्थान केशव-को प्राप्त है। भगवान् करे वही बना रहे—

सूर-सूर तुलसी ससी, उडुगण केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जहँ-तहँ करत प्रकाश॥

× × ×

कविता कर्त्ता तीन है, तुलसी केशव सूर।
कविना खेती इन लुनो, सीला विनत मजूर॥

× × ×

सुन्दर पद कवि गग के, उपमा को बरबीर।
केशव अर्थ गँभीरता, सूर तीन गुण धीर॥

पठनीय सामग्री

केशव कौमुदी	लाला भगवानदीन
केशव की काव्य कला	प० कृष्णशंकर शुक्ल
संक्षिप्त रामचन्द्रिका	स० डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल
केशवदास	प० चन्द्रबली पाण्डेय
आचार्य केशवदास	डॉ० हीरालाल दीक्षित
हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास	डॉ० रामकुमार वर्मा

उपसंहार

मध्ययुगीन हिन्दी-कवियोंके लिए काव्य-रचना साधनाकी वस्तु रही है, या यों कहिये कि उनकी जीवन साधना ही काव्यके रूपमे साकार हुई है। कबीरने मनुष्यकी सहजताको आवृत्त करनेवाले समस्त आरोपित जीवन-मूल्योको विघटित करके उसके अकृत्रिम एव सहज रूपको प्रत्यक्ष करनेकी साधनाकी थी। जायसीने प्रेमकी स्निग्धतामे युगकी समस्त कटुताको प्रक्षालित करके जीवनको मधुमय बनानेकी साधनाकी थी। सूरदास और नन्ददासने प्रेम एव ममत्वसे पूर्ण निश्छल सम्बन्धोंके आधारपर एक नैसर्गिक समाज-स्थापनाके स्वप्नको रूपायित करनेकी साधनाकी थी। तुलसीने परपरागत सास्कृतिक मूल्योंके परिष्कृत रूपको सामने रखकर व्यक्ति और समाजको मर्यादित करनेकी अभूतपूर्व साधनाकी थी। केशव इस कोटिके साधक तो नही थे किन्तु उन्होंने सस्कृत साहित्यके परपरागत अभिजात-मूल्योको हिन्दीमें रूपान्तरित करनेकी साधनाकी थी। पिछले पृष्ठोमें मध्ययुगके सामान्य काव्य एव जीवन-मूल्योके प्रकाशमें इन कवियोंकी काव्य-कृतियोके मूल्याङ्कनकी चेष्टाकी गई है। लेखकने जो कुछ कहा है उसमें पूर्व अध्येताओके अनेक महत्त्वपूर्ण निर्णयो एव निष्कर्षोंको आत्मसात् कर लिया गया है किन्तु फिर भी मध्ययुगीन हिन्दी-काव्यको एक नये सन्दर्भमे रखकर देखनेका उसका प्रयास मौलिक है। नितान्त मौलिकताका दावा वह नहीं करता। आशा है, लेखकका यह प्रयास पाठकोको सन्तोष दे सकेगा।

सहायक ग्रन्थ-सूची

अँग्रेजी-ग्रन्थ

Akbar the Great Mogal —Vincent A Smith, 1958

Medieval India Under Mohammadan Rule —Lane-poole

Life and Conditions of the People of Hindustan —K M Ashraf, 1959

Travel in the Mogal Empire —Francsois Bernier, 1916

The Legacy of India —Ed G T Garratt

Some Contribution of South India to Indian Culture —K S Ayainger

Influence of Islam on Indian Culture—Dr Tarachand

Collected Works of Sir R. G. Bhandarkar —Vol IV

History of the Sikhs —Joseph Davey Cunningham, 1955

Kabir and the Kabir Panth —Rev Westcott

Obscure Religious Cults —S. B Das Gupta

Mysticism in Maharastra —Dr R D Ranade

The Religion of Man —Rabindranath Tagore

Outlines of Islamic Culture —A M A Shushtery, 1954

History of Philosophy : Eastern and Western —Sarvepalli Radha Krishnan

Social Philosophy of Mahatma Gandhi —Dr Mahadeva Prasad

Recent Political Thought —Francis W Coker

हिन्दी-ग्रन्थ

हिन्दी-साहित्य का इतिहास —आचार्य रामचन्द्र शुक्ल।

हिन्दी-साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव —डॉ० सरनाम सिह

भूषण —प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

बिहारी —प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र

भारतीय इतिहास का उन्मीलन —जयचन्द्र विद्यालकार, १९५६

ब्रजभाषा और उसके साहित्य की भूमिका—कपिलदेव सिंह

रहिमन विलास —ब्रजरत्न दास

भक्ति का विकास —डॉ० मुशोराम शर्मा

हिन्दी काव्य-धारा —राहुल साकृत्यायन

कबीर —डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी

रामभक्ति मे रसिक सम्प्रदाय —डॉ० भगवतीप्रसाद सिह

कबीर ग्रंथावली (सभा सस्करण) १९२८ ई०

सूरसागर (सभा सस्करण)

जायसी ग्रंथावली —(स०) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

रामचरितमानस (गीता प्रेस सस्करण)

श्रृंगार शतक —(भर्तृहरि)

कविप्रिया —केशवदास

हिन्दी काव्य मे निर्गुण सम्प्रदाय —डॉ० पीताम्बरदत्त बडथ्वाल

तसव्वुफ अथवा सूफीमत —पं० चन्द्रबली पाण्डेय

गोरखबानी —(स०) डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल

मन्त्रयोग संहिता (भारतधर्म महामण्डल, काशी)

सन्तकवि दरिया : एक अनुशीलन —डॉ० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी

उत्तरी भारत की संत परम्परा —प० परशुराम चतुर्वेदी

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग —डॉ० नामवरसिह

कबीर की विचारधारा —डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत, द्वि० स०

हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—डॉ० रामकुमार वर्मा
नाथयोग एक परिचय —अक्षयकुमार वन्द्योपाध्याय
दक्खिनी हिन्दी का पद्य और गद्य —श्रीराम शर्मा
तुलसी ग्रथावली (सभा सस्करण)
संत कबीर —डॉ० रामकुमार वर्मा
हिन्दी नवरत्न —मिश्रबन्धु स० १८८१
हिन्दी साहित्य का आदिकाल —डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
कबीर साहित्य की परख —प० परशुराम चतुर्वेदी
भारत की भाषायें —डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या
पद्मावत —(स०) डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल
पद्मावत सार —श्री इन्द्रचन्द्र नारग
अपभ्रश साहित्य —हरिवश कोछड
पद्मावत का काव्य सौन्दर्य —शिवसहाय पाठक
हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य —डॉ० कमल कुलश्रेष्ठ
नाथ सम्प्रदाय —डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
भावना और समीक्षा —डॉ० ओम् प्रकाश
रस मीमासा —आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
कबीर का रहस्यवाद —डॉ० रामकुमार वर्मा
भारतीय दर्शन —पं० बल्देव उपाध्याय
बौद्ध दर्शन ओर वेदान्त —डॉ० चन्द्रधर शर्मा
अष्टछाप और वल्लभ सम्प्रदाय —डॉ० दीनदयालु गुप्त
ब्रह्म वैवर्त पुराण —(मनसुख राम मोर प्रकाशन, कल्कत्ता)
सूर-साहित्य की भूमिका —डॉ० रामरतन भटनागर
सूर-निर्णय —प्रभुदयाल मीतल
सूर-सौरभ —डॉ० मुशीराम शर्मा
अष्टछाप परिचय —प्रभुदयाल मीतल
साहित्यदर्पण —स० डॉ० सत्यव्रतसिंह

भ्रमर गीत —स० आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
भारतीय साधना और सूर साहित्य —डॉ० मुंशीराम शर्मा
सूरदास —डॉ० ब्रजेश्वर वर्मा
सूर की झाँकी —डॉ० सत्येन्द्र
सूर की काव्यकला —डॉ० मनमोहन गौतम
सूरसागर सार —डॉ० धीरेन्द्र वर्मा
सूर प्रभा —डॉ० दीनदयालु गुप्त
काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध —जयशंकर 'प्रसाद'
नन्ददास ग्रन्थावली —स० बाबू ब्रजरत्नदास
रास पञ्चाध्यायी —स० डॉ० उदयनारायण तिवारी
तुलसी ग्रन्थावली तीसरा भाग, (ना०प्र०स० काशी)
तुलसी दर्शन —डॉ० बलदेवप्रसाद मिश्र
तुलसीदास —डॉ० माताप्रसाद गुप्त
काव्य मीमांसा (ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ौदा)
कल्याण (नारी अंक) (गीता प्रेस, गोरखपुर)
कल्याण (साधनांक) (गीता प्रेस, गोरखपुर)
मनुस्मृति —स० प० रामेश्वर भट्ट
कविप्रिया —आचार्य केशवदास
रसिक प्रिया —आचार्य केशवदास
आचार्य केशवदास —डॉ० हीरालाल दीक्षित
कामसूत्र (वात्स्यायन)
विज्ञान गीता —आचार्य केशवदास
रामचन्द्रिका —स० लाला भगवानदीन
कादम्बरी (निर्णय सागर प्रेस, बम्बई)
वीरसिंहदेव चरित (मातृभाषा मंदिर, दारागंज)
हिन्दी मुक्तक काव्य का विकास —जितेन्द्रनाथ पाठक
काव्य प्रकाश —मम्मटाचार्य
केशव की काव्य-कला —प० कृष्णशंकर शुक्ल

नामानुक्रमणिका